'निर्मल-सम्प्रदाय' के आलोक में 'हरि अदृष्ट सतसैया' का अध्ययन

(मूल रचना के सम्पादन के साथ).

पंजाब यूनिवर्सिटी चंडीगढ़ की पी-एच. डी. की उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध

1986

अनुसंधाता

योगेश कुमार

भूमिका

मध्यकाल में मुगल-साम्राज्य के अत्याचारों तथा हिन्दू-धर्म में विद्यमान आडम्बरों एवं मिथ्याचारों की प्रतिक्रिया में 15वीं शताब्दी में श्री गुरु नानक देव जी ने "सिख-धर्म" को जन्म दिया। इसी सिख-धर्म के एक अभिन्न अंग के रूप में उत्पन्न "निर्मल-सम्प्रदाय" का जन्म एक अनोखी घटना से जुड़ा हुआ है। अन्तिम गुरु गोविंद सिंह जी एक बहादुर सिख होने के साथ साथ उच्च कोटि के विद्वान भी थे। वे पाँच भाषाओं ------ पंजाबी, हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फ़ारसी के ज्ञाता थे। उन्होंने "खालसा-पंथ" की स्थापना की। वे चाहते थे कि उनके शिष्य उन्हीं का प्रतिरूप हों। इसलिए उनकी तीव्र आकांक्षा थी कि उनके "सिंह" बहादुर होने के साथ-साथ विद्वान भी हों। विद्वता प्राप्ति के लिए उस समय "संस्कृत" का ज्ञान अनिवार्य समझा जाता था। अपने "सिंहों" को संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त करवाने के लिए गुरु जी ने अपने एक सेवक रघुनाथ से अनुरोध किया, परन्तु पंडित रघुनाथ ने संस्कृत को देव-भाषा मानते हुए नीच जाति के "सिंहों" को इसका परिज्ञान करवाने से इन्कार कर दिया। गुरु जी को इस घटना से बहुत आघात लगा। इसी घटना की प्रतिक्रिया स्वरूप सन् 1686 ई० में पाऊँटा साहिब से गुरु जी ने अपने पाँच शिष्यों को भगवे वस्त्र पहनाकर संस्कृत भाषा के ज्ञानार्जन के लिए बनारस भेजा। इन पाँच शिष्यों के नाम कर्म सिंह, गंडा सिंह, राम सिंह, सैणा सिंह तथा वीर सिंह थे। इन्हीं पाँच शिष्यों ने कालान्तर में "निर्मल-सम्प्रदाय" को जन्म दिया। "निर्मल-सम्प्रदाय" का जन्म ही ज्ञान-प्राप्ति के लिए हुआ था, इसलिए प्रायः सभी निर्मल-संत विद्वान थे। निर्मल-संतों द्वारा विरचित साहित्य तीन लिपियों — देवनागरी, गुरुमुखी, अरबी में मिलता है। निर्मल-संतों ने अनेक विषयों ----धर्म, दर्शन, ज्योतिष, चिकित्साशास्त्र आदि पर साहित्य-सृजन किया। "दर्शन" विषय पर रचित अनेक कृतियों में से

"हरि अदुष्ट सतसैया" भी एक है । इस कृति के रचयिता कवि कर्म सिंह निर्मला की अन्य तीन कृतियाँ — "सदसुखप्रकाश", "श्री गुरुवंशचन्द्रोदै" तथा "नृपधर्म चन्द्रिका" भी प्रकाश में आई है ।

"हरि अदुष्ट सतसैया" तथा "श्री गुरु वंश चन्द्रोदै" की पांडुलिपियाँ गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर के पुस्तकालय में उपलब्ध हैं । "सदसुख प्रकाश" की दो प्रतियाँ हैं । इनमें से एक पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ के पुस्तकालय तथा दूसरी पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के पुस्कालय में सुरक्षित है । "नृप धर्म चन्द्रिका" की पांडुलिपि डा० देवेन्द्र विद्यार्थी के निजी पुस्तकालय में सुरक्षित थी । डा० विद्यार्थी के अनुसार यह पांडुलिपि एक दुर्घटना में कहीं खो गई है ।

"हरि अदुष्ट सतसैया" गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी साहित्य की एक उत्कृष्ट कृति है । इस कृति के सृजन में कवि का उद्देश्य पांडित्य-प्रदर्शन नहीं था, परन्तु फिर भी इस कृति में सिक्ख-दर्शन तथा वेदान्त-दर्शन का अद्भुत समन्वय मिलता है । "निर्मल-सम्प्रदाय के आलोक में 'हरि अदुष्ट सतसैया' का अध्ययन (मूल रचना के सम्पादन के साथ)" हमारे शोध का विषय है । प्रस्तुत प्रबंध छः अध्यायों में विभाजित है ।

हमने पहले अध्याय का आरम्भ "निर्मल-सम्प्रदाय" के परिचय से किया है । हमने सामान्य परिचय के बाद प्रतिपादित "निर्मल-सम्प्रदाय के इतिहास को तीन चरणों में विभाजित किया है । प्रथम चरण में "निर्मल-सम्प्रदाय " के उद्भव संबंधी अनेक विद्वानों — (क) निर्मल-विद्वान तथा (ख) अन्य विद्वानों के अभिमत प्रस्तुत करके अपना विनम्र मत व्यक्त किया है ।

हमने ~~दूसरे~~ तीसरे अध्याय में सबसे पहले कवि संबंधी डा० प्रताप सिंह की मान्यताओं का खंडन किया है और उसके बाद उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर

कवि कर्म सिंह निर्मला को सरदार कर्म सिंह निर्मला शाहाबादी सिद्ध करने का प्रयास है । ध्यान रहे, डा० प्रताप सिंह ही एकमात्र विद्वान है, जिसने इस शोध प्रबंध से पूर्व "हरि अदृष्ट सतसैया" के कर्त्ता कवि कर्म सिंह निर्मला के जीवनवृत्त पर प्रकाश डाला है । कवि के जीवन-वृत के सभी पहलुओं पर प्रकाश डालने के लिए हमने कवि-परिचय को चार भागों —— पारिवारिक परिचय, धार्मिक परिचय, राजनैतिक परिचय तथा साहित्यिक परिचय में विभाजित किया है । पारिवारिक परिचय के अन्तर्गत जन्म, विवाह, परिवार आदि का चित्रण हुआ है । धार्मिक परिचय में कवि की सिख-धर्म संबंधी उपलब्धियों का वर्णन किया गया है । राजनैतिक परिचय के अन्तर्गत कवि द्वारा लड़ी गई लड़ाइयों तथा उनसे प्राप्त उपलब्धियों का विवेचन किया गया है । साहित्यिक परिचय में कवि की तीनों कृतियों का संक्षिप्त साहित्यिक विवेचन किया है और अन्त में "हरि अदृष्ट सतसैया" के बाह्य रंग-रूप का सूक्ष्म अध्ययन किया गया है ।

दूसरे ~~तीसरे~~ अध्याय में "निर्मल-सम्प्रदाय" की सैद्धान्तिक मान्यताओं को चार भागों में बाँटा गया है । पहले भाग में धार्मिक मान्यताओं — विश्वास तथा आस्थाओं का विवेचन है । दार्शनिक मान्यताओं के अन्तर्गत ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, मोक्ष आदि से संबंधित मान्यताएं हैं । नैतिक मान्यताओं को हमने विधि-परक तथा निषेध-परक दो भागों में विभाजित किया है । निर्मल-संतों के रहन-सहन, वेश-भूषा, पर्व, उत्सव इत्यादि का विवेचन सामाजिक मान्यताओं के अन्तर्गत किया गया है ।

चौथे अध्याय में "हरि अदृष्ट सतसैया" में आगत दार्शनिक तथा धार्मिक विचारों का अध्ययन किया गया है । विवेचन के मुख्य विषय— परमात्मा, आत्मा, जगत् , जीव, मोक्ष, कर्म मार्ग, उपासना मार्ग तथा ज्ञान-मार्ग आदि हैं ।

पाँचवे अध्याय में "हरि अदृष्ट सतसैया" में आगत नैतिक-मूल्यों को दो खण्डों में विभाजित किया गया है । विधि-परक नैतिक मूल्यों के अन्तर्गत सत्य, विवेक, श्रद्धा, तितिक्षा, संतोष, संयम आदि का अध्ययन

किया गया है । निषेध-परक नैतिक मूल्यों में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, हिंसा आदि से संबंधित कवि के विचारों का विवेचन किया गया है ।

छठे अध्याय में "हरि अष्ट सतसैया" का काव्य-शिल्प" में कवि द्वारा प्रयुक्त भाषा, शब्द-शक्तियों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों, अलंकारों, छंदों, रसों इत्यादि का विवेचन किया गया है । सर्वान्त में "उपसंहार" के अन्तर्गत कृति का मूल्यांकन किया गया है और अपने निष्कर्ष दिए गए हैं ।

परिशिष्ट में सबसे पहले मूल-रचना का सम्पादन किया गया है, कठिन शब्दों के अर्थ भी दिए गए हैं । इसके बाद खोज में मिले कुछ चित्र आदि प्रस्तुत किए गए हैं और अन्त में सहायक पुस्तक सूची दी गई है ।

अहिन्दी भाषी अन्य प्रदेशों की तुलना में पंजाब का हिन्दी-साहित्य के लिए योगदान अधिक महत्वपूर्ण है । निर्मल संतों द्वारा विरचित अधिकांश साहित्य की भाषा हिन्दी और लिपि गुरमुखी रही है । गुरमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी साहित्य से हिन्दी जगत् प्रायः कम परिचित है । मुख्यतः इसके दो कारण है । पहला कारण तो यह है कि इस साहित्य की लिपि गुरमुखी है और दूसरा कारण यह है कि इस श्रेणी का अधिकांश साहित्य अप्रकाशित है और पुरानी पांडुलिपियाँ धीरे धीरे नष्ट हो रही हैं । गुरमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी साहित्य को नष्ट होने से बचाए रखने की दिशा में एक प्रयास ही मेरे इस विषय-चयन का मूल उद्देश्य है ।

शोध-प्रक्रिया के दौरान अनेक कठिनाइयों और अनुभवों का सामना हुआ । सबसे बड़ी कठिनाई तो यह थी कि आलोच्य कृति लगभग अछूती थी । संबंधित साहित्य का अभाव भी कभी कभी विचलित करता रहा । अनेक सम्मान्य तथा विद्वान सज्जनों से मुलाकातें हुईं । कुछ अनुभव मृदु थे और कुछ कटु ।

मेरी इस शोध-प्रक्रिया में लगभग 5 वर्षों का परिश्रम निहित है । परिश्रम तो निश्चित रूप से मेरा है लेकिन मेरे इस परिश्रम का मूल कारण

डा० जय प्रकाश शर्मा, अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ हैं। संक्षेप में इतना ही कह सकता हूं कि डा० जय प्रकाश के पथ - प्रदर्शन के बिना मैं इस कार्य को करने का कभी साहस भी नहीं जुटा पाता। डा० धर्मपाल सैनी, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, पंजाब यूनीवर्सिटी तथा डा० सतीश मेनन का शुभाशीष वात्सल्य-युक्त प्रोत्साहन शोध-प्रक्रिया के दौरान मुझे सदैव बल देता रहा है। मैं उनका हृदय से आभारी हूं।

श्री महंत सुच्चा सिंह, निर्मल पंचायती अखाड़ा, हरिद्वार, महंत हरी सिंह, गली बाग वाली, अमृतसर, संत जगत सिंह, अम्बाला शहर, ज्ञानी साहिब सिंह, शाहाबाद, संत अमर सिंह निर्मला, शाहाबाद, सरदार बीरेन्द्र सिंह, शाहाबाद, श्रीमती सरदार जसमेर सिंह, शाहाबाद, एडवोकेट रंधावा, शाहाबाद, मास्टर कर्म सिंह, शाहाबाद, डा० शमशेर सिंह अशोक, मलेरकोटला, डा० विद्यार्थी, अमृतसर, डा० सुरेन्द्र सिंह, सबारा, कामरेड पूर्ण सिंह, सिदरवाले आदि अनेक महानुभावों ने कवि कर्म सिंह निर्मला के जीवन चरित्र-संबंधी बहुमूल्य सूचनाएँ देकर मुझे कृतार्थ किया है। मैं इन सबका हृदय से आभारी हूं।

निवेदक

Yogish

(योगेश कुमार)

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

भूमिका

1. निर्मल-सम्प्रदाय का परिचय एवं इतिहास 1

1.1 निर्मल-सम्प्रदाय का परिचय

1.2 निर्मल-सम्प्रदाय का इतिहास

1.2.1 निर्मल-सम्प्रदाय का आविर्भाव

1.2.1.1. निर्मल विद्वानों के अभिमत

1.2.1.2. अन्य विद्वानों के अभिमत

1.2.2. निर्मल सम्प्रदाय का विकास

1.2.2.1. निर्मल सम्प्रदाय का विकास
(आविर्भाव काल से 18वीं शताब्दी तक)

1.2.2.2. निर्मल-सम्प्रदाय का विकास
(19वीं शताब्दी से आज तक)

1.2.3 निर्मल-सम्प्रदाय की वर्तमान स्थिति और भविष्य

2. निर्मल-सम्प्रदाय की सैद्धान्तिक मान्यताएँ 45

2.1 सामाजिक मान्यताएँ

2.1.1. जीवन-पद्धति तथा रीति-रिवाज

2.1.1.1. ब्रह्मचर्य का पालन

2.1.1.2. अध्ययन-अध्यापन कार्य

2.1.1.3. चिकित्सा-कार्य

2.1.1.4. साहित्य-सृजन

2.1.1.5. गुरु-शिष्य-परम्परा की पद्धति

2.1.1.6. अन्य जीवन-यापन की पद्धतियाँ

2.1.2. वेशभूषा

2.1.3. पर्व तथा उत्सव

2.1.4. खान-पान

2.2 दार्शनिक मान्यताएँ
- 2.2.1. ब्रह्म संबंधी मान्यताएँ
- 2.2.2. जीवात्मा संबंधी मान्यताएँ
- 2.2.3. जगत् संबंधी मान्यताएँ
- 2.2.4. माया संबंधी मान्यताएँ
- 2.2.5. मोक्ष संबंधी मान्यताएँ

2.3 धार्मिक मान्यताएँ
- 2.3.1. धार्मिक विश्वास
  - 2.3.1.1. आराध्य संबंधी विश्वास
  - 2.3.1.2. दीक्षा-गुरु संबंधी विश्वास
  - 2.3.1.3. आराधक संबंधी विश्वास
  - 2.3.1.4. वेद पुराण आदि संबंधी विश्वास
  - 2.3.1.5. नाम-दान-स्नान संबंधी विश्वास
  - 2.3.1.6. अन्य विश्वास
- 2.3.2. आराधना पद्धति
  - 2.3.2.1. श्रवण पद्धति
  - 2.3.2.2. कीर्तन पद्धति
  - 2.3.2.3. स्मरण पद्धति
  - 2.3.2.4. पाद-सेवन पद्धति
  - 2.3.2.5. अर्चन पद्धति
  - 2.3.2.6. वन्दन पद्धति
  - 2.3.2.7. सख्य पद्धति
  - 2.3.2.8. दास्य पद्धति
  - 2.3.2.9. आत्मनिवेदन पद्धति

2.4. नैतिक मान्यताएँ
- 2.4.1 विधि-परक नैतिक मान्यताएँ
  - 2.4.1.1. संतोष और सहनशीलता

2.4.1.2. दानशीलता

2.4.1.3. श्रद्धा

2.4.1.4. विवेक

2.4.1.5. शरणागत-वत्सलता

2.4.1.6. मृदु-भाषा

2.4.2. निषेध-परक नैतिक मान्यताएँ

2.4.2.1. काम और क्रोध

2.4.2.2. लोभ और मोह

2.4.2.3. निंदा और चिंता

2.4.2.4. अहंकार और आलस्य

2.4.2.5. द्वेष और तृष्णा

2.4.2.6. असत्य और हिंसा

3. हरि अकुष्ट सतसैया : कृति और कृतिकार

3.1. कृतिकार का जीवन परिचय

3.1.1. पारिवारिक परिचय

3.1.2. धार्मिक परिचय

3.1.3. राजनैतिक परिचय

3.1.4. साहित्यिक परिचय

3.1.4.1. नृप धर्म चन्द्रिका

3.1.4.2. सद गुरु प्रकाश

3.1.4.2.1. आत्म साधन निरूपण

3.1.4.2.2. आत्म विवेक निरूपण

3.1.4.2.3. माया अविद्या में ब्रह्मांड, पिंड, ईश्वर तथा जीव निरूपण

3.1.4.2.4. साक्षी-तत्व-परम्परा-एकता निरूपण

3.1.4.2.5. ब्रह्म ज्ञान निरूपण

3.1.4.2.6. अनुभा, जीवनमुक्ति, विदेह अवस्था निरूपण

3.1.4.3. श्री गुरु वंश चन्द्रोदै

3.1.4.3.1. प्रथम गुरु निरूपण

3.1.4.3.2. द्वितीय गुरु निरूपण

3.1.4.3.3. तृतीय गुरु निरूपण

3.1.4.3.4. चतुर्थ गुरु निरूपण

3.1.4.3.5. पंचम गुरु निरूपण

3.1.4.3.6. षष्टम गुरु निरूपण

3.1.4.3.7. सप्तम गुरु निरूपण

3.1.4.3.8. अष्टम गुरु निरूपण

3.1.4.3.9. नवम गुरु निरूपण

3.1.4.3.10. दशम गुरु निरूपण

3.2. कृति का परिचय

4. "हरि अष्ट सतसैया" में आगत दार्शनिक एवं धार्मिक विचार 164

4.1. भारतीय-दर्शन का संक्षिप्त परिचय

4.1.1. नास्तिक-दर्शन

4.1.1.1. चार्वाक-दर्शन

4.1.1.2. जैन-दर्शन

4.1.1.3. बौद्ध -दर्शन

4.1.2. आस्तिक दर्शन

4.1.2.1. न्याय-दर्शन

4.1.2.2. वैशेषिक-दर्शन

4.1.2.3. सांख्य-दर्शन

4.1.2.4. योग-दर्शन

4.1.2.5. मीमांसा-दर्शन

4.1.2.6. वेदान्त -दर्शन

4.2. "हरि अष्ट सतसैया" में आगत दार्शनिक एवं धार्मिक विचार

4.2.1. परमात्मा

4.2.2. जीवात्मा

4.2.3. जगत्

4.2.4. माया

4.2.5. मोक्ष

4.2.5.1. कर्म-मार्ग

4.2.5.2. उपासना-मार्ग

4.2.5.2.1. श्रवण

4.2.5.2.2. स्मरण

4.2.5.2.3. कीर्तन

4.2.5.2.4. वन्दन

4.2.5.2.5. दास्य

4.2.5.2.6. सख्य

4.2.5.2.7. आत्म निवेदन

4.2.5.3. ज्ञान-मार्ग

4.2.5.3.1. बहिरंग साधन

4.2.5.3.1.1. नित्यानित्यवस्तु विवेक

4.2.5.3.1.2. वैराग्य

4.2.5.3.1.3. शमादि षट् संपत्ति

4.2.5.3.1.3.1. शम

4.2.5.3.1.3.2. दम

4.2.5.3.1.3.3. उपरति

4.2.5.3.1.3.4. तितिक्षा

4.2.5.3.1.3.5. श्रद्धा

4.2.5.3.1.3.6. समाधान

4.2.5.3.1.4. मुमुक्षुत्व

4.2.5.3.2. अन्तरंग साधन

4.2.5.3.2.1. श्रवण

4.2.5.3.2.2. मनन

4.2.5.3.2.3. निदिध्यासन

4.2.5.3.2.4. समाधि

5. "हरि अदुष्ट सतसैया" में आगत नैतिक -मूल्य

5.1 विधि परक नैतिक मूल्य

5.1.1. सत्य

5.1.2. विवेक

5.1.3. साहस और धैर्य

5.1.4. संयम

5.1.5. संतोष

5.1.6. श्रद्धा

5.1.7. नम्रता

5.2. निषेध परक नैतिक -मूल्य

5.2.1. काम

5.2.2. क्रोध

5.2.3. लोभ

5.2.3.1. चिंता

5.2.3.2. तृष्णा

5.2.3.3. आशा

5.2.3.4. (अ)स्तेय

5.2.4. मोह

5.2.5. अहंकार

5.2.5.1. मद

5.2.5.2. दंभ

5.2.5.3. मान

5.2.6. राग और द्वेष

5.2.7. पाप

5.2.8. निंदा

5.2.9. कुसंगति

5.2.10. कपट

5.2.11. आलस्य

6. "हरि अदृष्ट सतसैया" का काव्य-शिल्प

6.1 भाषिक संरचना

6.1.1. शब्द भण्डार

- 6.1.1.1. तत्सम शब्द
- 6.1.1.2. अर्द्धतत्सम शब्द
- 6.1.1.3. तद्भव शब्द
- 6.1.1.4. विदेशी शब्द

6.1.2. शब्द शक्ति

- 6.1.2.1. अभिधा
  - 6.1.2.1.1. रूढ़ शब्द
  - 6.1.2.1.2. यौगिक शब्द
  - 6.1.2.1.3. योगरूढ़ शब्द
- 6.1.2.2. लक्षणा
  - 6.1.2.2.1. रूढ़ि लक्षणा
  - 6.1.2.2.2. प्रयोजनवती लक्षणा
- 6.1.2.3. व्यंजना
  - 6.1.2.3.1. शाब्दी व्यंजना
  - 6.1.2.3.2. आर्थी व्यंजना

6.1.3. काव्य दोष विवेचन

- 6.1.3.1. शब्द दोष
  - 6.1.3.1.1. श्रुतिकटुत्व
  - 6.1.3.1.2. च्युतिसंस्कार
    - 6.1.3.1.2.1. लिंग दोष
    - 6.1.3.1.2.2. वचन दोष
    - 6.1.3.1.2.3. कारक दोष
    - 6.1.3.1.2.4. सन्धि दोष
    - 6.1.3.1.2.5. उपसर्ग दोष

6.1.3.1.3. असमर्थ दोष

6.1.3.1.4. निरर्थक दोष

6.1.3.1.5. अप्रतीत दोष

6.1.3.1.6. क्लिष्ट दोष

6.1.3.1.7. अधिकपदता दोष

6.1.3.1.8. मुहावरा दोष

6.1.3.2. अर्थ दोष

6.1.3.2.1. अपुष्ट दोष

6.1.3.2.2. पुनरुक्त दोष

6.1.3.2.3. प्रसिद्धिविरुद्ध दोष

6.1.3.2.4. कष्टार्थकष्टत्व दोष

6.1.4. मुहावरे और लोकोक्तियाँ

6.1.5. अलंकार

6.1.5.1. शब्दालंकार

6.1.5.1.1. अनुप्रास

6.1.5.1.2. यमक

6.1.5.1.3. श्लेष

6.1.5.1.4. वीप्सा

6.1.5.2. अर्थालंकार

6.1.5.2.1. उपमा

6.1.5.2.2. उत्प्रेक्षा

6.1.5.2.3. रूपक

6.1.5.2.4. दृष्टांत

6.1.5.2.5. दीपक

6.1.5.2.6. अन्योक्ति

6.1.5.2.7. अतिशयोक्ति

6.1.5.2.8. निश्चय

6.1.6. छंद

6.2. रस योजना

6.2.1. मुख्य रस

6.2.2. अन्य रस

उपसंहार 337

परिशिष्ट

परिशिष्ट - क मूल रचना का सम्पादन 340

परिशिष्ट - ख संबंधित चित्र

परिशिष्ट - ग सहायक पुस्तक सूची

अध्याय 1

निर्मल-सम्प्रदाय का परिचय एवं इतिहास

अध्याय - 1

"निर्मल सम्प्रदाय" का परिचय एवं इतिहास

1.1 "निर्मल - सम्प्रदाय" का परिचय

"निर्मल" फ़ारसी के शब्द "ख़ालिस" का पर्याय है, जिसका अर्थ है अशुद्धियों से रहित अथवा विशुद्ध । अन्य शब्दों में अशुद्धियों से रहित विशुद्ध धार्मिक मत ही निर्मल मत अथवा सम्प्रदाय है । एच०ए० रोज़ ने इस संबन्ध में लिखा है ----

"द निर्मला साधूज़ अर "प्योर सेंट्स" और ए सिख आर्डर विच वाज़ सिटर्लो अपोज़्ड टू दैट ऑफ़ द अकालीज़ । दे आर सेड नॉट टू अंडर-गो एनी राइट ऑफ़ प्योरीफ़िकेशन, बट हैव सिमर्ली टू रिसीव द अमृत लाइक अदर सिख्स वेन दे बिकम सिंह्ज़ ।"[1]

निर्मल संतों की वेशभूषा के संबंध में मेकालिफ़ का कथन है -----

" द निर्मलाज़ डू नॉट डिप दी पाहुल अर राइट ऑफ़ इनिशिएशन ऑफ़ बाइटल इम्पोर्टेंस, दो दे ऑर बेप्टाइज़्ड सिख्स । मेनी डू नॉट वीयर लाँग हेयर ऐंड फ़ॉर द कच्छ, दे सबस्टिट्यूट द लुंगी टाइट लंगोट । अर स्वायन-क्लाथ ऑफ़ द हिन्दू फ़कीर । एबॉव ऑल दे वीयर द अहर-कलर्ड ग्याबर, ए कलर फ़ारबिडन टू ऑल द फ़ालोअर्स ऑफ़ गुरु गोबिंद सिंह ।"[2]

---

1. एच०ए०रोज़ : इनसाईक्लोपीडिया ऑफ़ द रिलिजन ऐंड एथिक्स [भाग 9] इडनबर्ग, टी०ऐंड टी० क्लार्क, 1961 ई०, पृ० 375.
2. मेकालिफ़ : ए ग्लोसरी ऑफ़ द ट्राईब्ज़ ऐंड कास्ट्स ऑफ़ द पंजाब ऐंड नार्थ - वेस्ट फ़्रंटीयर्स प्रोविंसेज़ [भाग 1] पटियाला भाषा विभाग पंजाब, 1970 ई०, पृ० 709.

"निर्मल-सम्प्रदाय" सिख धर्म का अभिन्न अंग है, जिसका आरम्भ से ही मूल उद्देश्य सिख धर्म अथवा गुरु मत का प्रचार करना रहा है। गुरुमत-प्रचार के अतिरिक्त अध्ययन, अध्यापन, साहित्य-सृजन रोग-उपचार, तीर्थाटन इत्यादि भी इस सम्प्रदाय के विशेष धर्म रहे हैं। इनके शिष्यों ने इस परम्परा को चलाए रखा। इस संबंध में डा० अवतार सिंह का मत है ——— "द निर्मला कालोपर्श स्ट्रेस सिम्पलिसिटी ऑफ लाईफ एण्ड प्रीच द मारल प्रीसेप्टस कन्टेन्ड इन द आदि ग्रंथ।"[1]

निर्मल - सम्प्रदाय" के संत मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त हैं — पहले वर्ग के अन्तर्गत गुरु गोविंद सिंह जी द्वारा प्रदान किए गए भगवा वस्त्र (काषायवस्त्र) धारण करने वाले संत आते हैं। इस प्रकार के संत प्रायः अविवाहित रहते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। सफेद वस्त्र धारण करने वाले संत दूसरे वर्ग के अंतर्गत आते हैं। दूसरा निर्मल वर्ग दो भागों में विभाजित है। पहले भाग में आने वाले ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले "संत" कहलाते हैं। गार्हस्थ्य का पालन करते हुए "ज्ञानी" कहलाने वाले निर्मल संत दूसरे वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। निर्मल सम्प्रदाय में दीक्षित संत अपने नाम के पूर्व प्रायः "पंडित", "श्री श्री 108" अथवा नाम के बाद में "निर्मला" शब्द लिखते हैं।

महंत गणेशा सिंह[2] ने निर्मल संतों को दो श्रेणियों में विभाजित किया है —

1. डेरेदार संत

---

1. डा० अवतार सिंह : एथिक्स ऑफ द सिक्ख, पटियाला, पंजाबी विश्वविद्यालय, 1970 ई०, पृ०20.
2. महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, अमृतसर, ज्ञानी मदन मोहन सिंह, वैद्यक भण्डार, 1937 ई., पृ० 154.

(ख) विरक्त संत

(क) डेरेदार संत :-

जैसा कि नाम से स्पष्ट है डेरेदार संत प्रायः डेरों में रहते हुए गुरु-मत प्रचार, संस्कृत तथा गुरुमुखी का अध्यापन, चिकित्सा-उपचार इत्यादि जन-कल्याण का कार्य करते हैं। इस प्रकार के संतों के संबंध में महंत गणेशा सिंह का कथन है —

"इह कई गेरू रंगे बसत्र उढदे हन। अर कई सफेद बसत्र उढके कछुछ आदि चिंन रखदे होए भी निर्मले कहाउंदे हन।"[1]

(ख) विरक्त संत :

वैराग्य में प्रवृत्त विरक्त संत कभी भी एक स्थान पर टिके नहीं रहते। सदैव तीर्थ स्थानों की यात्रा करते हुए गुरु-मत का प्रचार करते रहते हैं। विरक्त संत का सुन्दर चित्र महंत गणेशा सिंह जी ने अंकित किया है —

"इनां दा लबास गेरू रंगा सरीर पर गातरी, सिर पर हलकी (छोटी) पग्ग तेड़ कुपीन हथ्थ विच चिपिय, सोटी अर उप्पर गोदड़ी इत्यादिक इह चिंह विरकतां महापुरखां दे हुंदे हन।"[2]

प्रत्येक निर्मल संत का, चाहे वह डेरेदार हो अथवा विरक्त, एक दीक्षा-गुरु होता है। दीक्षा-गुरु का संबंध किसी न किसी डेरे से

---

1. महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात् इतिहास निर्मल भेख, पृ० 156.
2. महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ० 155.

होता है और प्रत्येक डेरे का संबंध किसी न किसी उप- सम्प्रदाय से होता है । निर्मल सम्प्रदाय" के अन्तर्गत इस प्रकार के 33 उप-सम्प्रदाय आते हैं ---

1. उप-सम्प्रदाय ठाकुरां
2. उप-सम्प्रदाय नौरंगाबाद
3. उप-सम्प्रदाय होती मरदान
4. उप-सम्प्रदाय दुम्हरमी
5. उप-सम्प्रदाय भागीरथी
6. उप-सम्प्रदाय गंधीयां
7. उप-सम्प्रदाय मंगबाल
8. उप-सम्प्रदाय बंडोरी निझरां
9. उप-सम्प्रदाय कहूरीयां
10. उप-सम्प्रदाय कुबेरीयां
11. उप-सम्प्रदाय बिलौंगी
12. उप-सम्प्रदाय ठाकुर बहाल सिंह
13. उप-सम्प्रदाय गुलसरीयां
14. उप-सम्प्रदाय गिरवड़ी
15. उप-सम्प्रदाय बरनाला
16. उप-सम्प्रदाय डरौली
17. उप-सम्प्रदाय मुकतसरीयां
18. उप-सम्प्रदाय महिमेशाहीयां
19. उप-सम्प्रदाय बलाल
20. उप-सम्प्रदाय सेखवां दोदां
21. उप-सम्प्रदाय ठोकरीवाला

22. उप-सम्प्रदाय दोदर
23. उप-सम्प्रदाय गुरु मागिट
24. उप-सम्प्रदाय ज्ञानी साहिब
25. उप-सम्प्रदाय काशी
26. उप-सम्प्रदाय रामतीर्थीयां
27. उप-सम्प्रदाय अड्डनशाही निर्मले
28. उप-सम्प्रदाय बाबा गुरमुख सिंह
29. उप-सम्प्रदाय दमदमीयां
30. उप-सम्प्रदाय कुमा सिंह
31. उप-सम्प्रदाय अयोध्या-वासी
32. उप-सम्प्रदाय वृंदावनिए
33. उप-सम्प्रदाय कादियां

उपर्युक्त उपसम्प्रदायों का नामकरण स्थान विशेष या व्यक्ति विशेष के नाम के आधार पर किया गया है । जैसे डरौली, बरनाला, मुक्तसर, रामतीर्थ आदि स्थानों के नाम हैं, ठाकुर बहाल सिंह या बाबा गुरमुख सिंह व्यक्तियों के नाम हैं ।

"निर्मल - सम्प्रदाय का आविर्भाव कैसे हुआ, कहाँ हुआ, इसका प्रवर्तक कौन था, और इसका विकास कैसे हुआ, इत्यादि अनेक प्रश्न हमारे मानस-पटल पर उभरते हैं । इन सब प्रश्नों का समाधान प्राप्त करने के लिए हमें इस सम्प्रदाय के इतिहास पर संक्षेप में विचार करना होगा ।

1.2 "निर्मल-सम्प्रदाय " का इतिहास

"निर्मल-सम्प्रदाय" के इतिहास के संबंध में सामग्री प्रायः नाममात्र को ही उपलब्ध होती है, फिर भी हम

यथा-संभव इसका विवरण प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे । सुविधा के लिए "निर्मल-सम्प्रदाय" के इतिहास को हमने निम्नलिखित तीन चरणों में विभाजित किया है —

1.2.1 "निर्मल-सम्प्रदाय" का आविर्भाव

"निर्मल-सम्प्रदाय" का आविर्भाव कहाँ, कैसे और किसने किया, यह एक विवादास्पद विषय है । इस संबंध में समय-समय पर अनेक विद्वान अपने अभिमत व्यक्त करते रहे हैं । इस संबंध में किसी अन्तिम निर्णय पर पहुँचने से पूर्व विभिन्न विद्वानों के अभिमतों का अध्ययन समीचीन प्रतीत होता है । हमने विद्वानों के अभिमतों को अपनी सुविधा के लिए दो भागों में विभाजित किया है —

1.2.1.1 निर्मल-विद्वानों के अभिमत

1.2.1.2 अन्य विद्वानों के अभिमत

1.2.1.1 निर्मल-विद्वानों का अभिमत :-

अधिकांश निर्मल-विद्वान गुरु नानक देव जी को अपने सम्प्रदाय का प्रवर्तक मानते हैं और उन्हीं के समय को अपने सम्प्रदाय के आविर्भाव का समय स्वीकार करते हैं । पंडित गुलाब सिंह निर्मला का अपने सम्प्रदाय के संबंध में कथन[1] है कि गुरु गोबिंद सिंह भगवान के अवतार हैं । उन्होंने इस पंथ की नींव डाली और इसे दिव्यविधि बनाया । एक अनुको

---

1. गुलाब सिंह निर्मला : मोक्ष पंथ प्रकाश (1778 ई०) पृ०288-289. (गुरु नानक देव विश्वविद्यालय पुस्तकालय - हस्तलिखित संख्या 48- अमृतसर में उपलब्ध है ।)

को उन्होंने राष्ट्र-रक्षार्थ शस्त्रधारी और दूसरे अनुजों को
ब्रह्मज्ञानी बनाया ।

[illegible]

श्री गोबिंद सिंघ सु है, पूरन हरि अवतार ।
रच्यो पंथ जग मैं प्रगट, दो बिध को बिस्तार ।। 86।।

एकन के कर खड्ग दै, शुभ बल बहु बिस्तार ।
पालन भूमी को करयो दुस्टन मूल उखार ।। 87।।

औरन को बिरच बिमल मति, दीनो परम बिबेक ।
निरमल भाखे जगत तिह हेरें ब्रहम सु एक ।। 88।।

तिन पद पंकज नीर लहि पायो मोहि बिचार ।
तिनु अनुयाई बाल मैं कीनो ग्रंथ उचार ।। "

गुलाब सिंह निर्मला के कथन से यह स्पष्ट होता है कि "निर्मल-सम्प्रदाय का जन्म गुरु गोबिंद सिंह के काल में हुआ था । पंजाब के इतिहासकार ज्ञानी ज्ञान सिंह गुरु नानक देव जी को अपने सम्प्रदाय का प्रवर्तक मानते हैं । उनकी मान्यता है कि "बेई" नदी में गुरुनानक देव स्नान करते हुए तीन तक अदृश्य रहे थे । इस अदृश्यता-काल में उन्हें ब्रह्म ज्ञान हो गया था । वे जब नदी से निकले , तो उन्होंने काषाय वस्त्र (भगवा वस्त्र) धारण कर रखे थे । यहीं से निर्मल पंथ की स्थापना हुई है ।

---

1. बाबा बेंई नाइ के सचखंड में पहुता जाई ।
बिसनु देव ज्युं होइ के गुरु मंत्र दे कला बधाई ।
टोपी चोला बरण ने भेटा दे मल सेली पाई ।
बेई बिच्चों निकले रंग मजीठी बसन धराई ।
बैठे कवर असथान मै दरशन को उलटी लोकाई।
वाह गुरु सतनाम दे चार बेद को सार बताई ।
चढ़ी निबाब मसीत मै दौलत खां अजमत अजमाई ।
रीति फकीरी धार के मरदाना बाला संगाई ।
छोड सुलखणी सेलकर भाई चल सारी आप लखाई ।

इस तथ्य के अन्य प्रमाण भी हैं, जो निम्नलिखित है —

"कलियुग नानक निरमला पंथ चलायो आइ ।
वेद कतेबों बाहरा जप दे इक खुदाइ ।
कलियुग नानक निरमली गुरु सिक्खी परवान ।
पार उतारे उम्मती सतय नाम दे दान ।[1]

"थाप्यो लहिणा जीवदे गुरिआई सिर छत फिराया ।
मारया सिक्का जगत विच गुरु नानक निरमल पंथ चलाया[2] ।"

"निरमल भेख अपार तास बिन अवर न कोऊ[3]"

निरमल पंथ चलाइओ इक अनेक भाति दिखाई ।
साधन कठिन दृढाइ कै गुर सिक्खी दी रीति चलाई ।
कलियुग नानक कला दिखाई ।

भाई भगीरथ, 35 पौड़ी उद्धृत ज्ञानी ज्ञान सिंह : निर्मल -पंथ -प्रदीपका, (संपादक-इंद्र सिंह चक्रवती), निर्मल पंचायती अखाड़ा, 1962 ई0 पृ0 16-17.

1. मक्के की गोष्ट, पौड़ी-40, उद्धृत ज्ञानी ज्ञान सिंह :निर्मल पंथ-प्रदीपका, पृ0 18.
2. भाई गुरुदास जी की पहली वार, पौड़ी-44, उद्धृत ज्ञानी ज्ञान सिंह : निर्मल-पंथ-प्रदीपका, पृ0 18.
3. मथुरा भट्ट का कथन, उद्धृत ज्ञानी ज्ञान सिंह : निर्मल-पंथ- प्रदीपका, पृ0 19.

ज्ञानी ज्ञान सिंह ने "गुरुग्रंथसाहिब" के निम्नलिखित अंशों को भी प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया है ।

"नानक संत निरमल भए जिन मन वसिआ सोइ
नानक नाम रते से निरमले साचे रहे समाइ
सबदि रते से निरमले
मैं पारब्रहम होवै निरमला तू
सबद सलाहे से जन निरमल
नानक हरि जन निरमले
संतसंगि होहु निरमला चूकै जम की जोह
सो जन निरमल जिन आप पछाता"[1]

ज्ञानी ज्ञान सिंह जी ने "निर्मल" शब्द के संज्ञा रूप को स्वीकार करते हुए यह प्रमाणित किया है कि गुरु नानक देव जी ही "निर्मल-सम्प्रदाय" के प्रवर्तक थे और गुरु जी द्वारा वेंई नदी में स्नान के उपरान्त "सच खंड" की प्राप्ति के साथ ही "निर्मल-सम्प्रदाय" का आविर्भाव हुआ ।

अपने सम्प्रदाय के आविर्भाव के संबंध में महंत गणेशा सिंह ने ज्ञानी ज्ञान सिंह के अभिमत का अनुमोदन किया है । महंत गणेशा सिंह

---

1. ज्ञानी ज्ञान सिंह : निर्मल-पंथ-प्रदीपका, पृ० 20.

जी का कथन है —

"अर जद धरम दी ज़ियादा छेम करने दा समय आया तां आप वीह सुकल पूरनमाशी संमत 1553 विखे, जद कि आप दी आयु 27 साल 2 महीने दी सी, वेईं नदी विच इशनान करदे लोप हो के सच खंड जा पुजे, जैसे कि उस समय दा लेख, भाई भगीरथ दी वार विखे वरनन कीता मिलदा है —

निरमल पंथ" चलाइड एक विवेक भगति दिड़ाई ।
साधन कठिन छुडाइके गुर चेले दी रीत चलाई ।
कलिजुग नानक कला दिखाई ।"[1]

इस प्रकार महंत गणेशा सिंह ने "निर्मल-सम्प्रदाय" के आविर्भाव का समय सन् 1496 ई० (संवत् 1553) निश्चित किया है ।

महंत दयाल सिंह ने भी अपने सम्प्रदाय का प्रवर्तक गुरु नानक देव जी को ही स्वीकार किया है —

"गुरु नानक देव जी ने प्राणी मात्र नूं संसार समुंदर तों पार करन लई इक निरोल ईश्वर दी भगती, नाम सिमरन रूप निरमल पंथ (निरमल मारग) असथापन कीता । — — — — — — — —

आप दा इह उपदेश सुणन नाल बेअंत जगयासू भगती मारग विच आए ते इस निरमल मारग विच आए होए सम समदाय दा नाम भी धीरे धीरे निरमल पंथ प्रसिद्ध हो गिआ ।"[2]

---

1. उद्धृत महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ० 5-6.
2. महंत दयाल सिंह : निर्मल पंथ दर्शन (भाग 1), अमृतसर डेरा बाबा भिखारा सिंह, 1952 ई०, पृ० 105-106.

"निर्मल उद्देश्य" के संपादक महंत हरी सिंह ने भी अपने सम्प्रदाय का आरम्भ गुरु नानक देव जी से ही स्वीकार किया है ———

"इह उह समाँ सी जद श्री गुरु जी वेईं नदी इशनान दे बहाने डुबकी मार के सच खंड विच निरंकार पास पहुंचे —— "सो दरु तेरा केहा सो घरु केहा ——————" इत्यादि शब्दां दुआरा सच खंड वासी निरंकार दी उसतती कीती अते निरंकार ने प्रसंन हो के संसारी जीवाँ दा उद्धार करन लई आप नूं मूल मंत्र दा उपदेश ते निर्मल भेख दे के भेजिया ते भाई भगीरथ नूं आ के सभ तों पहिलाँ सिख बणाइया ।"[1]

स्वामी अर्जुन सिंह मुनि ने भी "परमकारुणिक आद्यनिर्मल आचार्य"[2] कहकर गुरु नानक देव जी को पहला निर्मला स्वीकार किया है ।

महंत बिशन सिंह क्रीट ने अपने निबंध "निर्मल संत ते संस्कृत विद्यालय" में अपने सम्प्रदाय के अविर्भाव के संबंध में कहा है ——— "गुरुमति तों पता लगदा है कि श्री गुरु नानक देव जी तों आरंभ होई निर्मल संप्रदा साहित्तक दुनिया विच अग्रगामी रही है ।"[3]

---

1. महंत हरी सिंह : निर्मल भेख दा संखेप इतिहास अते सम्प्रदायिक वंशावली, प्रकाशक स्वयं, अमृतसर, 1960 ई0 पृ0 15-16.
2. अर्जुन सिंह मुनि : संक्षिप्त इतिहास श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा, कनखल, निर्मल पंचायती अखाड़ा, 1974 ई0, पृ0 16.
3. महंत बिशन सिंह क्रीट : अमृत वचन ते संत दर्शन हरिद्वार, प्रकाशक स्वयं, 1973 ई0, पृ0 475.

उपर्युक्त निर्मल विद्वानों के अभिमतों के संयोजन से सारांश यह निकलता है कि "निर्मल-सम्प्रदाय" का अविर्भाव सन् 1496 ई० में बेईं नदी के तट पर गुरु नानक देव जी के द्वारा हुआ।

1.2.1.2 अन्य विद्वानों का अभिमत :

"निर्मल सम्प्रदाय" के अविर्भाव के संबंध में अन्य विद्वानों में बहुत मतभेद है। अधिकांशः विद्वान गुरु गोविंद सिंह जी को "निर्मल-सम्प्रदाय" का प्रवर्तक मानते हैं, परन्तु कुछ विद्वान उचित प्रमाणों की अनुपस्थिति होने के कारण इस सम्प्रदाय का अविर्भाव निश्चित करने में अपनी असमर्थता व्यक्त करते हैं।

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तन का श्रेय गुरु गोबिन्द सिंह को देते हुए भाई कान्ह सिंह कहते हैं ———

"श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने पंज सिंघां (राम सिंघ, कर्म सिंघ, गंडा सिंघ, बीर सिंघ, सोभा सिंघ) नूं ब्रह्मचारी दे भेस विच संस्कृत विद्या पढ़न लई काशी भेजिया सी, उनां दी "निर्मले" संज्ञा होई। इन्हां पंजां दे चाटड़े जो निर्मल बसत्र पहिर शांतचित्त रहि के विद्या अर नाम दा अभियास, अते धर्म प्रचार करदे रहे हन, उह सभ निर्मले सद्दे जांदे हन।"[1]

शमशेर सिंह अशोक ने अपने निबंध "निर्मले साधूआं दी सिख धर्म नूं देन" में भाई कान्ह सिंह नाभा के मत

---

1. भाई कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पटियाला, भाषा विभाग पंजाब, 1975 ई०, पृ० 712.

का ही समर्थन किया है ———

" ———————— पंज सिक्खाँ भाई राम सिंघ, भाई कर्म सिंघ, भाई गंडा सिंघ, भाई सैणा सिंघ ते भाई वीर सिंघ नूं, ब्रह्मचारी साधूआँ दे भेस विच, संस्कृत पढ़ न वास्ते आनंदपुरों बनारस भेजिया सी कि गुरु ग्रंथ विच पूरी तरहाँ विदिया दा वाधा होवे अते गुरमति दा सही अर्थां विच प्रचार होवे। बस, इहो साधूआँ दी इस निर्मल सम्प्रदाइ दा मुढ्ढ सी।"[1]

प्रसिद्ध पत्रकार खुशवंत सिंह ने भी उपर्युक्त अभिमत की पुष्टि की है ————

"द ट्रबल्ड ईयर्ज़ ऐट आनंदपुर वर आल्सो फुल ऑफ इन्टलेक्चुअल एक्टिविटी गोबिंद सेलेक्टड फाइव ऑफ द मोस्ट स्कालर्ली ऑफ हिज़ डिसाइपिल्ज़ ऐंड सेंट देम टू बनारस टू लर्न संस्कृत ऐंड द हिन्दू रिलिजन टैक्स्ट्स टू बी बेटर एबल टू इन्टरप्रेट द राइटिंग्ज़ ऑफ द गुरु विच वर फुल ऑफ अल्यूजन्स टू हिन्दू माईथालोजी ऐंड फिलॉसफी। दीज़ फाइव बिगैन द स्कूल ऑफ सिख थीयालोजियनस नोन एज़ द निर्मलाज़।"[2]

---

1. शमशेर सिंह अशोक : निर्मल सम्प्रदाय, अमृतसर गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, 1981 ई0, पृ0 147.
2. खुशवंत सिंह : द हिस्ट्री ऑफ द सिक्खस (भाग 1), दिल्ली, आक्सफोर्ड प्रेस, 1977 ई0, पृ0 80.

डा० हरिभजन सिंह ने भी उपर्युक्त मत की ही पुष्टि की है ————

"तदुपरान्त गुरु जी ने पाँच चुने हुए सिखों को संस्कृत भाषा सीखने के लिए काशी भेजा । यही पाँच सिख (कर्म सिंह, गंडा सिंह, वीर सिंह, राम सिंह, सैणा सिंह) काशी निवासी पंडित सदानंद से संस्कृत विद्या प्राप्त करके सनातन धर्म के प्रथम प्रामाणिक प्रचारक, एवं अध्यापक बने । इन्हीं के द्वारा दीक्षित शिष्य-वर्ग से निर्मल महात्माओं की पद्धति चली ।"[1]

डा० गोपाल सिंह,[2] सुरजीत सिंह गांधी,[3] ठाकुर देश राज,[4]

---

1. हरिभजन सिंह : गुरुमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, नई दिल्ली, एस चाँद, 1976 ई०, पृ० 162-163.
2. डा० गोपाल सिंह : ए हिस्ट्री ऑफ द सिख पीपल (1469-1978) नई दिल्ली, वल्ड सिख युनीवर्सटी प्रेस, 1979 ई०, पृ० 285.
3. सुरजीत सिंह गांधी : हिस्ट्री ऑफ द सिख गुरूज़, दिल्ली, गुरदास कपूर एंड संस, 1978 ई०, पृ० 522-523.
4. ठाकुर देश राज : सिख इतिहास, संगरिया (गंगानगर) ग्रामोत्थान विद्यापीठ, 1954 ई०, पृ० 571.

प्यारा सिंह पदम[1], डा० जसबीर सिंह अहलूवालिया[2] इत्यादि विद्वानों ने भी गुरु गोबिंद सिंह जी को ही "निर्मल - सम्प्रदाय" का प्रवर्तक स्वीकार किया है ।

डा० चन्द्रकांत बाली का अभिमत इससे कुछ अलग है । वे मानते हैं कि इस सम्प्रदाय का प्रवर्तन बीर सिंह ने किया है ---- "गुरु गोबिंद सिंह जी के एक प्रमुख शिष्य बीर सिंह ने निर्मल-सम्प्रदाय" चलाया ।"[3]

"निर्मल-सम्प्रदाय" के अविर्भाव के संबंध में डा० सुरिन्दर सिंह नबारा का कथन है कि इसे बंधोकृत रूप उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में मिला था -------- "निर्मल संप्रदाइ दा मूल सिक्ख मत नालों वखरा नहीं है । सिक्खां नालों निखड़ के अलग हो चुके धर्म वेत्तायों (थीयालोजियनज़) दे वर्ग ने ही अपने आप नूं संप्रदाइ दे रूप विच ज्थे बंद कर लिया। ---------- इसे

---

1. प्यारा सिंह पदम : श्री गुरु गोबिंद सिंह जी दे दरबारी रतन, पटियाला, कलम मन्दिर, 1976 ई०, पृ० 229.
2. डा० जसबीर सिंह अहलूवालिया : सिक्ख फलसफे दी भूमिका, अमृतसर, रवबीर प्रकाशन, 1976 ई०, पृ० 49.
3. डा० चन्द्रकांत बाली : पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य का इतिहास, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1962 ई०, पृ० 167.

दी चाल अते बदल रहियाँ परिस्थितियाँ दे प्रतिफल 19वीं सदी दे मध्य तों बाद सिक्ख मत विच वी कुछ सुधारवादी लहिराँ ने जन्म लिया । इन्हाँ लहिराँ दा सिट्टा इह निकलिया कि सिक्खाँ विच पार्टियाँ बन गईयाँ अते ठीक इसे काल विच विद्वान वर्ग दे राजनैतिक आगुआँ नाल मत भेद हो गए अते इह वर्ग इक नियम बद्ध संप्रदाय बन गई जो "निर्मल संप्रदाय" दे नाँ नाल प्रसिद्ध होई ।[1]

राय जसबीर सिंह का अपने निबंध "निर्मल भेख दी आरम्भ" के अन्तर्गत कथन है कि इस का प्रवर्तन न तो गुरु नानक देव से मानना चाहिए और न ही गुरु गोबिन्द सिंह से । यद्यपि निर्मल संतों की उपस्थिति को गुरु गोबिन्द सिंह के समकाल में वे स्वीकार करते हैं —"मुद्दा इह है कि निर्मलियाँ दे गुरु नानक साहिब दे समें तों शुरू होन वाले विचार दी इतिहासिक पुष्टि नहीं हुंदी । ना तो "श्री गुरु ग्रंथ साहिब" अते होर मुढले स्रोतों विच आया पद "निर्मल" सम्प्रदाय -विशेष दा अर्थ दिंदा है, अते ना ही इस विचार दी पुष्टि वासते साइतों दे सजरे ही सहायक सिद्ध हुंदे हन । गुरु गोबिंद सिंह दे वेलें सिक्खाँ नूं काशी भेजन तों इस सम्प्रदाय -विशेष दे आरंभ दा विचार वी बहुता बलवान नहीं है । निर्मलियाँ नूं मिले पट्टियाँ ते उन्हाँ दीयाँ रचनावाँ तों पता लगदा है कि पूर्व सिक्ख काल विच निर्मले संत मौजूद सन अतें कई निर्मले संत गुरु गोबिंद सिंह

---

1. डा० सुरिन्द्र सिंह ससारा : निर्मले संताँ दी पंजाबी साहित्य नूं देन, अप्रकाशित पी०एच० डी० शोध ग्रंथ, चण्डीगढ़, पंजाब विश्वविद्यालय, 1975 ई०, पृ० 41- 42.

दे समकाली सन ।[1]"

निर्मल सम्प्रदाय के विकास के संबंध में डा०अवतार सिंह का मत है ———— "द निर्मलाज़ ट्रेस देयर ओरिजन फ्राम गुरु नानक आनवर्ड, बट देयॅर आर सम स्कालर्ज़ हू आर ऑफ द व्यू देट द मूवमेंट स्टार्टेड ड्यूरिंग गुरु गोबिंद सिंहज़ पीरियड । ही डीप्यूटेड सम सिक्ख्र टू गो टू बारानसी, द सेन सेंटर ऑफ लरनिंग टू रिसिव एजुकेशन इन क्लासिकल लैन्गुएज।[2]"

पंजाब भाषा-विभाग द्वारा प्रकाशित एक पुस्तक में "निर्मल-सम्प्रदाय" का इतिहास पर्याप्त अंधकारमय स्वीकार किया गया है ————

" द निर्मला साधूज़ अर "प्योर सैंट्ज़" आर ए सिख आर्डर । दे ओरिजनेटिड, लाइक द अकालीज़ , इन द टाइम ऑफ गुरु गोबिंद सिंह, बट हिस्ट्री ऑफ देयर फाउंडेशन इज़ आब्सक्योर ।[3]"

---

1. राय जसबीर सिंह : (निर्मल भेख दा आरम्भ) निर्मल सम्प्रदाय, पृ0 37.
2. डा0 अवतार सिंह : एथिक्स ऑफ द सिक्ख, पटियाला, पंजाबी विश्वविद्यालय, 1970 ई, पृ0 20.
3. पंजाब भाषा विभाग : ए ग्लासरी ऑफ द ट्राईब्स एंड कास्टज़ ऑफ द. पंजाब एंड नार्थ - वेस्ट फ्रंटियर प्रोविंस (भाग 3) पटियाला, पंजाब भाषा विभाग, 1970 ई0, पृ0 172.

डा० हरजीत कौर मदान भी स्वीकार करती हैं कि "निर्मल धर्म का प्रारंभिक इतिहास अंधकार ग्रस्त है ।"[1] एक अन्य स्थल पर उनका कथन है ——— "उपलब्ध प्रामाणिक सामग्री के आधार पर ऐसा लगता है कि "निर्मल-सम्प्रदाय" की स्थापना संभवतः दशम गुरु से पूर्व नहीं हुई होगी ।"[2]

उपर्युक्त निर्मल संतों तथा अन्य विद्वानों के अभिमतों के अध्ययन के बाद हमारा मत निम्नलिखित है ———

गुरु नानक देव जी का सिख धर्म सम्पूर्ण मानव जाति के लिए था, सम्प्रदाय विशेष अथवा वर्ग विशेष के लिए सीमित नहीं था । इसलिए समय-समय पर विभिन्न विद्वानों ने उसे विभिन्न नाम दिए । किसी ने इसे "नानक पंथ" कहा और किसी ने "गुरमुख पंथ", किसी ने "गुरु सिख पंथ" कहकर पुकारा तो किसी ने "निर्मल पंथ" को

---

1. डा० हरजीत कौर मदान : तारा सिंह नरोत्तम : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, अप्रकाशित पी०एच०डी० शोध ग्रंथ, चण्डीगढ़, पंजाब विश्वविद्यालय, 1971 ई० पृ० 77.

2. डा० हरजीत कौर मदान : तारा सिंह नरोत्तम व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० 77.

ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਨਿਰਮਲ ਭੇਖ ਰਤਨ ਮਹੰਤ ਅਵਤਾਰ ਸਿੰਘ ਜੀ "ਨਿਰਮਲ ਆਸ਼ਰਮ"

ਲਖੀਮ ਪੁਰ ਖੀਰੀ, ਯੂ. ਪੀ. ਵਲੋਂ

ਸ੍ਰੀ ਦਸ਼ਮੇਸ਼ ਸਤਿਗੁਰੂ ਜੀ ਦੀ ਤਿੰਨ ਸੌ ਸਾਲਾ ਜਯੰਤੀ

ਦੀ ਖੁਸ਼ੀ ਵਿਚ "ਨਿਰਮਲ ਉਦੇਸ਼" ਦੇ ਪਿਆਰੇ ਪਾਠਕਾਂ ਦੀ ਭੇਟਾ ਕੀਤੀ ਗਈ ਇਹ ਤਿੰਨ ਰੰਗੀ ਤਸ ੀਰ

ਪੰਜ ਨਿਰਮਲੇ ਸੰਤ

ਸ੍ਰੀ ਮਾਨ ਸੰਤ ਕਰਮ ਸਿੰਘ ਜੀ, ਸੰਤ ਗੰਡਾ ਸਿੰਘ ਜੀ, ਸੰਤ ਬੀਰ ਸਿ ਘ ਜੀ, ਸੰਤ ਰਾਮ ਸਿੰਘ ਜੀ, ਸੰਤ ਸੈਣਾ ਸਿੰਘ ਜੀ

ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਨੂੰ ਸ੍ਰੀ ਕਲਗੀਧਰ ਸਤਿਗੁਰੂ ਜੀ ਸ੍ਰੀ ਪਾਉਂਟਾ ਸਾਹਿਬ (ਰਿਆਸਤ ਨਾਹਣ) ਤੋਂ ਸੰਸਕ੍ਰਿਤ ਪੜ੍ਹ ਲਈ ਕਾਸ਼ੀ (ਬਨਾਰਸ, ਹੁਣਨਾਮ ਵਾਰਾਣਸੀ) ਘਲ ਰਹੇ ਹਨ ।

ਕੁਲ ਪੂਜ, ਨਿਰਉਜ, ਰਣਜੁਝ, ਪੂਰੇ ਸੂਰੇ, ਤੇਗਾਂ ਮਾਰ ਦੁਸ਼ਟ ਜਿਨ੍ਹਾਂ ਉਥਲਾ ਪਥੱਲੇ ਨੇ ।
ਗੁਰੂ ਪ੍ਰਮੇਸ਼ਵਰ ਦੀ ਆਗਿਆ 'ਚਿ ਤਿਆਗੀ ਹੋ ਕੇ, ਸੰਸਕ੍ਰਿਤ ਪੜ੍ਹਣ ਹਿਤ ਖੁਸ਼ੀ ਖੁਸ਼ੀ ਚਲੇ ਨੇ ।
ਜਪੀ, ਤਪੀ, ਸਤੀ, ਹਠੀ, ਸੂਰਬੀਰ ਵਡ ਧੀਰ, ਨਿਰਵੈਰ, ਨਿਰਚਾਹ, ਸ਼ਾਂਤ ਰੂਪ ਭਲੇ ਨੇ ।
ਸਰਵ ਤਿਆਗੀ ਵੇਖ ਗਾਤੀ ਬੰਨ੍ਹ ਚਿੱਪੀ ਦੇ ਕੇ, ਗੁਰੂ ਦਸਮੇਸ਼ 'ਕ੍ਰੀਟ' ਹੱਥੀਂ ਕਾਸ਼ੀ ਘੱਲੇ ਨੇ ॥

'ਕ੍ਰੀ'

संज्ञा प्रदान की । यदि निर्मल संत अथवा विद्वान गुरु नानक देव के मत को "निर्मल मत" कहते हैं, तो निस्संदेह उनका अभिमत अनुचित नहीं है, लेकिन वह "निर्मल मत" वर्तमान "निर्मल -सम्प्रदाय-" की सीमाओं अथवा मर्यादाओं में बद्ध कदापि नहीं था ।

अन्तिम सिख-गुरु गुरु गोविंद सिंह जी सिख धर्म का प्रचार सम्पूर्ण भारत में करना चाहते थे । इस कार्य के लिए उन्हें ऐसे सिख धर्म -प्रचारकों की आवश्यकता थी, जिन्हें भारतवर्ष के अन्य धर्मों का पर्याप्त ज्ञान हो । चूंकि दूसरे धर्मों के अधिकांश धार्मिक ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखे हुए थे और संस्कृत भाषा का यथेष्ट ज्ञान सिखों को नहीं था, इसलिए गुरु जी ने अपने एक पंडित रघुनाथ से अपने सिखों को संस्कृत सिखाने का अनुरोध किया । पंडित रघुनाथ ने अपनी रूढ़िवादिता के कारण गुरु जी के अनुरोध को अस्वीकार कर दिया । इस घटना की प्रतिक्रिया स्वरूप गुरु जी ने ब्रह्मचारी के वेश में भगवे वस्त्र पहनाकर अपने पांच सिखों —— भाई कर्म सिंह, भाई राम सिंह, भाई सैणा सिंह अथवा शोभा सिंह को सन् 1686 ई० में संस्कृत अध्ययन के लिए पंडित सदानंद के पास बनारस भेजा ।

अमृतसर से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक पत्र "निर्मल-उद्देश्य " के 11 जनवरी, 1967 के अंक में एक चित्र प्रकाशित हुआ जिसकी फोटो प्रति यहाँ दी जा रही है । इस चित्र में गुरु गोविंद सिंह सिंहासन पर आसीन हैं । उनके श्रद्धालु उनके सामने बैठे हुए हैं और उनके पांच निर्मल शिष्य ———— संत कर्म सिंह, संत गंडा सिंह, संत राम सिंह, संत वीर सिंह, संत सैणा सिंह उनके सम्मुख करबद्ध खड़े हैं, एक शिष्य के हाथ में

ਸ੍ਰੀ ਅਨੰਦਪੁਰ ਸਾਹਿਬ ਵਿਖੇ ਲੰਗਰਾਂ ਦੀ ਪ੍ਰੀਖਿਆ ਕਰਨ ਸਮੇਂ ਨਿਰਮਲ ਭੇਖ ਦੇ ਵੇਸ਼ ਵਿਚ

श्री गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज

श्री आनन्द पुर में अपने शिष्यों के लंगरों (अन्नदान क्षेत्रों) की एक रात्रि को परीक्षा करते समय निर्मल भेख के

ਫਿਰ ਸਿਖਨ ਕੇ ਲੰਗਰ ਕੀ, ਪਰੀਖਯਾ ਕਰਨੇ ਹੇਤ।
ਸਾਧੂ ਭੇਸ ਧਰਿ ਨਿਸਾ ਕੋ, ਗਏ ਗੁਰੂ ਜਬ ਚੇਤ।......
ਪੰਥ ਨਿਰਮਲਾ ਗੁਰੂ ਕਾ, ਹੈ ਨਿਸਚੈ ਲਿਹੁ ਧਾਰ।
ਜਿਸਕੋ ਪਹਿਲੀ ਵਾਰ ਮੈਂ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਦਾਸ ਨਿਹਾਰ।

—ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਪੰਥ ਪ੍ਰਕਾਸ਼, ਗਿਆਨੀ ਗਿਆਨ ਸਿੰਘ

कमण्डल भी है। ये पाँचों शिष्य काषाय वस्त्रों में हैं। गुरु गोबिन्द सिंह जी का हाथ अभय मुद्रा में उठा हुआ है। पाँचों शिष्यों के सिर आज्ञा मांगने की मुद्रा में कुछ-कुछ झुके हुए हैं। यह चित्र नाहटा साहिब (हिमाचल) का है, क्योंकि पृष्ठ-भूमि में पहाड़ दिखाए गए हैं। यह चित्र इन पाँचों शिष्यों को संस्कृत के ज्ञानार्जन के लिए भेजे जाने के समय का है और यह बात चित्र में साफ-साफ लिखी भी हुई है।

इसी पत्र के 23 दिसम्बर, 1970 के अंक में एक दूसरा चित्र छपा है, जिसमें श्री गुरु गोबिंद सिंह जी को एक निर्मल संत के वेश में दिखाया गया है। उनकी वेश-भूषा में पैरों में खड़ाऊँ, हाथ में कमण्डल और काषाय वस्त्र प्रदर्शित किए गए हैं। अनुश्रुति है कि आनंदपुर साहिब में अपने शिष्यों के मनों की परीक्षा करने के लिए वे एक रात निर्मल संत के वेश में प्रगट हुए थे। यह चित्र उसी घटना को सूचित करता है।

इन दोनों चित्रों से यह निष्कर्ष तो निकाला ही जा सकता है कि बहुत से लोगों की यह धारणा है कि निर्मल - सम्प्रदाय का प्रगाढ़ संबंध गुरु गोबिंद सिंह जी से है।

इतिहासकार सुरिन्दर सिंह गांधी ने बनारस भेजे जाने वाले सिखों की संख्या 13 स्वीकार की है।[1] 6 वर्ष बाद संस्कृत भाषा एवं वेदांत दर्शन में निपुण होकर ये विद्वान गुरु जी के पास आनंदपुर वापिस लौट आए थे और गुरु जी की इच्छानुसार

---

1. सुरजीत सिंह गांधी : हिस्ट्री ऑफ द सिख गुरूज़, पृ0 523.

धर्म-प्रचार में अग्रसर हुए थे । "निर्मल - सम्प्रदाय" का आविर्भाव हम इस समय से स्वीकार कर सकते हैं क्योंकि इन्हीं शिष्यों ने आगे चलकर "निर्मल-सम्प्रदाय" विशेष को "सिख मत" अथवा "निर्मल मत" से कुछ विशिष्ट अन्तरों के साथ पुष्पित एवं पल्लवित किया ।

1.2.2 "निर्मल - सम्प्रदाय" का विकास

"निर्मल पंथ प्रदीपका" {1891 ई0} से पूर्व कोई भी ऐसा सिख इतिहास-ग्रंथ नहीं मिलता, जिसमें "निर्मल-सम्प्रदाय" के विकास पर विधिवत् प्रकाश डाला गया हो । तथापि इससे पूर्ववर्ती काल को निर्मल संतों, प्रभृत्ति विद्वानों की कृतियाँ मिलती हैं, जिनके आधार पर "निर्मल-सम्प्रदाय" के विकास पर प्रकाश डाला जा सकता है । चूंकि निर्मल संतों का मुख्य कार्य धर्म-प्रचार तथा साहित्य-सृजन ही रहा, इसलिए धार्मिक तथा साहित्यिक घटनाक्रम के आधार पर ही यह अध्ययन सम्पन्न किया जा सकता है । सरलता के लिए हमने "निर्मल-सम्प्रदाय" के विकास को दो चरणों में विभाजित कर दिया है ।

1.2.2.1 निर्मल सम्प्रदाय का विकास {आविर्भाव-काल से 18वीं शताब्दी तक}

यद्यपि सिख - कर्म सिंह, गंडा सिंह, वीर सिंह, राम सिंह तथा सैणा सिंह { अथवा शोभा सिंह} गुरु गोविन्द सिंह जी की आज्ञा का पालन करते हुए सन् 1686 ई0 में संस्कृत-अध्ययन के लिए बनारस गए थे । 6 वर्ष बाद आनंदपुर लौटने वाले गुरु गोविंद सिंह जी के इन

समकालीन निर्मल विद्वानों में से किसी की भी कोई मौलिक अथवा अनुदित रचना आज उपलब्ध नहीं है । महंत हरी सिंह जी ने शजरे [वंशावली] के आधार पर गुरु जी के समकालीन भाई धर्म सिंह तथा दया सिंह [पांच प्यारों में से] को अपने सम्प्रदाय के उप-सम्प्रदायों के आरम्भिक संत स्वीकार किया है ।[1]

गुरु गोबिंद सिंह के निर्वाण के 2 वर्ष बाद भाई दरगाहा सिंह 1710 ई० में अबचल नगर [नांदेड़ साहब] छोड़कर कनखल आ गए । उन्होंने कनखल के हाकिम राय अहमद को रूहेलों के विरुद्ध सहायता की थी, जिसके फलस्वरूप राय अहमद ने 1726 ई० में सनद लिखकर दरगाहा सिंह जी को कनखल में भूमि प्रदान की थी । 1739 ई० में बाबा दरगाहा सिंह जी ने इस स्थान को डेरे का रूप दे कर रहना आरम्भ कर दिया ।

इसी बीच पंजाब में सिख समुदाय 12 मिसलों में विभाजित होना आरम्भ हो गया, परन्तु सिख धर्म के प्रचारक होने के कारण निर्मल संतों का आदर सिख-समुदाय में बना रहा । इतिहासकार सुरिंदर सिंह गांधी का कथन है ———

"आफ्टर द डेथ ऑफ गुरु गोबिंद सिंह, द निर्मलाज़ स्टेड द मैसेज ऑफ द गुरु । दे एक्टेड नॉट

---

1. महंत हरी सिंह : निर्मल भेख का संक्षिप्त इतिहास और संप्रदायिक वंशावली, पृ० 48.

ओनली एज टार्च- बीयरर ऑफ सिक्खिज्म बट आलसो एज कान्शियस कीपर्ज़ ऐंड पोलिटिकल एडवाइज़र्ज़ ऑफ द सिक्खस।[1]

मिसल काल में सिक्ख-सरदारों ने अपने धर्म-प्रचारकों को जागीरें देने की पेशकश आरम्भ कर दी थी, यह तथ्य पट्टों के रूप में उपलब्ध है।

1743 ई0 में पंडित गुलाब सिंह के गुरु मान सिंह को कुरुक्षेत्र में पट्टे पर ज़मीन मिली। आज भी यह लिखित पट्टा करनाल में महंत साधु सिंह जी के पास सुरक्षित है।[2] 1752 ई0 में पटियाला के महाराजा आला सिंह की पुत्री बीबी प्रधान कौर ने 30 गाँवों का पट्टा संत गंधा सिंह निर्मल के बरनाला स्थित डेरे के महंत निक्का सिंह के नाम लिख दिया था।[3] 1764 ई0 में सरदार अमर सिंह बग्गा ने सुजानपुर का पट्टा पंडित लक्खा सिंह निर्मल के नाम लिख दिया था, जिसको निर्मल संत ने अस्वीकार कर दिया था।[4] 1766 ई0 में सरदार सदा सिंह ने संत भाग सिंह निर्मल से महाभारत की कथा सुनकर भोग के अवसर पर 7 गाँव धर्मार्थ देने की पेशकश की

---

1. सुरजीत सिंह गांधी : हिस्ट्री ऑफ द सिख गुरुज़ पृ0 524.
2. महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ0 80-81.
3. महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ0 81.
4 महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ0 81.

थी , जिसे निर्मल संत ने अस्वीकार कर दिया । इसका लिखित पट्टा संत मन्ना सिंह के पास था जो उनकी मृत्यु के बाद खो गया ।[1] 1789 ई0 में सरदार जै सिंह घनैया ने संत दरगाहा सिंह को 4 गाँव देने की पेशकश की, जिसे निर्मल संत ने अस्वीकार कर दिया ।[2] सरदार ध्यान सिंह शाहाबादी ने अपना वारिसनामा पंडित कर्म सिंह निर्मल (हरि अष्टक सतसैया के रचयिता) के नाम लिख दिया,[3] जिसके वारिस आज भी उस डेरे के काबिज़ हैं । 1796 ई0 में शुकरचकिया मिसल के सरदार रणजीत सिंह ने पंडित निहाल सिंह को संतोख दास के उदासी अखाड़े के बराबर जागीर का पट्टा लिख दिया, जिसे निर्मल संत ने अस्वीकार कर दिया ।[4]

---

1. महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ0 82.
2. ज्ञानी ज्ञान सिंह : निर्मल पंथ प्रदीपका, पृ0 67.
3. महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ0 83.
4. ज्ञानी ज्ञान सिंह : निर्मल पंथ प्रदीपका, पृ0 67.

साहित्यिक दृष्टि से सबसे पहले पंडित गुलाब सिंह कृत "कर्म विपाक" (1753 ई0) जो अब अप्राप्य है, का उल्लेख आता है। महंत गणेशा सिंह के अनुसार पंडित गुलाब सिंह की लगभग 40 कृतियाँ थीं, जिन्हें ईर्ष्यावश कुरुक्षेत्र के पंडितों ने नष्ट कर दिया।[1] भाई कान्ह सिंह नाभा ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है।[2] आजकल पंडित गुलाब सिंह की केवल चार कृतियाँ उपलब्ध हैं ———

(क)	भावरसामृत (1777ई0)	मौलिक कृति
(ख)	मोक्ष पंथ प्रकाश (1778 ई0)	अनूदित कृति
(ग)	अध्यात्म रामायण(1782 ई0)	अनूदित कृति
(घ)	प्रबोध चंद्र नाटक (1792 ई0)	अनूदित कृति

1767 ई0 में पंडित चेत सिंह निर्मल के शिष्य पंडित सदा सिंह ने "अद्वैतसिद्धि" की सरल टीका "सुगम सारचन्द्रिका" की।[3] 1795 ई0 में पंडित निहाल सिंह ने "जपुजी साहिब" की संस्कृत में टीका लिखकर अन्य धर्मों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया।[4] 1797 ई में भाई सुखा सिंह ने "गुरु-विलास

---

1. महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ0 79.
2. कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ0 423.
3. महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ0 80.
4. महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ0 80.

बारहमाही 10" की रचना की[1]।

पंजाब में सबसे पहले कोइर सिंह ने 1750 ई0 में निर्मल बुंगे (एक प्रकार की इमारत) की स्थापना की।[2] निर्मल-संतों का पहला समागम 1758 ई0 में हरिद्वार के कुम्भ के अवसर पर ऋषिकेश में, दूसरी बार अर्द्धकुम्भी के अवसर पर 1764 ई0 में तथा तीसरी बार 1770 ई0 में ऋषिकेश में हुआ था।[3]

हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पहले चरण में "निर्मल-सम्प्रदाय" का विकास तो हुआ, लेकिन वह संगठन विशेष के रूप में उभर नहीं सका था।

1.2.2.2 "निर्मल-सम्प्रदाय" का विकास (19 वीं शताब्दी से आज तक)

1799 ई0 में शेरे पंजाब महाराजा रणजीत सिंह की द्वारा "खालसा राज्य" की स्थापना हो चुकी थी। पंजाब की राजनैतिक परिस्थितियाँ "निर्मल-सम्प्रदाय" के विकास के

---

1. सुरिंद्र सिंह नबारा : निर्मले संता दी पंजाबी साहित नूं देन, पृ0 45.
2. राय जसबीर सिंह : (निर्मल भेख दा आरम्भ) निर्मल सम्प्रदाय पृ0 36.
3. राजिंद्र सिंह शास्त्री : (निर्मल डेरे : इतिहास ते प्रबंध) निर्मल सम्प्रदाय, पृ0 60.

अनुकूल थीं । सारे भारत में विशेषतः पंजाब में तीर्थ स्थलों पर निर्मल डेरे बनने आरम्भ हो गए, धर्म-प्रचार की गति तेज हो गई । तत्कालीन परिस्थितियों के संबंध में महंत दयाल सिंह जी का यह कथन है ——————

"संवत् 1860 (1803 ई०) विच महाराजा रणजीत सिंघ दा सी पूरण तप तेज चढ़िया होइया सी, आप गुर सिक्खां नाल पूरण प्यार करदे, ते अमृतधारी सिंह नूं वेख के बड़े प्रसन्न हुंदे सन । इस अमन दे राज विच महाराज दे आदेश अनुसार , श्री मान संत महताब सिंघ जी मराझ वाले, पंडित मान सिंघ जी कुबेरीए, पंडित निक्का सिंघ बरनाला, पंडित गुलाब सिंघ कर्ता मोक्ष पंथ, संत चेत सिंघ डेफनीए, महंत जोगा सिंघ, ठाकुर दियाल सिंघ जी श्री अमृतसर, महाराज तोता सिंघ ठीकरीवाला, महंत गुरदियाल सिंघ जी गंधीयां, संत सुजान सिंघ जी दुधाधारी चकवाल, ठाकुर दीवान सिंघ जी मंगवाल, ठाकुर मेला सिंघ जी भगाली साहिब, पुणछ, संत मेला सिंघ अंकुर साहिब, संत भला सिंघ पेडोरी, संत उत्तम सिंघ जी मेमें जागीर, संत धराज सिंघ जी सेखवां, संत भाग सिंघ जी गोबडीए, संत रण सिंघ जी हरीके इत्यादिक सभ निर्मले महातमा ने माझा, मालवा, दुआबा, धंनी पोठोहार, पुणछ आदि आपणे आपणे देशां विच विचर के हजारां , लक्खां सहजधारियां नूं अमृत छका के सिंघ सजाया ते पिंड पिंड विच धर्मसालां कायम कीतीयां । काशी आदि असथानां विच पंडित सदा सिंघ कर्ता अद्वैत सिद्धी, पंडित संत सिंघ, पंडित हरा सिंघ आदि कई निर्मल महातमा जी गुरमत सिद्धांत

दा उपदेश करते रहे ।[1]

1806 ई0 में कुंभ के अवसर पर कनखल (हरिद्वार) स्थित दरगाह सिंह -निर्मल के डेरे में महंतों, डेरेदारों इत्यादि ने मिल जुल कर पहली बार योजनाबद्ध विधि से लंगर का प्रबंध किया । इस अवसर पर शेरे पंजाब महाराजा रणजीत सिंह भी गंगा स्नान के लिए हरिद्वार पहुंचे और सिख-धर्म के प्रचार में प्रवृत निर्मल संतों को देखकर बहुत प्रसन्न हुए ।

1819 ई0 के कुंभ मेले के अवसर पर भी निर्मल संतों ने धर्म प्रचार के लिए दीवान सजाया । इस अवसर पर संन्यासी साधुओं की उदासी साधुओं से लड़ाई हो गई । उदासी साधुओं की छावनी के ध्वज को जला दिया गया तथा "गुरु ग्रंथ साहिब" पर तलवारों से वार किए गए । महाराजा पटियाला साहिब सिंह तथा अन्य सिख सरदार इस अपमान को न सह सके और सब सिख सरदारों ने मिलकर दक्ष प्रजापति मंदिर के पास स्थित संन्यासी साधुओं की छावनी को जला दिया । उपर्युक्त घटना[2] की पुष्टि महंत गणेशा सिंह इत्यादि ने की है ।[3]

---

1. महंत दयाल सिंह : बाबा नानक जी दा निर्मल -पंथ लाहौर, कृपा सागर प्रेस, 1935 ई0, पृ0 50-51
2. ज्ञानी ज्ञान सिंह : श्री गुरु पंथ प्रकाश (भाग 5) (सम्पादक ज्ञानी कृपाल सिंह), अमृतसर, मनमोहन सिंह बराड़, 1974 ई0 पृ0 2803-2804.
3. महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ0 101-102.

1831 ई0 के कुंभ मेले के अवसर पर भी पहले की भाँति अनेक निर्मल विद्वान, महंत , डेरेदार इत्यादि एकत्रित हुए। बाबा दरगाह सिंह निर्मल, कनखल के डेरे में पहली बार गुरु गोबिंद सिंह जी के नाम तथा निशान की ध्वजा फहराई गई ।

1843 ई0 के कुंभ मेले के अवसर पर भी अनेक निर्मल विद्वान कनखल स्थित डेरे में एकत्रित हुए । निरन्तर एक महीना लंगर एवं धर्म प्रचार महाराजा पटियाला की हवेली में चलता रहा । अनेक सिख सरदार विशेषतः महाराजा पटियाला समय-समय पर "निर्मल-सम्प्रदाय" की आर्थिक सहायता करते रहे । 1955 ई0 के कुंभ मेले के अवसर पर महाराजा पटियाला ने अपने अंतरंग सचिव मक्खन सिंह के हाथ 5 हजार रूपए भेज कर लंगर प्रबंध में सहायता की । इसी अवसर पर एकत्रित निर्मल विद्वान समूह ने विरक्त बाबा महताब सिंह जी को "निर्मल-सम्प्रदाय" का "श्री महंत" स्थापित किया और केन्द्रीय अखाड़ा बनाने का निश्चिय किया गया । "अखाड़ा" शब्द का अर्थ महंत दयाल सिंह जी ने बहुत सुन्दर रूप में दिया है--------

"अखाड़ा उस जगह दा नाम है जिथे पहलवान आपणे विद्या कसरत करदे हन जाँ इक दूजे नाल घोल कर के अपने शत्रु नूँ दबान दा यतन करदे हन । दूजा अंतरीव अर्थ इह है कि संत समाज जाँ सतिसंग अस्थान जिथे उपदेश

---

1. अर्जुन सिंह मुनि : संक्षिप्त इतिहास निर्मल पंचायती अखाड़ा, कनखल, निर्मल पंचायती अखाड़ा, 1974 ई0 , पृ0 29.

2 महंत दयाल सिंह : निर्मल पंथ दर्शन [भाग 1] अमृतसर, डेरा बाबा भिखारा सिंह, 1952 ई0 पृ0 293.

पुकारा काम क्रोध लोभ मोह ते हंकार आदि अंतरीव शत्रुआं दा उचारना कीता जांदा है।"(1)

महाराजा पटियाला नरेन्द्र सिंह जी के निमंत्रण पर 1861 ई0 में श्री महंत महताब सिंह जी निर्मल संत समाज सहित पटियाला आए। एक दिन पूर्व निश्चित योजना के अनुसार समस्त निर्मल विद्वानों के साथ श्री महंत महताब सिंह जी ने परमार्थीतियों वाली हवेली (धर्म ध्वजा, पटियाला) में प्रवेश किया। महाराजा पटियाला की ओर से 82,000 रुपए नकद तथा "झंडी" और "भैनी" नामक दो गांवों की माफी, महाराजा नाभा की ओर से 16,000 रुपए नकद तथा "हरी के" गांव की माफी, महाराजा जींद की ओर से 20,000 रुपए की माफी तथा "मडला" वाले और "बल्लभ गढ़" दो गांवों की माफी, महाराजा फरीद कोट की ओर से "घमेली" नामक गांव की अरदास करवाकर निर्मल पंचायती अखाड़ा (मुख्य डेरा कनखल) की आर्थिक सहायता की गई। इस अवसर पर एक रमंत अखाड़े की सर्जना भी की गई और उसके प्रबंध के लिए निम्नांकित चार महंत नियुक्त किए गए ——

(क) महंत भोला सिंह छन्ना
(ख) महंत कारन सिंह गंधौयां
(ग) महंत कर्म सिंह विरक्त
(घ) महंत निहाल सिंह

निर्मल पंचायती अखाड़ा के विधिवत प्रबंध के लिए एक "दस्तूर" अथवा नियमावली बनायी गयी, जिसे 1862 ई0 में लिखित रूप में स्वीकृत कर लिया गया। निम्नलिखित स्वीकृत नियमावली आज भी निर्मल पंचायती अखाड़ा, कनखल के श्री महंत सुच्चा सिंह जी के पास

1. महंत दयाल सिंह : निर्मल पंथ दर्शन (भाग-1), पृ0 293

विद्यमान है ——————

"दफा 1 भाई साहिब महातमा भाई महिताब सिंघ जी मालक अखाड़े के हैं। उनके पीछे से इन का जान्शीन मालक होगा।

दफा 2. जो 82000/- रुपए बतौर पेशगी बीस साल ब नजूर इजराए कारोबार धर्म अर्थ अखाड़े धर्म दवजा सिखखान बा साधान निर्मला पंथ गुरु खालसा जी दीए गए हैं, चाहिए कि हर चाहार महंतान मुकर्रर अज आमदनी सूद का मुखारत बगैरा खिदमात उसके यानी कारोबार मुतल्लका अखाड़ा मौसूफ बा तामीर मकानात जारी रखें और जमा असल से सरफ ना करे।

दफा 3. बंदोबसत बा निगाहदाशत खज़ाना अखाड़ा जुमे हर एक अखाड़े के रहेगा, और भाई साहिब को कुंजी खजाने की जिसके पास रखनी मनजूर होगी, उसके पास रहेगा।

दफा 4. जनाब भाई साहिब महातमा भाई महिताब सिंघ जी को अखतियार हासिल है कि अपनी मरज़ी और सलाह से बदली सदली महंता की करते रहें।

दफा 5 जो सिख साध अखाड़े में होवे पहिले उन से अव्वर "श्री गुरु ग्रंथ साहिब " के हाथ लगाया जावे कि रुपए, अपने पास न रखेंगे। जो जिसके पास होवे खज़ाने में दाखिल कर देवे।

दफा 6 जो कोई सिख्ख अछ्छा और लाइक होवे, भाई साहिब उसको अहुदा संमती और दूसरे कारोबार अखाड़े पर मुकर्रर करें । जो कोई रहित नामे से (भाव अखाड़े दी रहित मर्यादा तों) बरखिलाफ होवे वासते मौकूफी और सजाई उस को के भाई साहिब को अख्तियार है ।

दफा 7 भाई साहिब मौसूफ अपनी जिन्दगी में जिस को अपनी जगह काइम कीया चाहें ब सलाह वे तजवीज़ तीनों सरकारों के मुकर्रर करें ।

दफा 8 बसूरते कि बायद भाई साहिब को उन का चाल्चीन चलन और सईश से अच्छा नहीं होगा तो वासते मौकूफी उसके और काइम करने बजाए उसको तीनों सरकारों को अख्तियार हासिल है ।

दफा 9 दर बाब वैदों - बसत बा इज राई ।
कारोबार अखाड़े मज़कूर बमूजब दसतूर अखाड़ा पंचायती के, अमल दरयामद होता रहे । मिती साउन सुदी - 12 बारां, साल 1919 मुताबिक दस सफर सन 1278 हिजरी गुरू वार
मुहर निशानी कुलवंत राए दीवान ।[1]

इधर एक ओर तो निर्मल डेरों का विकास हो रहा था, दूसरी ओर राजनैतिक परिस्थितियों में बहुत अन्तर आ गया ।

---

1. 28 दिसम्बर, 1983 को श्री महंत सुच्चा सिंह जी से एक साक्षात्कार में प्राप्त सूचना पर आधारित ।

सन् 1839 ई० में महाराजा रणजीत सिंह का देहान्त हो गया। 1849 ई० में "खालसा राज्य" का अन्त हो गया और पंजाब अंग्रेजी साम्राज्य का अंग बन गया। सन् 1857 ई० में भारत का पहला स्वतन्त्रता संग्राम लड़ा गया, सिख राजा या तो तटस्थ रहे अथवा उन्होंने अंग्रेजों का साथ दिया। साधारण सिख समुदाय का मनोबल गिर चुका था। सिख-धर्म में भी विकार आ चुके थे। फलस्वरूप सुधारवादी लहरों का जन्म हुआ। 1850 ई० में निरंकारी लहर का जन्म हुआ। बाबा राम सिंह ने नामधारी अथवा कूका लहर को जन्म दिया। नामधारी पंथ के नेताओं ने "निर्मल-सम्प्रदाय" की परम्पराओं का विरोध किया। चूँकि "निर्मले वेदान्त अध्ययन करते, वेदान्त का मनन करते और वेदान्त ग्रहण पर बहुत बल देते हैं"[1] इसलिए नामधारी गुरु राम सिंह ने "निर्मले पापी हैं जो जीवों को गुरुबाणी की ओर से हटाकर वेद की ओर लगाते हैं"[2] कहकर "निर्मल-सम्प्रदाय का विरोध किया। सन 1862 ई० में नामधारी सिखों के साथ निर्मल संतों का झगड़ा भी हुआ।[3] "निर्मल-सम्प्रदाय" का विरोध करने वाली

---

1. नाहर सिंह : नामधारी इतिहास, लुधियाना, श्री भैणी साहिब ग्राम, 1955 ई०, पृ० 151.
2. नाहर सिंह : नामधारी इतिहास, पृ० 152.
3. नाहर सिंह : नामधारी इतिहास पृ० 152.

नामधारी लहर ने सिख – धर्म के कुछ मूल सिद्धान्तों में परिवर्तन कर दिया, फलस्वरूप धीरे धीरे यह लहर सिख-समुदाय से अलग-सी हो गई ।

1872 ई0 में एक बहुत दुःखद घटना घटित हुई । निर्मल अखाड़ा तीर्थ अटन हेतु अबचल नगर (नादेड़ साहिब) गया । वहाँ के गुरुद्वारों के ग्रंथियों के दो परस्पर विरोधी वर्ग थे । निर्मल संतों को इस तथ्य का ज्ञान नहीं था । इन दो वर्गों की पारस्परिक लड़ाई में एक ओर तो कुछ निर्मल संत मारे गए और दूसरी ओर दूसरे वर्ग ने पंजाब के गुरुद्वारों में "निर्मल-सम्प्रदाय" के विरुद्ध पत्र लिख दिए । पंजाब के सिख – मत के नेताओं ने किसी तथ्य की जाँच पड़ताल किए बिना निर्मल-सम्प्रदाय" के विरुद्ध गुरुद्वारों में अरदासें करवा दीं । परिणाम स्वरूप सिख-समुदाय की दृष्टि में निर्मल संतों का श्रद्धा भाव कम हो गया ।

1857 ई0 के बाद सम्पूर्ण भारत पर ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित हो जाने के बाद, पंजाब में ईसाई पादरियों का आगमन आरम्भ हो गया । पंजाबी हिन्दू तथा सिख दोनों समुदाय से धर्म – परिवर्तन की क्रिया आरम्भ हो गई । इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप 1873 ई0 में गुरु का बाग, अमृतसर में "गुरु सिंह सभा" का जन्म हुआ । प्रसिद्ध सिख धर्म के इतिहासकार ज्ञानी ज्ञान सिंह निर्मला इस सभा के सचिव बनाए गए । इस सुधारवादी सभा के अन्तर्गत निर्मल संतों ने अपनी परम्परा के अनुकूल ईसाई पादरियों के प्रभाव को रोकने का प्रयत्न किया । निर्मल संतों के योगदान के संबंध में शमशेर सिंह अशोक का कथन है ——————

निर्मले ते खास करके उदासी संत को, जो उस समें सिक्खां नालों दूर नहीं सन होए, प्रचार दे इस कम्म विच बहुँ

उतशाह नाल हिस्सा लैण लग्गे ।"[1]

उपर्युक्त मत का समर्थन तेजा सिंह ने भी किया है ——

"द फर्स्ट एसोसिएशन ऑफ रिफार्म कान्ड" द सिंघ सभा" वाज़ फार्मड ऐट अमृतसर इन 1873, ओनली ए इयर आफ्टर द नामधारी ट्रबल। इट वाज़ अटैण्ड बाई द पुजारीज़ महंतज़, ज्ञानीज़, ग्रंथीज, उदासीज़ ऐंड निर्मलाज ।"[2]

1883 ई0 में "गुरु सिंह सभा" "खालसा दीवान" (अमृतसर) में परिवर्तित हो गई । यह सिखों का पहला सुधारवादी दीवान था । "निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख" के कर्ता महंत गणेशा सिंह को इसका पहला सचिव बनाया गया ।[3] इस समय "निर्मल" -सम्प्रदाय की आलोचना होनी आरम्भ हो गई थी । ज्ञानी ज्ञान सिंह जी का कथन है ——

" कोई लोग कहिते हैं निर्मले साधु गुरु गोबिंद सिंघ जी ने चलाए हैं । कोई कोई अग्यानी कहिते हैं कि दसम गुरु के पीछे जब मुसलमानों ने सिंघा को पकड़ने मारने और तुरक करने पर जोर दिया था, तब बहुत सिंघ तो लड़ते भिड़ते रहे जिन्होंने शस्त्र नहीं पकड़े उह निर्मले साधू बन बैठे । किंचत मतसर के भरे हुए अवसर बिना कुबुधी दासों बखाने हैं, जब संमत 1903 (1846 ई0) में लाहौर अंग्रेजों ने लीया उथों दे नौकर सिंघ जो बड़े हुए थे कम्पू दार सरकार दा कुछ ना कर सके उह निर्मले सिंघ बण फिरे ।

---

1. शमशेर सिंह अशोक : पंजाब दीयां लहरां, पटियाला अशोक पुस्तक माला, 1974 ई0, पृ0 88.

2 तेजा सिंह : एसेज़ इन सिखिज़्म, पृ0 130.

इस प्रकार आगे चले बिना जो बकवाद करते हैं उन के मुंह बंद देने वासते और गुरु के सिक्खां नूं सच्ची बात दिखाउण लई इहु निर्मल पद्धती ग्रंथ तय्यार कीता है[1] ।"

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि अपने सम्प्रदाय की आलोचना का स्पष्टीकरण देने के लिए ज्ञानी ज्ञान सिंह जी ने 1891 ई0 में "निर्मल पंथ प्रदीपका" का सृजन किया ।

ज्ञानी ज्ञान सिंह जी की भाँति महंत दयाल सिंह जी को भी स्पष्टीकरण देने के लिए 1935 ई0 में "बाबा नानक जी दा निर्मल पंथ" की रचना करनी पड़ी । सिख मिशनरी कालेज, अमृतसर के प्रिंसिपल भाई धर्मानंद सिंह ने मासिक पत्र "गुरु नानक दर्शन" (फरवरी - मार्च) में निर्मल पंथ के विरुद्ध अपमानजनक लेख लिखा , जिसको महंत दयाल सिंह जी सहन न कर सके और "बाबा नानक जी दा निर्मल पंथ" की सर्जना हुई ।

महंत गणेशा सिंह ने भी अपने सम्प्रदाय की तथा कथित आलोचना[2] का स्पष्टीकरण देने के लिए ही 1937 ई0 में "निर्मल भूषण" की रचना की । "ए ग्लोसरी ऑफ द ट्राइब्ज़ ऐंड कास्ट्ज़ ऑफ द पंजाब ऐंड नार्थ-वेस्ट फ्रंटीयरज़ प्रोविंसिज़" तथा "पंजाब कास्ट्ज़" दोनों का सम्पादन अंग्रेज विद्वानों ने किया था । इसमें पहले ग्रंथ में निर्मल संतों की परिभाषा और दूसरे ग्रंथ में उनकी जन संख्या दी गई है । 1881 ई0 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार पंजाब राज्य में निर्मल संतों की संख्या 1587 थी[3] ।

---

1 ज्ञानी ज्ञान सिंह : निर्मल पंथ प्रदीपका, पृ0 7.

2 महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ0 भूमिका (ह).

3. पंजाब भाषा विभाग : पंजाब कास्ट्ज़ (1883), पटियाला पंजाब भाषा विभाग, 1970 ई, पृ0 286.

यदि साहित्य की दृष्टि से देखें, तो प्रतीत होता है कि 19वीं शताब्दी में "निर्मल-सम्प्रदाय" बहुत तीव्र गति से विकसित हुआ । श्री महंत तारा सिंह नरोत्तम (1882-1891) की कृतियाँ इसी काल में पड़ती हैं ——— "मोक्ष पंथ की टीका", "गुरतरू कोश", गुरमत निर्णय सागर"; परीखिया प्रकरण", "वाहिगुरू शब्दार्थ," "अकाल मूर्त प्रदर्शन", "कालादि शब्दार्थ," "गुर वंसावली अथवा गुरवंस तरू दर्पण" इत्यादि । धर्म सिंह निर्मला कृत "हरि अद्रुष्ट सतसैया", "नृप धर्म चन्द्रिका," "सद सुख प्रकाश", "श्री गुर वंस चन्द्रोदे" कृतियाँ भी इसी काल के अन्तर्गत आती हैं । ज्ञानी ज्ञान सिंह (1822-1921 ई०) की रचनाएँ भी इसी चरण में आती हैं ——— "श्री गुर पंथ प्रकाश", "तवारीख गुरू खालसा," "निर्मल पंथ प्रदीपका," "तारीख़-अमृतसर," "तारीख़-लाहौर", "गुरधाम संग्रह," "रिपुदमन प्रकाश" इत्यादि । संत निहाल सिंह निर्मला (1830-1886 ई०) की "वेदांती बारामाहा", "श्री भव सागर सेतु ग्रंथ", "निर्मल संप्रदा प्रकाश", "श्री दोहरा भेदावली", "श्री सुधासरी सतक पचीसा" इत्यादि प्रसिद्ध कृतियाँ हैं । "जपु जी साहिब" की टीका अनेक विद्वानों ——— पंडित निहाल सिंह, पंडित हर सिंह नरोत्तम, साधु देवा सिंह, ज्ञानी उतम सिंह, साधु गुरदित सिंह इत्यादि ने की । महंत गणेशा सिंह की "निर्मल भूषण" के अतिरिक्त चिकित्सा-शास्त्र तथा ज्योतिष-विज्ञान पर अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं । वर्तमान काल के प्रसिद्ध निर्मला कवि विशन सिंह प्रीट हैं" । जीवन फुहार", "नूरी झलकाँ", नूरी रिश्मा" और "अमृत बचन ते संत दर्शन" इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं ।

पत्रकारिता के क्षेत्र में भी निर्मल विद्वानों का योगदान है। 1914 ई० में संत गुरदित सिंह जी ने "निर्मल पत्र" का सम्पादन आरम्भ किया। "निर्मल भेख दा संखेप इतिहास अते संप्रदादायिक पत्रावली के लेखक महंत हरी सिंह ने 30 नवम्बर, सन 1960 में "निर्मल उद्देश्य" साप्ताहिक पत्रिका का सम्पादन आरम्भ किया, जो आज तक निरंतर प्रकाशित हो रही है। "सिख संदेश" नामक पत्रिका भी डेरा डिग्यिाना, जम्मू तवी से प्रकाशित हो रही है।

गुरुमुखी तथा संस्कृत पढ़ाने का कार्य अनेक महंत छुट-पुट रूप से कर रहे हैं, परन्तु निर्मल संस्कृत विद्यालय, कनखल तथा संगत लाहौरी टोला, बनारस इस कार्य के लिए विशेष प्रसिद्ध है। निर्मल संस्कृत विद्यालय - कनखल को उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से मान्यता प्राप्त है। निर्मल पंचायती अखाड़ा, कनखल के इस विद्यालय में गरीब विद्यार्थियों के लिए निःशुल्क अध्ययन, भोजन तथा आवास का प्रबंध किया जाता है। डेरा संतपुरा, दिल्ली में संत बलबीर सिंह वियोगी एक बहुत बड़े पुस्तकालय की स्थापना कर रहे हैं।

"निर्मल-सम्प्रदाय" के विकास के सर्वेक्षण के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि धर्म-, प्रचार, साहित्यक इत्यादि की दृष्टि से 19वीं शताब्दी में निर्मल सम्प्रदाय का सर्वाधिक विकास हुआ।

1.2.3 निर्मल - सम्प्रदाय की वर्तमान स्थिति और भविष्य

हम इस निष्कर्ष पर पहुंच चुके हैं कि 19वी शताब्दी में "निर्मल सम्प्रदाय" का बहुमुखी विकास हुआ, लेकिन 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में "गुरु सिंह सभा" के जन्म के साथ ही

"निर्मल-सम्प्रदाय" की आलोचना आरम्भ हो गई थी । यह आलोचना राजनैतिक क्षितिज पर अकाली दल के जन्म के बाद और भी उग्र हो गई । ज्ञानी ज्ञान सिंह, महंत गणेशा सिंह, महंत दयाल सिंह, महंत हरी सिंह इत्यादि निर्मल विद्वानों ने अपने सम्प्रदाय की आलोचना के स्पष्टीकरण के लिए निर्मल साहित्य की रचना की और अपने सम्प्रदाय को पुनः सिख-समुदाय का गुरु कुल स्थापित करने का प्रयत्न किया । निर्मल-सम्प्रदाय की स्थिति में सुधार लाने के लिए "निर्मल महां मण्डल" की स्थापना की गई, लेकिन आज वास्तविकता यह है कि "निर्मल-सम्प्रदाय" की स्थिति दिन प्रति दिन उपेक्षित एवं क्षीणतर होती जा रही है ।

वर्तमान समय में साधारण निर्मल संतों में महंत हरी सिंह, डेरा गली बाग वाली, अमृतसर को आदर्श निर्मल संत कहा जा सकता है । गुर-मत प्रचार, संस्कृत एवं गुरुमुखी का अध्यापन, अतिथि-सत्कार, चिकित्सा-उपचार, निर्मल साहित्य एवं पत्रकारिता, मर्यादाओं का पालन इत्यादि सभी कार्य वे अपने छोटे से डेरे में कर रहे हैं, लेकिन उनकी सबसे बड़ी चिंता यह है कि उन्हें अभी तक कोई योग्य उत्तराधिकारी नहीं मिला । यह समस्या केवल महंत हरी सिंह की ही नहीं है, अपितु अनेक निर्मल विद्वान इस समस्या के कारण निराश हैं ।

"निर्मल-सम्प्रदाय" के अनेक महंत डेरों की सम्पत्ति के कारण मुकदमेबाजी में उलझे हुए हैं । कई महंत डेरेदार तो इन झगड़ों में अपने प्राणों तक से हाथ धो बैठे हैं । अमृतसर के ठाकुरों के डेरे के महंत सज्जन सिंह तथा फरीदकोट के पक्क बाबा गांधा सिंह, बल्लुवाली के महंत गंगा सिंह की हत्या डेरों की सम्पत्ति के कारण हो चुकी है ।

अनेक महंतों ने डेरों के झंझटों से छुटकारा पाने के लिए अपने डेरे गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी को सौंप दिए हैं । बरनाला के बाबा गंधा सिंह वाले डेरे के महंत गुरबचन सिंह, लुधियाना के गुरुद्वारा रेरू साहिब के महंत भगवान सिंह इस श्रेणी के संतों के अन्तर्गत आते हैं ।

अनेक महंतों ने "निर्मल-सम्प्रदाय" की मर्यादा को ही नहीं त्यागा, अपितु डेरों की सम्पत्ति पर भी बलात् पूरा अथवा आंशिक कब्जा कर लिया । अमृतसर के निम्नलिखित महंतों ने निर्मल-मर्यादा के विपरीत विवाह कर लिया है ———

1. महंत ज्ञान सिंह, निर्मल देश, अमृतसर ।
2. महंत इकबाल सिंह, घी मण्डी दरवाजा, अमृतसर ।
3. महंत तारा सिंह, डेरा बोहड़ वाला, कटड़ा मित सिंह, अमृतसर ।
4. महंत चरन सिंह, डेरा संत निहाल सिंह, चौक करोड़ी, अमृतसर ।
5. महंत सुच्चा सिंह, गली पट वाली, छावनी निहंगा, अमृतसर ।
6. महंत भान सिंह, डेरा बाबा गोपाल सिंह वैद, चौक करोड़ी, अमृतसर ।
7. महंत सतिन्दर सिंह, डेरा बाबा बसंत सिंह, चौक करोड़ी, अमृतसर ।

कुछ निर्मल-महंतों ने सिख न होने के फैसले लेने के लिए अदालतों के दरवाजों पर दस्तक भी दी है । भटिंडा के डेरा जंडवाला के महंत हरनाम सिंह इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं ।

केवल निर्मल पंचायती अखाड़ा, करखल और संगत लाहौरी टोला, काशी जैसे बहुत कम निर्मल-डेरे हैं, जहाँ संस्कृत एवं गुरुमुखी का अध्ययन सरकार द्वारा स्वीकृत पाठ्यक्रम के अनुसार करवाया जाता है । साहित्य के क्षेत्र में भी स्वामी अर्जुन सिंह मुनि, राजेन्द्र सिंह शास्त्री, किशन सिंह फ्रीट इत्यादि बहुत कम संख्या में विद्वान मिलते हैं ।

"निर्मल-सम्प्रदाय" की स्थिति दयनीय हो गई है, इसके निम्नलिखित कारण हैं :-

1. 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में सिंह सभा लहर का जन्म हुआ । क्योंकि निर्मल विद्वान गुरुमत - प्रचार, वेदान्त शास्त्र इत्यादि के आधार पर करते थे, इसलिए सिंह सभा के नेताओं ने निर्मल-सम्प्रदाय का विरोध किया ।
2. सरकार की धर्म-निरपेक्षता तथा समाजवाद की नीतियों के कारण भी निर्मल-सम्प्रदाय को हानि हुई ।
3. 20 वीं शताब्दी के आरम्भ में सिख-समुदाय का प्रतिनिधित्व अकाली पार्टी के हाथ चला गया । अकाली पार्टी के वेतन पाने वाले प्रचारकों ने निर्मल साहित्य में प्रयुक्त संस्कृत शब्दावली का विरोध किया ।
4. निरंकारी लहर, नामधारी लहर, राधा-स्वामी मत इत्यादि के जन्म के कारण भी सिख - समुदाय में सम्प्रदाय का सम्मान कम हुआ ।
5. निर्मल संतों की रहत मर्यादा पंजाब के सिखों की रहत-मर्यादा से भिन्न होने के कारण निर्मल संत पंजाब के सिख-समुदाय से अलग से हो गए ।

6. निर्मल संतों का पहरावा साधारण सिख-समुदाय के पहरावे से भिन्न है ।

7. चूंकि निर्मल संत ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए डेरों में रहते थे, इसलिए सिख-समुदाय से उनका सीधा सम्पर्क नहीं रहा ।

8. अधिकांश निर्मल डेरे स्वतंत्र इकाई के रूप में कार्य करते हैं। अतः निर्मल डेरों में पारस्परिक सहयोग की भी कमी है ।

9. अनेक निर्मल महंत सम्प्रदाय की तुलना में अपने डेरे की परम्पराओं को अधिक महत्व देते हैं ।

10. अनेक विद्वानों ने डेरों की सम्पत्ति से प्राप्त आय को धर्म-प्रचार के लिए खर्च करने की अपेक्षा निजी स्वार्थों के लिए प्रयुक्त करना आरम्भ कर दिया ।

11. कुछ निर्मल महंतों ने अपने डेरों को उपजीविका के साधन के रूप में प्रयुक्त करना आरम्भ कर दिया ।

12. डेरों की सम्पत्ति की रक्षा के लिए कई निर्मल-महंतों को अदालत में जाकर मुकदमे बाज़ी करनी पड़ी ।

13. वर्तमान समय में जन-साधारण की धर्म के प्रति अनास्था और विज्ञान के प्रति आस्था के कारण भी "निर्मल-सम्प्रदाय" को हानि हुई ।

निष्कर्ष में निर्मल-सम्प्रदाय की वर्तमान स्थिति संतोषजनक नहीं है । सम्प्रदाय की स्थिति के संबंध में डा० सुरिन्दर सिंह का कथन है ———

"निर्मल सम्प्रदाय गुरमत दे क्रांतीकारी विचारा

दा प्रभाव बाउन विच हुन सफल नही हो रहा, बलकि वेदांत दी विचारधारा नूं गुरमत समान समझा के सिख मत दे समानांतर इक बखरी संप्रदाई जापदी है जो पूरन रूप विच सिख वी नहीं रही अते हिंदू मत नालों वी भिन्न है।"

जिस सम्प्रदाय की वर्तमान स्थिति संतोषजनक न हो, उसका भविष्य कैसे उज्जवल हो सकता है ? यदि निर्मल -सम्प्रदाय को उसके संत भविष्य में आगे ले जाना चाहते हैं तो उन्हें चाहिए कि वे अपने सम्प्रदाय का पुनर्गठन करें ।

---

1. डा० सुरिन्द्र सिंह सवारा : निर्मले संता दी पंजाबी साहित्य नूं देन, पृ० 27.

अध्याय 2

निर्मल - सम्प्रदाय की सैद्धान्तिक मान्यताएं

अध्याय - 2

निर्मल-सम्प्रदाय की सैद्धान्तिक मान्यताएँ

संसार के अन्य धर्मों की भाँति जन-कल्याण के उद्देश्य से सिख-धर्म का जन्म 15वीं शताब्दी में हुआ था। लगभग दो सौ वर्ष इस धर्म की मान्यताएँ ज्यों की त्यों बनी रहीं, कोई महत्वपूर्ण अन्तर इनमें नहीं आया। लेकिन "खालसा पंथ" की स्थापना (1699 ई0) के साथ सिख-धर्म में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन आ गए, जिनको सिख-समुदाय ने सहर्ष स्वीकार किया। गुरु गोबिंद सिंह (1666-1708 ई0) जी के बाद सिख-धर्म अनेक सम्प्रदायों निर्मल-सम्प्रदाय, निरंकारी-सम्प्रदाय, नामधारी-सम्प्रदाय इत्यादि में विभाजित हो गया। इन सम्प्रदायों ने सिख-धर्म की कुछ सैद्धान्तिक मान्यताओं को ज्यों का त्यों, कुछ मान्यताओं को कुछ परिवर्तन के साथ और कुछ नई मान्यताओं को अपनी-अपनी विचारधारा में अपना लिया।

इस अध्याय में "निर्मल-सम्प्रदाय" की सैद्धान्तिक मान्यताओं का वर्णन किया जाएगा। इन मान्यताओं को मुख्यतः चार भागों में विभाजित किया जा सकता है ----

2.1. <u>सामाजिक मान्यताएँ</u> :-

निर्मल संतों ने समाज के प्रति जिस दृष्टिकोण को अपनाया, उसी का विस्तृत रूप "निर्मल-सम्प्रदाय" की सामाजिक मान्यताएं हैं। सुविधा के लिए हम "निर्मल सम्प्रदाय" की सामाजिक मान्यताओं का अध्ययन निम्नलिखित चार बिन्दुओं के आधार पर करेंगे --

2.1.1 जीवन पद्धति तथा रीति-रिवाज़

2.1.2 वेशभूषा

2.1.3 पर्व तथा उत्सव

2.1.4 खान-पान

2.1.1 जीवन-पद्धति तथा रीति-रिवाज :-

निर्मल-संतों ने अपने जीवन में जिन रीतियों-रिवाजों को स्वीकार किया, उन्हीं का विवरण देना यहाँ अभीष्ट है --

2.1.1.1 ब्रह्मचर्य का पालन

यदि हम निर्मल-संतों के जीवन-वृतान्त का अध्ययन करें, तो ज्ञात होगा कि अधिकांश निर्मल-संतों ने बचपन में ही अपने घर-परिवार का परित्याग कर दिया था। घर-परिवार का परित्याग करने के बाद इन्होंने किसी परेण्य निर्मल-संत से दीक्षा ग्रहण की और फिर अपने दीक्षा गुरु की भाँति ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए निर्मल-जीवन यापन करना उनका कर्तव्य बन जाता था। "निर्मल पंचायती अखाड़े" के 12वें तथा वर्तमान श्री महंत सुच्चा सिंह तथा उनके सभी पूर्ववर्ती श्री महंतों ने जीवन-पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन किया था। श्री महंतों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रसिद्ध निर्मल संतों —— संत गुलाब सिंह, संत निहाल सिंह, ज्ञानी ज्ञान सिंह, महंत गणेशा सिंह, महंत दयाल सिंह, महंत हरी सिंह, महंत जगत सिंह इत्यादि ने अपने जीवन में ब्रह्मचर्य के सिद्धान्त को अपनाया।

निर्मल-संतों की जीवन पद्धति के संबंध में प्रसिद्ध पत्रकार खुशवंत सिंह का अभिमत है ————

"द निर्मलाज़ वारो द ट्राडीशनल पेट्रन ऑफ

लाइफ ऑफ द हिन्दू ब्रह्मचर्य ।"

अन्य शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन करना निर्मल-सम्प्रदाय की पहली सैद्धान्तिक मान्यता है । यह पद्धति भारतीय समाज की पारम्परिक आश्रम व्यवस्था के समानान्तर नहीं है । भारतीय आश्रम-व्यवस्था में चार आश्रमों का विधान था । ब्रह्मचारी के लिए दो विकल्प हुआ करते थे – आजन्म मृत्यु -पर्यन्त ब्रह्मचारी रहना अथवा केवल पच्चीस वर्ष की आयु तक ही ब्रह्मचर्य का पालन करना । ये निर्मल संत पहली श्रेणी के विधान का पालन करते थे ।

2.1.1.2 अध्ययन-/अध्यापन-कार्य

विरक्त निर्मल संत अपने सम्प्रदाय के अभ्युदय-काल से ही धर्म-प्रचार करते हुए गाँव-गाँव, शहर-शहर घूमते रहते थे । चूँकि निर्मल संत विद्वान होते थे, इसलिए गाँवों, शहरों इत्यादि से जन-साधारण पढ़ने के लिए इनके पास आ जाते थे । धीरे-धीरे अध्यापन कार्य निर्मल-संतों के जीवन का एक अनिवार्य कर्त्तव्य बन गया । निर्मल संतों के अध्यापन कार्य में गुरुमुखी तथा संस्कृत भाषा पढ़ाना मुख्य कार्य था । आज भी निर्मल संस्कृत विद्यालय, कनखल तथा संगत लाहौरी टोला, वाराणसी में संस्कृत, गुरुमुखी भाषाओं तथा अनेक धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करवाया जाता है । इस तथ्य की पुष्टि

---

1. खुशवंत सिंह : ए हिस्ट्री ऑफ द सिक्ख (भाग 1), दिल्ली, आक्सफोर्ड प्रेस, 1977 ई0, पृ0 80.

डा० हरिभजन सिंह ने भी की है---- "निर्मल -वर्ग वस्तुतः सिख धर्म का पंडित-वर्ग है । विद्या पढ़ना और पढ़ाना इनका मुख्य कर्तव्य है ।"[1]

2.1.1.3 चिकित्सा कार्य

चूंकि निर्मल संत धर्म-प्रचार के लिए गांव-गांव, शहर-शहर घूमते थे, इसलिए अनेक जड़ी-बूटियों का उन्हें ज्ञान हो गया था और फिर धीरे-धीरे उन्होंने इनका प्रयोग चिकित्सा-कार्य के लिए आरम्भ कर दिया । इस कार्य का निर्मल संतों को सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि नीरोग होने के बाद लोग उनके धार्मिक प्रभाव के अन्तर्गत और भी तीव्र गति से आने आरम्भ हो गए । चिकित्सक के रूप में महंत गणेशा सिंह का नाम अग्रगण्य है । उन्होंने "स्त्री चिकित्सा", "बाल चिकित्सा", जेबी वैद", "निर्मल-प्रबोध", "व्याधि विनाशक", "वैद्य विनोद" इत्यादि पुस्तकों का इसी विषय पर सृजन किया । महंत हरी सिंह जी आज भी निर्मल-संत होने के साथ साथ इस वैद्य-धर्म का भी निर्वाह कर रहे हैं । इस चिकित्सा कार्य से द्वि-मुखी लक्ष्य की सिद्धि होती थी । एक धर्म के मूल "परहित " का सम्पादन होता था ।[2] दूसरे रोग के निवारण से अर्जित ख्याति का सदुपयोग "पंथ" के प्रचार में अमोघ रूप में होता था ।

---

1. डा० हरिभजन सिंह : गुरूमुखी लिपि में हिन्दी काव्य, नई दिल्ली, एस०चांद एण्ड कम्पनी, 1976 ई०, पृ० 172.

2. गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में "परहित" को धर्म का सर्वोत्तम रूप माना है — "परहित सरिस धरम नहिं भाई "

—— रामचरितमानस :बालकांड

2.1.1.4 साहित्य-सृजन

साहित्य – सृजन प्रायः विद्वान वर्ग के जीवन का अनिवार्य कर्म होता है । निर्मल संत सिख-समुदाय का विद्वान-वर्ग था । इसलिए निर्मल संतों में साहित्य-सृजन का होना आश्चर्यजनक बात नहीं है । साहित्य-सृजन धीरे धीरे अधिकांश निर्मल विद्वानों के जीवन में एक विशिष्ट कर्तव्य का रूप धारण कर गया/कहते हैं ——— "साहित्य समाज का दर्पण होता है" । इसलिए निर्मल संतों ने भी सम सामायिक परिस्थितियों का चित्रण अपने इतिहास-ग्रंथों में किया है । भाई सुक्खा सिंह का "गुर बिलास पातशाही दसवीं", भाई संतोख सिंह का "गुरु प्रताप सूरज ग्रंथ", भाई कर्म सिंह निर्मला का "श्री गुर पंत चन्द्रोदै", ज्ञानी ज्ञान सिंह का "श्री गुरु पंथ प्रकाश", "तवारीख गुरु खालसा", पंडित गंडा सिंह का "इतिहास गुरु खालसा" इत्यादि अनेक सिख धर्म के ऐतिहासिक ग्रंथ निर्मल संतों द्वारा लिखे गए । ज्ञानी ज्ञान सिंह , महंत गणेशा सिंह, महंत दयाल सिंह, पंडित अर्जुन सिंह मुनि, महंत हरी सिंह इत्यादि ने निर्मल सम्प्रदाय के इतिहास ग्रंथों का सृजन किया । पंडित तारा सिंह नरोत्तम ने " गुरु गिरार्थ कोश" (दो भाग) लिखकर तत्कालीन शब्दकोश की समस्या को सुलझाया । इस विषय के अतिरिक्त निर्मल संतों ने अन्य विषयों – वेदान्त, ज्योतिष तथा धर्म पर भी साहित्य-सृजन का कार्य किया ।

2.1.1.5 गुरु-शिष्य-परम्परा की पद्धति

निर्मल सम्प्रदाय के आरम्भ से ही निर्मल संतों में गुरु - शिष्य परम्परा का प्रचलन रहा है । चूंकि निर्मल संतों में ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता था, इसलिए अपने मूल उद्देश्य की पूर्ति के लिए निर्मल-सम्प्रदाय में इस परम्परा का पालन किया जाता रहा है । निर्मल संत दीक्षा देकर अपने शिष्यों को गुरु-मत प्रचार के लिए प्रेरित करते हैं । इन्हीं दीक्षित शिष्यों में से किसी एक योग्य शिष्य को निर्मल संत अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करते हैं जो उनके देहान्त के उपरान्त गुरु के आसन पर बैठकर पूर्व निश्चित कार्य को निरन्तर चलाता रहता है । इस प्रकार गुरु शिष्य-परम्परा निर्मल-सम्प्रदाय में आविर्भाव -काल से आज तक चली आ रही है ।

2.1.1.6 जीवन-यापन की अन्य पद्धतियाँ

निर्मल संत अपने नाम के पीछे "सिंह", जो सिख होने का प्रतीक है, अवश्य लगाते हैं । नाम से पहले पंडित, महंत, संत, स्वामी, श्री 108, श्री 1108, ज्ञानी इत्यादि लगाने का भी रिवाज़ है । उदाहरणार्थ पंडित धर्म सिंह निर्मला, महंत गणेशा सिंह, ज्ञानी ज्ञान सिंह, श्री महंत पंडित सुच्चा सिंह, स्वामी अर्जुन सिंह मुनि व्याकरणाचार्य, संत निहाल सिंह के नाम इसी तथ्य के परिचायक हैं । सिख धर्म की मान्यताओं के विपरीत "निर्मल सम्प्रदाय" में देहधारी गुरु का सम्मान किया xxxx जाता है । निर्मल संत अपने दीक्षा-गुरु का बहुत सम्मान

करते हैं और हिन्दू धर्म की मान्यताओं के अनुकूल देहान्त के बाद कुछ निर्मल संत अपने गुरू का श्राद्ध इत्यादि भी करते हैं ।

अतिथि-सत्कार का भी निर्मल-सम्प्रदाय में बहुत महत्त्व है । निर्मल डेरे अथवा अखाड़े में ठहरने वाले किसी भी अतिथि के भोजन और रहने के प्रबंध का उत्तरदायित्व डेरे अथवा अखाड़े के मुख्य महंत पर होता है ।

2.1.2 वेशभूषा

"निर्मल-सम्प्रदाय" के संतों की वेशभूषा सीधी-सादी होती है । निर्मल संतों में तीन प्रकार की वेशभूषा प्रचलित है । अधिकांश विरक्त निर्मल-संत भगवे रंग (काषाय) के वस्त्र धारण करते हैं । ऐसे संतों का बहुत सुन्दर चित्रांकन महंत गणेशा सिंह जी ने किया है ---"इनाँ दा लबास गेरू रंगा शरीर पर गाती (वह चादर जिसे गले में गाँठ देकर बाँधते हैं) , सिर पर हलकी (छोटी) पग्ग तेड़ कुपीन (संन्यासियों आदि के पहनने वाली लंगोटी) हथ्थ विच चिप्पी, सोटी अर उप्पर गोदड़ी इत्यादिक इह चिन्न विरक्ताँ महापुरखाँ दे हुंदे हन ।"[1] इस प्रकार के संत प्रायः पंजाब से बाहर हिन्दू तीर्थ-स्थानों- हरिद्वार, वाराणसी, प्रयाग इत्यादि में रहते हैं ।

निर्मल संतों का एक दूसरा वर्ग सफेद वस्त्र धारण करता है । इस वर्ग के संतों को "ज्ञानी" भी कहते हैं ।

---

1. महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ0 155.

इस वर्ग के संत प्रायः पंजाब के शहरों तथा गाँवों में स्थित डेरों में रहते हैं । निर्मल संतों में प्रचलित इस प्रकार की वेशभूषा की पुष्टि प्रसिद्ध पत्रकार खुशवंत सिंह ने भी की है ---- "दे आर सेलिबेट, वीयर वाईट गारमैंटस ।"[1]

वेशभूषा की दृष्टि से निर्मल संतों का एक तीसरा वर्ग भी है , जो सिर पर भगवे रंग की पगड़ी और शेष शरीर पर सफेद रंग के वस्त्र धारण करते हैं । इस प्रकार के संतो की वेशभूषा पर उपर्युक्त दोनों वर्गों की वेशभूषा का प्रभाव लक्षित होता है । इस वर्ग के निर्मल संतों की संख्या नाम मात्र की ही है । केश रखना भी निर्मल संतों के जीवन का अनिवार्य अंग है । केश-रहित व्यक्ति को अमृत-पान नहीं करवाया जा सकता और अमृत-पान के बिना कोई संत इस सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण नहीं कर सकता । इसलिए केश रखने की परम्परा निर्मल-सम्प्रदाय में अविच्छिन्न रूप में पाई जाती है । निर्मल-सम्प्रदाय में अन्य मर्यादाओं का अनुपालन यथा - कंघा, कच्छ (अधोवस्त्र), कड़ा, कृपाण का धारण करना अनिवार्य नहीं समझा जाता ।

2.1.3 पर्व तथा उत्सव

निर्मल सम्प्रदाय के संत पर्व बहुत धूमधाम से मनाते हैं । दीवाली तथा बैसाखी के अवसर पर अमृतसर , होली के अवसर पर आनंदपुर साहिब, कुम्भ के मेलों पर हरिद्वार, प्रयाग, नासिक, उज्जैन, सूर्य ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र,

---

1. खुशवंत सिंह : ए हिस्ट्री ऑफ सिक्ख्स (भाग 1) दिल्ली, आक्सफोर्ड प्रेस, 1977 ई0, पृ0 80.

गुरु पर्वों के अवसर पर गुरुओं के जन्म स्थानों पर निर्मल संत बड़ी संख्या में एकत्रित होते हैं । धर्म प्रचार के लिए धार्मिक दीवान सजाए जाते हैं । वहाँ निर्मल संत अपने प्रवचनों द्वारा गुरु-मत-प्रचार करते हैं । निर्मल संत अपने निजी डेरों में अपने दीक्षा-गुरु का जन्म दिवस तथा उनकी "बरसी" भी बहुत धूमधाम से मनाते हैं । पूर्णिमा, अमावस्या इत्यादि के अवसर पर निर्मल डेरों में सत्संग का आयोजन होता है ।

2.1.4 खान - पान

"निर्मल-सम्प्रदाय" में न तो पेट भरने के लिए आजीविका करने की परम्परा है और न ही भौतिक पदार्थों-धन, खाद्य-पदार्थों इत्यादि का संग्रह करने का ही रिवाज़ है । निर्मल-सम्प्रदाय के आरम्भिक काल में निर्मल संत "मधुकरी वृत्ति" के द्वारा स्वयं भी भोजन करते थे और अतिथि को भी भोजन करवाते थे । बाद में जब निर्मल डेरे बनने आरम्भ हो गए, तो उन डेरों से प्राप्त आय से "लंगर" का प्रबंध होना आरम्भ हो गया । आजकल भी छोटे-छोटे निर्मल डेरों में "मधुकरी" के द्वारा निर्मल संत अपना निर्वाह करते हैं । निर्मल संतों का भोजन सात्त्विक होता है । नशीले पदार्थों - मदिरा, तम्बाकू, अफीम इत्यादि के लिए निर्मल -सम्प्रदाय में कोई स्थान नहीं है । खट्टे खाद्य पदार्थ, माँस इत्यादि निर्मल संतों के भोजन में निषिद्ध हैं । [1] इस तथ्य की पुष्टि प्रसिद्ध पत्रकार खुशवंत सिंह ने की है ।

---

1. खुशवंत सिंह : ए हिस्ट्री ऑफ द सिख्ज़, पृ0 80.

उपर्युक्त सामाजिक मान्यताओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि निर्मल संतों का सामाजिक जीवन बहुत सादा तथा सीमित रहता था। वास्तव में सामाजिक क्रिया-कलाप के लिए भारतीय आश्रम-व्यवस्था में अवकाश केवल गार्हस्थ्य में ही सम्भव था। ये निर्मल संत गृहस्थ होते ही न थे। दाम्पत्य-संबंधों से भी ये अछूते रहते थे। इसलिए सामाजिक-संबंधों का मूलाधार "परिवार" इस "पंथ" के परिप्रे में अस्तित्व में ही नहीं आता था। यही कारण है कि इनका जीवन एक प्रकार से "अ-सामाजिक" अथवा समाज की रंगस्थली से दूर-दूर ही रहता था। यही कारण है कि इनके जीवन में सामाजिकता का अंश नाममात्र का ही होता था।

2.2. दार्शनिक मान्यताएँ

"दर्शन" शब्द की उत्पत्ति "दृश" धातु से हुई है,[1] जिसका अर्थ है ""देखना" अथवा "साक्षात्कार"। साधारण शब्दों में ज्ञान दृष्टि द्वारा सत्य से साक्षात्कार ही "दर्शन" है। मनु के अनुसार -- "सम्यक् दर्शन प्राप्त होने पर कर्म मनुष्य को बंधन में नहीं डाल सकते, जिनको यह सम्यक् दृष्टि नहीं है, वे ही संसार के जाल में फंस जाते हैं।"[2]

डा० राधाकृष्णन् के अनुसार-- "दर्शन एक ऐसा आध्यात्मिक ज्ञान है, जो आत्मा-रूपी इन्द्रिय के समक्ष सम्पूर्ण रूप में प्रकट होता है। यह आत्मदृष्टि, जो वहीं सम्भव है जहाँ दर्शनशास्त्र का अस्तित्व है,

---

1. दृश ल्युट् {अन} = दर्शन। वामन शिवराम आप्टे : संस्कृत हिन्दी कोश, दिल्ली, मोती लाल बनारसी दास, 1984 ई०, पृ० 450.

2 सम्यक् दर्शनसम्पन्न : कर्मभिर्न निबद्धयते।
दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ।।
-मनुसंहिता, 6-74.

एक सच्चे दार्शनिक की स्पष्ट पहचान है ।[1]

"दर्शन" के संबंध में दामोदरन का मत है ——— "हम जिस जगत में रहते हैं और इस जगत के साथ हमारा जो संबंध है उसकी समेकित अवधारणा ही दर्शन है । दर्शन मनुष्य की मूल उत्पत्ति और उसकी समस्याओं की, प्रकृति और ब्रह्माण्ड की, ज्ञान, विचार, जीवन, कला और धर्म की समस्याओं की, चिन्तन और अस्तित्व के बीच मूलभूत संबंध की समस्याओं की, पदार्थ और मस्तिष्क के बीच संबंध की समस्याओं की व्याख्या करता है ।[2]"

डा० सतीश चंद्र चट्टोपाध्याय के अनुसार ——" मनुष्य में बुद्धि की विशेषता है । बुद्धि की सहायता से वह युक्तिपूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकता है । युक्तिपूर्वक "तत्व-ज्ञान" प्राप्त करने के प्रयत्न को ही "दर्शन" कहते हैं ।[3]"

"दर्शन" के संबंध में डा० पारसनाथ द्विवेदी का अभिमत है ———— "सत्य (ब्रह्म) का दर्शन अथवा अपने सच्चे स्वरूप को पहचानना ही "दर्शन" कहा जा सकता है । जैन दर्शन में इसे "सम्यग्दर्शन"

---

1. डा० राधाकृष्णन् : भारतीय दर्शन (अनुवादक-नंदकिशोर गोभिल), दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज़, 1966 ई०, पृ० 38.
2. के० दामोदरन : भारतीय चिन्तन परम्परा, (अनुवादक जी०श्रीधरन) नई दिल्ली, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, अज्ञात ई०, पृ० 83.
3. डा० सतीश चंद्र चट्टोपाध्याय : भारतीय दर्शन (अनुवादक - हरिमोहन झा), पटना, पुस्तक भंडार, अज्ञात ई०, पृ० 1.

और बौद्धदर्शन में सम्यग्दृष्टि के नाम से अभिहित किया जाता है ।[1]"

उपर्युक्त अभिमतों के अध्ययन के उपरान्त हम कह सकते हैं कि आत्मा परमात्मा, माया, जगत् और जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष इत्यादि तत्वों का अध्ययन ही "दर्शन" है ।

भारत का विद्यार्थी भौगोलिक आधार पर दर्शन के दो वर्ग बना सकता है - अभारतीय तथा भारतीय । यहाँ अभारतीय दर्शनों की चर्चा अप्रासंगिक है क्योंकि "निर्मल-सम्प्रदाय" आद्यन्त भारतीय दर्शन से ही परिचालित रहा है । भारतीय दर्शनों के भी दो वर्ग स्वीकार किए गए हैं - नास्तिक और आस्तिक । नास्तिक दर्शन को वेद-विरोधी माना गया है । इसमें तीन दर्शन सम्मिलित हैं - बौद्ध, जैन और चार्वाक । वेदों को प्रमाण मानने वाले दर्शन "आस्तिक" कहे गए हैं और उनकी संख्या छः है — न्याय, मीमांसा, वैशेषिक, वेदान्त, सांख्य और योग । इन आस्तिक दर्शनों में सर्वाधिक व्यापकता और लोकप्रियता "वेदान्त" को मिली है । वेदान्त का मूलाधार तो उपनिषद् है, किन्तु "ब्रह्मसूत्र" तथा "श्रीमद्भगवद्गीता" को भी इसके आधार में सम्मिलित कर लिया जाता है । "ब्रह्मसूत्र" का भाष्य शंकराचार्य ने लिखा था और कालान्तर में रामानुज, मध्व, वल्लभ आदि भक्ति-आचार्यों ने इसकी . अपनी-अपनी दृष्टि से व्याख्याएँ कीं । इन सबका सम्मिलित रूप ही "वेदान्त" है । इस अनुचिन्तनात्मक वेदान्त तथा सांख्य का

---

1. डा० बाबूराम (?) द्विवेदी : भारतीय दर्शन , आगरा, श्री राम मेहरा एण्ड कम्पनी, 1973 ई०, पृ० 1.

प्रभाव "निर्मल-सम्प्रदाय" में प्रकट रूप में यत्र-तत्र देखा जा सकता है । "निर्मल-सम्प्रदाय" की दार्शनिक मान्यताओं का अध्ययन हम निम्नलिखित पाँच विषयों के अन्तर्गत करेंगे -

2.2.1 ब्रह्म-संबंधी मान्यताएं

2.2.2 जीवात्मा-संबंधी मान्यताएं

2.2.3 जगत्-संबंधी मान्यताएं

2.2.4 माया-संबंधी मान्यताएं

2.2.5 मोक्ष-संबंधी मान्यताएं

2.2.1 ब्रह्म - संबंधी मान्यताएं

उपनिषदों में परम सत्य अथवा परम तत्व को ब्रह्म स्वीकार किया गया है ।[1] श्रीमद्भगवद्गीता में ब्रह्म के कूटस्थ अर्थात अपरिवर्तनशील तथा अविनाशी स्वरूप को माना गया है ।[2]

---

1. "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"

तैत्तिरीयोपनिषद, ब्रह्मानन्दवल्ली, अनुवाक-1 गोरखपुर, गीता प्रेस, 1975 ई0 , पृ0 97.

2. द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वर : ।।

(सम्पादक) डा0 राधाकृष्णन्: श्री भगवद्गीता, अध्याय 15, श्लोक 16-17.

निर्मल संतों के साहित्य में ब्रह्म के दोनों रूपों - निर्गुण तथा सगुण का चित्रण मिलता है । अवतारवाद के प्रति भी निर्मल-संतों की विशेष निष्ठा रही है ।

निर्मल-संतों द्वारा प्रतिपादित निर्गुण ब्रह्म शंकराचार्य के वेदान्त दर्शन से प्रभावित प्रतीत होता है । वेदान्त-दर्शन में प्रतिपादित अद्वैत ब्रह्म कूटस्थ, नित्य और सर्वव्यापी है , वह स्वप्रकाश स्वरूप, गुण-दोष विनिर्मुक्त, त्रिकालातीत, अशरीरी तथा चैतन्य स्वरूप है । अद्वैत ब्रह्म के संबंध में पंडित गुलाब सिंह निर्मला का कथन है ----

"परब्रहम रूपं चिदानंदं रामं । अनाशी सदा सच्चिदानंद नामं ।
बिनो पाधि रूपं मै बानी बखाने । अनंद सु सातं मलहीन मानै ।
निरंजनं बिकारहीन बयापकं पछानियै । सुआतमा अकलमर्म प्रकाश रूप जानियैं ।
जगत मूल कारणं प्रकृत मोहि मानिये । उपाइ पाल संहरो न राम हेत ठानियै

पंडित गुलाब सिंह निर्मला द्वारा अभिव्यक्त अद्वैत ब्रह्म के संबंध में डा० गोबिंद नाथ राजगुरु का कथन है -- ---- "अद्वैत भाव पूरी उत्तमता नाल इनां दे काव्य विच किते वी लभिआ जा सकदा है । "भावरसामृत" तों लै के "प्रबोध चंद्रोदय" तक्क पंडित गुलाब सिंह दीआं सारीआं रचनावां अद्वैतवाद तो प्रेरणा प्राप्त कर दियां हन ।"[2]

अद्वैत ब्रह्म के संबंध में पंडित तारा सिंह नरोत्तम का मत है ------
"सतचैं नित्य सुध बुध नियत निरविकार रूप, निरगुर, निरीह,निरदोश ,निराकार है ।
अजे, अविनासी, आदि अंत से बिहीन रूप, अलख अपार पार निगम पसार है ।
ब्रह्म एक रूप एक जोति ऐ संग एक उत एक निधा एक देव एक एकंकार है ।
वाही निज आप से पसार जीत तीन रूप धार के कहायो निराकार उकार है ।"[3]

---

1. पंडित गुलाब सिंह निर्मला : अध्यातम रामायण ,पृ० 14.
2. डा० गोबिंद नाथ राजगुरु : पंडित गुलाब सिंह ते उन्हां दा साहित्त (निर्मल सम्प्रदाय), पृ० 341.
3. पंडित तारा सिंह नरोत्तम : गुरु भाव दीपिका, पृ० 2.

डा० तारन सिंह का इसी संबंध में मत है — "अद्वैत वेदांत वेद दा सार है । निर्मले अद्वैतवादी होए हन ।"[1] डा० जसबीर सिंह आहलूवालिया ने भी निर्मल-सम्प्रदाय पर वेदान्त का प्रचुर प्रभाव स्वीकार किया है ।[2]

वेदान्त दर्शन के अनुरूप ब्रह्म के सच्चिदानंद स्वरूप का अनुमोदन भी निर्मल संतों ने किया है । उदाहरण द्रष्टव्य है — "वेद से सति पद चित औ आनंद के बहुत कर साथ सुनिआ जावे है । यां ते ईहां भी तिन का सखाइक है ।"[3]

पंडित गुलाब सिंह निर्मला ने अपनी कृति अध्यात्म रामायण" में ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप की अपेक्षा सगुण स्वरूप का अधिक चित्रांकन किया है । उदाहरण के रूप में छंद क्रमांक 102 तथा 103 में यह चित्रांकन देख सकते हैं ।

---

1. डा० तारन सिंह : निर्मल सम्प्रदाय दी टीका-पद्धति (निर्मल सम्प्रदाय), पृ० 286.
2. डा० जसबीर सिंह आहलूवालिया : सिख-दर्शन दा वेदान्तीकरण ते निर्मल-सम्प्रदाय (निर्मल-सम्प्रदाय) पृ० 161.
3. पंडित तारा सिंह नरोत्तम : गुरु भाव दीपिका (संपादक दीवान बूटा सिंह), लाहौर, आफताब प्रैस, 1881 ई०, पृ० 16.

अनेक संतों ने अवतारों के अस्तित्व को भी स्वीकार किया है और ब्रह्म की प्राप्ति के लिए मनुष्य के लिए गुरुओं, अवतारों, पीरों, पैगम्बरों की आवश्यकता अनुभव की है । अधिकांश निर्मल-संतों ने अपनी कृतियों के आरम्भ में मंगलाचरण के अन्तर्गत विभिन्न हिन्दू देव-अवतारों की स्तुति की है । कृतियों का आरम्भ प्रायः "एक ओंकार श्री सति-गुरप्रसादि" (सिख-धर्म के मूल मंत्र का संक्षिप्त रूप) से करने के बाद अपने इष्टदेव की वन्दना से किया गया है । भाई सुक्खा सिंह ने "गुरु बिलास पातशाही-10" का आरम्भ ————————

"ओंकार सतिगुर प्रसादि । श्री भगउती जी सहाइ ।"[1]

गुलाब सिंह निर्मला ने "प्रबोध चंद्र नाटक" का आरम्भ ————

"ओंकार सतिगुर प्रसादि"[2] से तथा "मोख पंथ प्रकाश" का आरम्भ "श्री गणेशाय नमः"[3] से किया है । पंडित गुलाब सिंह निर्मला ने अपनी कृति "भाव -रसामृत" में अनेक स्थलों पर भगवान राम की स्तुति की

---

1. शमशेर सिंह अशोक : पंजाबी हथ्थ लिखतां दी सूची (भाग 2) , पटियाला, भाषा विभाग पंजाब, 1963 ई0, पृ0 260.

2 गुलाब सिंह निर्मला : प्रबोध चंद्र नाटक, पृ0 । (यह पाण्डुलिपि गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय के पुस्तकालय- एम0एच0-114 अमृतसर में उपलब्ध है ।)

3. गुलाब सिंह निर्मला : मोख पंथ प्रकाश, पृ0 । (यह पाण्डुलिपि गुरुनानक देव विश्वविद्यालय के पुस्तकालय एम0एच0-48 , अमृतसर में उपलब्ध है ।

है यथा —

"सीय समेत नमो तिनको इक आसन बैठ महा हरि खार"[1]

अथवा

"बंदो सीतापति सदा चिदघन ब्रह्म मुरार ।
लंक राज दिड भ्रात कड रावण को रण मार ।।"[2]

"अध्यातम रामायण" में कवि गुलाब सिंह निर्मला ने "शारदा देवी" के प्रति अपनी श्रद्धा अभिव्यक्त की है —

"देवी माता सारदा, सरद इंदु सम हास ।
बंदों पद पंकज सदा, करो सुमति प्रकास ।।"[3]

"अध्यातम रामायण" में कवि ने गुरू नानक देव[4] तथा "मोख पंथ प्रकाश" में गुरू गोबिंद सिंह[5] को भी हरि का अवतार स्वीकार किया है । निहाल सिंह कवींद्र ने भी गुरू नानक देव जी को

---

1. गुलाब सिंह निर्मला : भाव रसामृत, पृ0 ।
2x [यह पाडुंलिपि सिख रेफरेंस पुस्तकालय- क्रमांक 226/4450 ।, अमृतसर में उपलब्ध है]
2. वही , पृ0 126-127
3. गुलाब सिंह निर्मला : अध्यातम रामायण, पृ0 ।
4. गुर नानक हरि रूप जग तब पंत्र अपार ।
गुर अंगद को दयो तिन दया परम उधार ।।
पंडित गुलाब सिंह निर्मला :अध्यात्म रामायण, पृ0 589.
5. स्री गोबिंद सिंघ सु है पूरण हरि अवतार ।
रचयो पंथ जग मै प्रगट दो विध को विस्तार ।।
पंडित गुलाब सिंह निर्मला : मोख पंथ प्रकाश,

45 6779

अवतारी पुरुष माना है ।[1]

निर्मल-सम्प्रदाय में जहाँ एक ओर ब्रह्म के अद्वैत रूप में आस्था प्रकट की गई है, वहाँ दूसरी ओर सिख-धर्म की मान्यताओं के विपरीत अवतारवाद में भी विश्वास प्रकट किया गया है ।

2.2.2 जीवात्मा-संबंधी मान्यताएँ

निर्मल-सम्प्रदाय में प्रायः जीव के स्वरूप को दो भागों में विभाजित किया गया है - स्थूल पिंड तथा सूक्ष्म पिंड । स्थूल पिंड का निर्माण पंच भूतों - जल, वायु, अग्नि, आकाश और पृथ्वी से माना गया है । सूक्ष्म पिंड ही जीवात्मा है । जीवात्मा सदैव परमात्मा अथवा ब्रह्म से एकाकार होने में प्रयत्नशील रहती है । जीवात्मा और ब्रह्म के मिलन के लिए स्थूल पिंड का होना अनिवार्य है क्योंकि स्थूल पिंड के बिना सूक्ष्म पिंड अथवा जीवात्मा कर्म नहीं कर सकता ।

जीवात्मा का स्वरूप, ब्रह्म के स्वरूप की भाँति निराकार है क्योंकि जीवात्मा, ब्रह्म का एक अभिन्न अंश है । "ब्रह्म से जीव को भिन्न माने घटादि की मत जड़ता होवेगी ।याते जीव ब्रह्म भिन्न नहीं ऐसी भेद की बाधक और जिस प्रकार जल के तरंग और जल एक रूप है ।
[illegible]

---

1. निहाल सिंह कवीन्द्र : कवीन्द्र प्रकाश , पृ० 4
(यह पांडुलिपि सिख रेफरेंस पुस्तकालय-क्रमांक 1805-, अमृतसर में उपलब्ध है ।)

युना अग्नि के चिनकुलिंग औ अग्नि एक रूप है एवं जीव प्रमेश्वरि भी एक रूप है । ऐसी अभेद को साधक युक्तीयों से अभेद चिंतन मनन कहीये है ।[1]

जीवात्मा का आकार सूक्ष्म है, जिसे हम देख नहीं सकते, परन्तु आत्म-साधनों की सहायता से अनुभव अवश्य कर सकते हैं । आत्म-साधनों की सहायता से जीवात्मा आत्म-ज्ञान को प्राप्त करती है । आत्म-ज्ञान के बाद ही जीवात्मा ब्रह्म से एकाकार हो सकती है ।

2.2.3 <u>जगत् संबंधी मान्यताएँ</u>

निर्मल-सम्प्रदाय में जगत् का स्रष्टा ब्रह्म को स्वीकार किया गया है । पंडित गुलाब सिंह निर्मला के अनुसार अपनी माया की सहायता से ब्रह्म ने इस जगत् की सृष्टि की ——

"राम एक आनंद सरूप, प्रत्रित परे पुनि पुरख अनूप ।
निज माया सि जग उपजाइ, बाहर भीतर रहयो समाई ।[2]"

2.2.4 <u>माया संबंधी मान्यताएँ</u>

भारतीय दर्शन परम्परा में माया अथवा ब्रह्म की शक्ति का विशेष रूप से निरूपण शंकराचार्य के समय में हुआ । शंकराचार्य ने ब्रह्म को परमतत्त्व माना तथा माया और अविद्या नामक दो अनिर्वचनीय शक्तियों के द्वारा ब्रह्म ईश्वर के रूप में, ईश्वर जीव के रूप तथा अन्त में जीव जगत के रूप में आभासित होता है । यह आभास माया के कारण है । सत्य के ज्ञान के बाद माया का भ्रम स्वतः ही दूर हो जाता है ।

---

1. पं० तारा सिंह नरोत्तम : गुरमत निर्णय सागर, रावलपिंडी, राय बहादुर बूटा सिंह, 1877 ई०, पृ० 237.
2. पंडित गुलाब सिंह निर्मला : अध्यात्म रामायण, पृ० 12.

पंडित गुलाब सिंह निर्मला के अनुसार यह जगत माया इत्यादि में उलझा हुआ है[1]। माया जीवात्मा और ब्रह्म के मिलन में एक बाधा है। इसी माया के कारण ही जीव अभिमान करता है यथा ———

"माया जगत तु ब्रह्म महान। ताही ते सब होइयो मान।
याँ बेदाँती प्रगट बखाने। रजु सरप ज्यों द्वैत पछाने।"[2]

सारांश में निर्मल सम्प्रदाय में माया को ऐसी शक्ति स्वीकार किया गया है जो एक चित में अनेक चित्त होने का आभास देती है। माया के जाल में बंधी हुई जीवात्मा अपने दोषों को देखकर भी अनदेखा कर जाती है। अविद्या अथवा अज्ञान भी माया का ही एक रूप है जिसमें पड़कर जीवात्मा आत्म-ज्ञान के मार्ग से विचलित हो जाती है।

2.2.5 मोक्ष संबंधी मान्यताएं :-

जब जीवात्मा आत्म-ज्ञान के द्वारा परमात्मा अथवा ब्रह्म में मिलकर एकाकार हो जाती है, तो इस स्थिति को मोक्ष की स्थिति कहते हैं। मुक्ति के संबंध में पंडित तारा सिंह नरोत्तम का कथन है ———

"——————— मोक्ष दुआर कहीये मुक्ती के दरवाजे गा यव ते नदरी नाम गयानी पुरख के साथ त्रय रूप संसार दुख का नास औ परम आनंद की प्रापती रूप मुकती होवे है, बंधन नहीं होवे ———————."[3]

---

1. जग तजे न माया मोहि, नाम अतीत कहावे। पंडित गुलाब सिंह निर्मला : प्रबोध चंद्र नाटक, पृ0 21.
2. पंडित गुलाब सिंह निर्मला : मोक्ष पंथ प्रकाश पृ0 75.
3. पंडित तारा सिंह नरोत्तम : गुरु भाव दीपका, लाहौर, दीवान बूटा सिंह, 1881 ई0, पृ0 61.

निर्मल संतों के अनुसार आत्म – ज्ञान दो प्रकार का है – स्मृति और अनुभव । संस्कार जन्य ज्ञान स्मृति है और अनुभव द्वारा अर्जित ज्ञान अनुभव के अन्तर्गत आता है । आत्म-ज्ञान, आत्म साधनों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है । निर्मल संतों ने आत्म साधन चार प्रकार के स्वीकार किए हैं – वैराग, विवेक, षड संपत्ति और मुमुक्षा । वेदांत -दर्शन के अनुसार जब जीवात्मा को अपने दोषों का ज्ञान हो जाता है, तो वह वैराग की ओर उन्मुख होती है । सत्य, संतोष, क्षमा इत्यादि गुणों को धारण करने पर जीवात्मा विवेक की ओर अग्रसर होती है । उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास , अपूर्व फल, अर्थवाद, उपपत्ति– षड् संपत्ति के द्वारा जीवात्मा अद्वैत ब्रह्म का ज्ञान अनुभव करना आरम्भ कर देती है । अंतिम आत्म-साधन मुमुक्षा के अन्तर्गत जीवात्मा पूर्ण आत्म-ज्ञान को प्राप्त कर लेती और अपना अस्तित्व खोकर ब्रह्म में एकाकार हो जाती है । डा० केवल कृष्ण मित्तल ने अद्वैत वेदांत दर्शन द्वारा प्रतिपादित मुक्ति संबंधी मान्यताओं का बहुत गहरा प्रभाव निर्मल-सम्प्रदाय पर स्वीकार किया है । डा० मित्तल का कथन है ——————"वेदांतियाँ वांग ही वैराग तों मगरों, दैवी संपदा कहे जान वाले सद्गुणां —" दया, संतोष, सत-सत, निरवैर मित्रता, मुदिता, उपेक्षा, अनिंदा , नम्रता, मिठ्ठा ते थोड़ा बोलना, क्षम, अक्रोध, मान रहितता, अहिंसा, सोच, निष्कपटता आदि नू धार के मुकती दी प्रबल इच्छा नाल किसे सतिगुरु कोलों वेद-रूपी श्रुति प्राप्त कर के उस उस्ते मनन ते निदिध्यासन द्वारा, मनुखी आत्मा दे अगम, अकाल, निर्गुण ते निराकार दे साक्षात्कार राहीं उस नाल इकमिक हो जान नूं परम पुरषार्थ मनदे हन ते वेदान्तियां दी तरां ही उह मुकती दा साधन गियान नूं मन के कर्म ते भगती नूं गियान दे सहाई रूप विच स्वीकार करदे हन ।

1 केवल कृष्ण मित्तल : निर्मल-सम्प्रदाय दा दार्शनिक योगदान (निर्मल सम्प्रदाय) पृ० 205.

2.3. धार्मिक मान्यताएँ

"धर्म" शब्द संस्कृत की "धृ" धातु से बना है, जिसका अर्थ है धारण करना। धारण करने का अर्थ है अपनाना, पालन करना। अन्य शब्दों में किसी निश्चित विचार अथवा विश्वास को धारण करना ही धर्म है। "महाभारत" में भीष्म ने युधिष्ठिर को धर्म की परिभाषा बताते हुए कहा है कि "प्राणियों के अभ्युदय और कल्याण के लिए ही धर्म का प्रवचन किया गया है, अतः जो इस उद्देश्य से परिपूर्ण हो अर्थात् जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस् सिद्ध होते हों, वही धर्म है, ऐसा शास्त्र वेत्ताओं का मत है।"[1] पर धर्म के संबंध में कहा गया है ———
"जो धर्म दूसरे धर्म को बाधा पहुँचाता है, वह धर्म नहीं, कुधर्म है। जो धर्म बिना विरोध से है, वही धर्म है।[2] "रामायण" के कर्ता का धर्म के संबंध में अभिमत है -- "धर्म से अर्थ प्राप्त होता है। धर्म से सुख प्राप्त होता है। धर्म से ही मनुष्य सब कुछ प्राप्त करता है। इस संसार में धर्म ही सार है।"[3]

मीमांसा दर्शन के अन्तर्गत "चोदना-लक्षणोऽर्थो धर्मः" (मीमांसा दर्शन x 1-1-2) कहकर वेद अभिव्यक्त कर्मों का पालन करना ही धर्म स्वीकार किया गया है। मनु ने धर्म का

---

1. प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम्।
यः स्यात् प्रभवसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।।
महाभारत (शान्तिपर्व) गोरखपुर, गीता प्रेस, अध्याय 109, 10.

2. धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्म तत्।
अविरोधात् तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रम।।
महाभारत, वनपर्व, अध्याय 131, श्लोक 11.

3. धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम् ।
धर्मेण लभते सर्वं धर्मसारमिदं जगत्।।
रामायण, अरण्य कांड, अध्याय 9, श्लोक 30.

आधार वेदों को माना है ।[1]

धर्म-शास्त्रों में वर्णित धर्म में आत्म-विरोध नहीं है और यह अपनी उदारता और मानवीयता के कारण सार्वभौमिक है ।

"धर्म" के भाव को समझने के लिए हमें एक दृष्टि धर्म के लक्षणों पर भी डालनी चाहिए । मनु ने धर्म के दस लक्षण - दृढ़ निश्चय, क्षमा, दम, चोरी न करना, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, अक्रोध स्वीकार किए है ।[2] याज्ञवल्क्य ने धर्म के लक्षणों को धर्म के साधन कहा है, उनके अनुसार धर्म के 9 साधन - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, दान दम, दया, शान्ति हैं ।[3] पंडित चुनी लाल "सुदन" शास्त्री धर्म के तीस साधन- सत्य, दया, तपस्या, तितिक्षा, उचित अनुचित का विचार, मन, का संयम, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शिता, सेवाभाव, धीरे धीरे सांसारिक भोगों की चेष्टा से निवृत्ति,

---

1. वेदोऽखिलो धर्ममूलम । मनुस्मृति, अध्याय 2, श्लोक 6.

2. धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह :।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम ।।

मनुस्मृति - अध्याय 6, श्लोक 92.

3. अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह : ।
दानं दमो दया क्षान्ति : सर्वेषां धर्म साधनम् ।।

याज्ञवल्क्य स्मृति - अध्याय , श्लोक 121.

अभिमान से किए गए कर्मों का फल उल्टा होता है ऐसा विचार, मौन, आत्म चिन्तन, उपलब्ध अन्नादि का प्राणियों में यथोचित वितरण, तथा उनमें, आत्म भावना करना, सत्पुरुषों के आश्रयदाता परम पिता परमेश्वर का श्रवण, कीर्तन, स्मरण और उनकी सेवा पूजा, नमस्कार तथा उनके प्रति सख्य, दास्य, आत्म समर्पण मानते हैं।[1]

डा० शकुन्तला रानी तिवारी के अनुसार धर्म एक ओर मनुष्य के अत्मिक कल्याण का साधन है तथा दूसरी ओर समाज में सामंजस्य का सूत्र बन जाता है। जो व्यवहार हमें अपने प्रतिकूल जान पड़ते हैं, वैसे व्यवहार जब हम दूसरों के प्रति करते हैं, तो हमारे व्यवहार से दूसरों को दुख होता है तथा उनका अनिष्ट होता है। इन्हें हम अधर्म भी कह सकते हैं।[2]

नवल जी के अनुसार किसी आचार्य आदि द्वारा परिकल्पित ईश्वर, परलोक आदि के संबंध में विशेष रूप का विश्वास और आराधना की विशेष प्रणाली ही धर्म है।[3]

इस परिभाषा के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि निर्मल-संतों द्वारा मान्य धार्मिक विश्वास और आराधना पद्धति का अध्ययन ही निर्मल-सम्प्रदाय की धार्मिक मान्यताओं का

---

1. पंडित चुनी लाल "सुदन" शास्त्री : हिन्दू नित्य कृत्य सहारनपुर, सुदन प्रकाशन, अज्ञात ई० , पृ० 24-25.
2. डा० शकुन्तला रानी तिवारी : महाभारत में धर्म, भरतपुर, भारतीय पुस्तक मन्दिर, 1970 ई., पृ० 135-136.
3. नवल जी : नालन्दा विशाल शब्द- सागर, पृ० 639.

अध्ययन होगा । सुविधा के लिए हम निर्मल-सम्प्रदाय की धार्मिक मान्यताओं को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :-

2. 3.1 धार्मिक- विश्वास

2. 3.2 आराधना - पद्धति

2.3.1 धार्मिक -विश्वास

वे धार्मिक आस्थाएं , जिनके आधार पर निर्मल-सम्प्रदाय जन्मा और विकसित हुआ, को इस सम्प्रदाय के धार्मिक-विश्वास कहा जा सकता है । धार्मिक -विश्वास निम्नलिखित है :-

2.3.1.1 आराध्य-संबंधी विश्वास

हम निर्मल-सम्प्रदाय की दार्शनिक-मान्यताओं के अन्तर्गत अध्ययन कर चुके हैं कि निर्मल-संतों में परमात्मा के दोनों रूपों - निर्गुण तथा सगुण को मान्यता प्राप्त है । निर्गुण के अन्तर्गत "एक ओंकार" तथा सगुण के अन्तर्गत विष्णु राम, गणेश आदि देव-अवतारों तथा सिख -धर्म के दसों गुरुओं को प्रायः निर्मल संतों ने अपने आराध्य के रूप में स्वीकार किया है ।

सिख धर्म की तरह निर्मल संतों द्वारा "श्री गुरु ग्रंथ साहिब" को अपना अन्तिम गुरु स्वीकार किया गया है, इसलिए इसको भी वे अपना आराध्य स्वीकार करते हैं । जिस प्रकार हिन्दू-धर्म में मन्दिरों में स्थित देवी-देवताओं की पूजा होती है, उसी भान्ति निर्मल संत अपने डेरों इत्यादि में "श्री गुरु ग्रंथ साहिब" की पूजा करते हैं । पूजा की पद्धति का अध्ययन हम आराधना पद्धति के अन्तर्गत करेंगे ।

2.3.1.2 दीक्षा-गुरु संबंधी विश्वास

निर्मल -संत अपने दीक्षा-गुरु का बहुत सम्मान करते हैं । अधिकांश निर्मल -संत दीक्षा-गुरु को आराध्य तथा आराधक के बीच एक माध्यम के रूप में स्वीकार करते हैं । पंडित गुलाब सिंह निर्मला का अपने दीक्षा-गुरु के संबंध में कथन दृष्टव्य है ---

"जिह अग्यान निवार्यो दीनों मोरव अपार ।
मान सिंघ गुरु चरन को बंदो बारंबार ।।
गुरु मान सिंघ पदार बिंद आलंबना उर मह ठान ।
कुरखेत प्राची कूल तह यहु कीन ग्रंथ बखान ।।[1]

कवि कर्म सिंह निर्मला ने भी अपने चित्त की जड़ता को चेतनता में परिवर्तित करने का श्रेय अपने गुरु भाग सिंह को ही दिया है ।[2] अमृत-पान प्रत्येक निर्मल-संत के लिए अनिवार्य है । गुरु अपने शिष्य को दीक्षा के अवसर पर प्रायः उसे "अमृत-पान" कराता है ।

2.3.1.3 आराधक-संबंधी विश्वास:

भाई कान्ह सिंह नाभा ने आराधकों अथवा भक्तों के चार वर्ग स्वीकार किए हैं ।[3]

---

1. गुलाब सिंह निर्मला, प्रबोध चन्द्रोदै नाटक, पृ0 73.

2. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुर बंस चन्द्रोदै, छंद संख्या 655, पृ099

3. कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ0 901

कामनावान आराधक धन, संतान इत्यादि ऐश्वर्यों की इच्छा से आराधना करते हैं। आर्त आराधक रोग तथा अन्य दुःखों के निवारण के लिए आराधना करते हैं। उपासक आराधक स्वयं को स्त्री और परमात्मा को अपना पति अथवा भर्ता मानकर आराधना करते हैं। ज्ञानी आराधक आत्मा को परमात्मा का ही रूप मानकर आराधना करते हैं। यह वर्गीकरण गीता में कहे गए चार प्रकार के भक्तों से प्रभावित जान पड़ता है। गीता में आर्त्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी के रूप में चतुर्विध भक्त बताए गए हैं।[1]

'निर्मल – सम्प्रदाय' में प्रायः ज्ञानी आराधक ही मिलते हैं जो परमात्मा के निर्गुण स्वरूप की आराधना करते हैं। वे आत्मा को परमात्मा अथवा "एक ओंकार" का ही अभिन्न अंग मानते हैं। इ. इस तथ्य का अध्ययन दार्शनिक मान्यताओं के अन्तर्गत कर चुके हैं। कुछ निर्मल-संतों में कामनावान आराधक के गुण भी मिलते हैं। एक ऐसे ही निर्मल संत का कथन है ——

"दासन के गन मोहि दिजै, नहि आपन दास किजै बन माही।
कै मणि हेम विमान दिजै, नहिनाम दिजे हमरे मन माही।।"[2]

निर्मल-संत कभी-कभी कामना करता है कि वह अनेक दासों इत्यादि का स्वामी बने। इसके विपरीत स्थिति में वह परमात्मा का दास बनना चाहता है। निर्मल-संतो ने अप्रत्यक्ष रूप में ही ऐश्वर्यों की कामना की है।

---

1. चतुर्विधा भजन्तेमां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।
डा० राधाकृष्णन (सम्पादक) : भगवद्गीता,

2. गुलाब सिंह निर्मला : भाव रसामृत छंद संख्या 12.

2.3.1.4 वेद पुराण इत्यादि संबंधी विश्वास

निर्मल-सम्प्रदाय में वेद इत्यादि हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों में अपार आस्था पाई जाती है । पंडित गुलाब सिंह निर्मला ने अनेक स्थलों पर अपनी कृतियों में वेदों के प्रति अपना विश्वास प्रकट किया है ।

"यदि मारग नाहि अपूरा है कहु आहि प्रसिध सु वेदन माही ।"[1]

"तत्वमसी यह वाक उचारे । मुमखु सिंह सुधा उर धारे ।
गुर प्रसाद सुने वच वेद । जीव परातम लखे अभेद ।।"[2]

इसी संबंध में इतिहासकार नाहर सिंह का मत है ———— "निर्मले पापी हैं जो जीवों को गुरबाणी की ओर से हटाकर वेद की ओर लगाते हैं ।"[3]

अनेक सिख विद्वानों ने निर्मल-सम्प्रदाय पर सबसे बड़ा आरोप यही लगाया है कि निर्मल-संतों ने सिख-धर्म का वेदान्तीकरण कर दिया है । इस संबंध में डा० जसबीर सिंह आहलूवालिया का मत दृष्टव्य है ————

"सिख फलसफे दे वेदान्तीकरण नाल सिख चिन्तन दी, सिख समाज दी विलक्षणता ही भी नहीं होई ———— ———— इक अहिम इतिहासिक पड़ाय ते ज़ोरदार सिखी-प्रचार दे बावजूद निर्मल-सम्प्रदाय दे वेदान्तीकरण दी प्रक्रिया विच

---

1. पंडित गुलाब सिंह निर्मला : मोक्ष पंथ प्रकाश, पृ० 287.
2. पंडित गुलाब सिंह निर्मला : अध्यात्म रामायण, पृ० 537.
3. नाहर सिंह : नामधारी इतिहास, पृ० 152.

रोल मुं वेख के अनडिठ नहीं कीता जा सकदा ।"[1]

2.3.1.5 नाम-दान-स्नान संबंधी विश्वास

भाई कान्ह सिंह नाभा ने नाम, दान तथा स्नान को सिक्ख-मत का मुख्य धार्मिक कर्तव्य स्वीकार किया है ।[2] निर्मल संतों में इस धर्म को आंशिक मान्यता प्राप्त है ।

"नाम" का अर्थ है स्मरण करना । इस का अध्ययन आराधना-पद्धति-संबंधी मान्यताओं में करेंगे । दान से अभिप्राय है- विद्या इत्यादि गुण में निपुणता प्राप्त करना और आत्मनिर्भर होकर दूसरों की सहायता करना । निर्मल संत इस धर्म का पालन नहीं करते हैं। ... से मांग कर भोजन करने तथा दान लेने की प्रवृत्ति में विश्वास रखते हैं । स्नान से तात्पर्य है मन, शरीर, आचरण, वस्त्र, इत्यादि निर्मल रखना । इस धर्म का पालन निर्मल-सम्प्रदाय में पूर्ण रूप से किया जाता है ।

2.3.1.6 अन्य विश्वास

हिन्दू धर्म के संन्यासियों की भाँति निर्मल संत भी कुम्भ इत्यादि के मेलों के अवसरों पर शाही (सवारी) निकालते हैं । "निर्मल पंचायती अखाड़ा" के श्री महंत हाथी पर सवार होकर निकलते हैं । श्री महंत की सवारी के साथ एक अन्य हाथी पर "श्री गुरु ग्रंथ साहिब" का प्रकाश होता है । इसी हाथी पर गुरु गोबिंद सिंह के निशान वाला ध्वज भी लगा होता है ।

---

1. डा० जसबीर सिंह आहलूवालिया : सिख फलसफे दी भूमिका, अमृतसर, रणबीर रचना प्रकाशन, 1976 ई० पृ०60
2. कान्ह सिंह नाभा : महान कोश , पृ० 697.

2.3.2 आराधना-पद्धति

"आराधना" शब्द भक्ति का पर्याय है । परमात्मा में दत्त- चित निष्ठा को ही प्रायः भक्ति कहा जाता है । वैदिक काल में ज्ञान, कर्म और उपासना के संगम को भक्ति स्वीकार किया गया । अन्य शब्दों में उचित ज्ञान द्वारा उचित कर्म करने से उपासना अर्थात परमात्मा का सामीप्य प्राप्त किया जा सकता है । "श्री-मद्-भागवत" में भी परमात्मा की प्राप्ति का सरल साधन भक्ति ही स्वीकार किया गया है ।[1] "श्री-मद्-भागवत" में भक्ति की नौ विधियाँ स्वीकार की गई हैं ——

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।"[2]

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य , सख्य, आत्म-निवेदन को "नवधा भक्ति" कहा जाता है । डा० हरजीत कौर मदान[3] के मतानुसार पंडित तारा सिंह नरोत्तम के साहित्य में नवधा-भक्ति के प्रायः सभी अंगों का वर्णन मिलता है । इसी के आधार पर हम निर्मल-सम्प्रदाय की आराधना पद्धति का अध्ययन करेंगे :-

---

1. श्री-मद्-भागवत पुराण : गोरखपुर , गीता प्रेस, 1951 ई०, 11 स्कंद-चतुर्थ अध्याय- {20-21}
2. श्री मद्-भागवत पुराण : 7 स्कंद-पंचम अध्याय - {23}
3. डा० हरजीत कौर मदान : तारा सिंह नरोत्तम, गुरबाणी मूल्यांकन {निर्मल सम्प्रदाय}, पृ० 371.

2.3.2.1 **श्रवण पद्धति**

अपने आराध्य के यश को सुनना श्रवण पद्धति के अन्तर्गत आता है । जिज्ञासु के लक्षण बतलाते हुए कवि कर्म सिंह निर्मला ने श्रवण पद्धति की भक्ति के महत्व को स्वीकार किया है——

"करम भांति षट तुम सुनो, चार करन षट जोई ।
सुना चिली श्रवणादि षट, सुक्ष्म जग्यासु सोई ।।"[1]

'निर्मल सम्प्रदाय' में प्रायः दीक्षा ग्रहण करने बाद निर्मल संत अपने दीक्षा-गुरु के धार्मिक वचनों का श्रवण ही किया करते हैं ।

2.3.2.2 **कीर्तन पद्धति**

अपने आराध्य के गुणों का यशोगान कीर्तन पद्धति की आराधना है । इस पद्धति का प्रयोग प्रायः सभी निर्मल संत करते हैं । निर्मल -संतों का मुख्य कर्तव्य गुर-मत प्रचार है । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वे धार्मिक सभाओं का आयोजन करते हैं और वहाँ गुरमत-प्रचार के लिए "श्री गुरु ग्रंथ साहिब" के "शब्दों" का कीर्तन करते हैं ।

पंडित गुलाब सिंह निर्मला ने भक्ति की कीर्तन-पद्धति के महत्व को स्वीकार किया है ———

"गुरु तें ले मंत्र/विधि जैसे । सो को भजै कहै गुरु जैसे ।"[2]

2.3.2.3 **स्मरण पद्धति**

अपने आराध्य को चित्त में स्मरण करना अथवा नाम जपना स्मरण पद्धति के अन्तर्गत आता है । सिख मत की भाँति 'निर्मल -सम्प्रदाय' में भी नाम जपने का बहुत महत्व है । इस संबंध

---

1. कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, छंद संख्या 14 (पृ0 3).
2. गुलाब सिंह निर्मला : अध्यात्म रामायण, पृ0 261.

में पंडित तारा सिंह नरोत्तम का कथन है ——

"उठत बैठत सोवते मुखा मो हरि के नाम ।
कहि गुर उबे टेर के जन के रहो काम ।
बध एवं स्तुति सिमिति गुरु वाक्य अनुसार ।
राम नाम जप कीजीये भवनिधि तारनहार ।"[1]

2.3.2.4 पाद-सेवन पद्धति

अपने आराध्य गुरु या संत के चरणों में आदर प्रकट करना पाद-सेवन के अन्तर्गत आता है । इस प्रकार की आराधना भी निर्मल-संतों में पाई जाती है । निर्मल संत गुलाब सिंह निर्मला का अपने आराध्य गुरु गोविंद सिंह के संबंध में कथन है ——

"तिन पद पकंज नीर सहि, पायो मोहि बिचार ।
तिसु अनुपाई बाल मैं, कीनों ग्रंथ उचार ।।"[2]

अपने गुरु के संबंध में गुलाब सिंह निर्मल का कथन है——

"जा पद पकंज नीर सहि, बंधन दए निवार ।
मान सिंध गुर को नमो, तपो गिआन अवतार ।।"[3]

2.3.2.5 अर्चन पद्धति

फूल, चंदन इत्यादि सामग्री द्वारा अपने आराध्य की पूजा करना अर्चन-पद्धति है । निर्मल संत प्रातः तथा संध्या के समय धूप, दीप इत्यादि के द्वारा "श्री गुरु ग्रंथ साहिब की आरती करते हैं । इसके अतिरिक्त अपने दीक्षा-गुरुओं की समाधियों पर भी

---

1. पंडित तारा सिंह नरोत्तम : गुरुमत निर्णय सागर, पृ0 4.
2. गुलाब सिंह निर्मला : मोक्ष पंथ प्रकाश, पृ0 288-289.
3. गुलाब सिंह निर्मला : अध्यातम रामायण पृ0 590.

धूप, दीप, फूल इत्यादि चढ़ाने का प्रचलन 'निर्मल सम्प्रदाय' में मान्य है । दिन में दो बार "श्री गुरु ग्रंथ साहिब" का प्रकाश सभी निर्मल डेरों अथवा अखाड़ों में अनिवार्य माना जाता है । पंडित गुलाब सिंह निर्मल के साहित्य में पूजन अथवा अर्चन तथा स्मरण अथवा नाम जपने का समन्वय दृष्टव्य है ———

"होइ निरालम पूजन करे । मेरे नाम सदा मुख रहे ।
सो बहु जान करे गुर पूजा । ता मे भाव न आने दूजा ।।"[1]

2.3.2.6 बन्दन पद्धति

अपने आराध्य के सम्मुख श्रद्धा-भाव से नत-मस्तक होना "बन्दन" आराधना पद्धति है । "श्री गुरु ग्रंथ साहिब" के सम्मुख माथा टेक कर नत मस्तक होने की प्रथा निर्मल संतों में सर्वमान्य है । कवि कर्म सिंह निर्मला का कथन है ———

"मह को इक पर विसवास दर, कलजुग के परभाव ।
याते ग्रंथ सु मान गुर, मथो टेक गुर पाव ।।"[2]

2.3.2.7 सख्य पद्धति

आराध्य को अपना सखा अथवा मित्र मान कर आराधना करना ही "सख्य" पद्धति से अभिप्राय: है । इस प्रकार की आराधना का निर्मल-सम्प्रदाय में प्राय: अभाव है ।

2.3.2.8 दास्य पद्धति

इसके अन्तर्गत आराधक स्वयं को दास और अपने आराध्य को स्वामी मान कर श्रद्धा-भाव से आराधना करता है । दास्य

---

1. पंडित गुलाब सिंह निर्मला : अध्यात्म रामायण, पृ0 262.

2. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुर बंस चन्द्रोदै, छंद संख्या 569, पृ0 93.

भाव से की गई आराधना निर्मल-सम्प्रदाय में प्रायः कम ही दिखाई देती है ।

2.3.2.9 आत्म निवेदन पद्धति

इस प्रकार की आराधना में आराधक अपने कल्याण के लिए अपने आराध्य के सम्मुख निवेदन करता है । इस भव -सागर से पार उतरने के लिए कवि कर्म सिंह निर्मला ने दसों गुरुओं के सम्मुख आत्म-निवेदन किया है ——

"मो दस गुरो नाथ अनाथं ।
करम सिंघ को गहि के हाथं ।
बार बार इह बिनती म्हारो ।
भव सागर ते पार उतारो ।।"[1]

2.4 नैतिक मान्यताएँ.

"नीति" का सामान्य अर्थ है व्यवहार की वह रीति, जिससे अपना हित हो और किसी दूसरे की हानि न हो । मानवीय आचार-व्यवहार की कौन सी रीति अच्छी है और कौन सी बुरी, इसका अध्ययन नीति-शास्त्र में किया जाता है । अपने जीवन के आध्यात्मिक स्तर को ऊपर उठाने के लिए निर्मल संतों ने कुछ जीवन रीतियों को उचित समझकर स्वीकार किया और कुछ जीवन-रीतियों को अनुचित समझकर उनका परित्याग किया । इस प्रकार "निर्मल -सम्प्रदाय" की नैतिक मान्यताओं को मुख्यतः हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं ——

2.4.1 विधि-परक नैतिक मान्यताएँ

2.4.2 निषेध-परक नैतिक मान्यताएँ

---

1. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुर बंस चन्द्रोदे, छंद संख्या 646, पृ० 98.

2.4.1 विधि परक नैतिक मान्यताएँ :-

निर्मल संतों द्वारा गृहस्थ जीवन रीतियों का अध्ययन विधि परक नैतिक मान्यताओं के अन्तर्गत किया जाएगा ।

2.4.1.1 संतोष और सहनशीलता

संतोष और सहनशीलता की अपार मात्रा आरम्भ से ही निर्मल-संतों में पाई जाती है । एक बार आनंदपुर साहिब पंजाब, में निवास के समय गुरु गोबिंद सिंह जी ने अपने शिष्यों की परीक्षा लेने के लिए प्रसाद मँगवाया और लूट लेने का हुक्म दिया । सभी सिख प्रसाद पर टूट पड़े । जिसके हाथ जितना लगा, उसने उतना खाया । लेकिन कुछ शिष्य बड़े धैर्य के साथ खड़े रहे । इन शिष्यों में धर्म सिंह, दया सिंह, केसर सिंह इत्यादि निर्मल संत मुख्य थे । गुरु जी अपने इन शिष्यों में विद्यमान सन्तोष को देख कर बहुत प्रसन्न हुए । इस घटना का उल्लेख ज्ञानी ज्ञान सिंह जी ने[1] किया है । आरम्भ से ही संतोष, धैर्य, सहनशीलता "निर्मल-सम्प्रदाय" में मान्य थे ।

2.4.1.2 दानशीलता

दान का संबंध धन मात्र इत्यादि भौतिक पदार्थों से ही नहीं है अपितु विद्या से भी इसका गहरा संबंध है । निर्धन, ग्रामीण बच्चों तथा स्त्रियों को प्रायः निर्मल डेरों में विद्या का दान दिया जाता है । संस्कृत , गुरमुखी इत्यादि भाषाओं का ज्ञान दे कर निर्मल-संत धार्मिक ग्रंथों को पढ़ाना अपना नैतिक कर्तव्य

---

1. ज्ञानी ज्ञान सिंह : निर्मल पंथ प्रदीपका, पृ० 24.

समझते हैं । सारांश में हम कह सकते हैं कि विद्या का दान निर्मल-सम्प्रदाय में एक कर्तव्य के रूप में लिया जाता है ।

2.4.1.3 श्रद्धा

निर्मल-संतों में अपने माता, पिता तथा गुरु के लिए बहुत श्रद्धा भाव होता है । किसी भी निर्मल साहित्यकार को लें, उसने अपने माता, पिता और विशेषतः अपने दीक्षा-गुरु के लिए सम्मान एवं श्रद्धा भाव अवश्य व्यक्त किया है ।

इनके अतिरिक्त कुछ निर्मल संतों ने विद्वान वर्ग के लिए भी अपना श्रद्धा-भाव अभिव्यक्त किया है । कवि कर्म सिंह निर्मला ने अपनी एक कृति में "सर्वत्र ज्ञानवान की स्तुति"[1] के अन्तर्गत ज्ञानी पुरुषों के लिए अपना सम्मान अभिव्यक्त किया है ।

2.4.1.4 विवेक

विवेक अर्थात बुद्धि के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है । निर्मल संतों ने प्रायः विवेक को आत्म साधन के रूप में अपनी कृतियों में अभिव्यक्त किया है । कवि कर्म सिंह निर्मला के अनुसार विवेक से ही सत्य-असत्य का ज्ञान होता है और इसी की सहायता से परम सुख प्राप्त किया जा सकता है ।[2]

2.4.1.5 शरणागत् वत्सलता

जो भी व्यक्ति एक बार किसी निर्मल डेरे में आ गया, उसके रहने, खाने-पीने का प्रबंध करना उस डेरे के महंत का नैतिक कर्तव्य बन जाता है । इतना ही नहीं, उसकी रक्षा करना भी निर्मल महंत का नैतिक कर्तव्य है । एक बार सरदार अतर सिंह संधावालिया ने औरंगाबाद के निर्मल संत के यहाँ शरण ली और संत

---

1. कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश पृ070.

2. वही , पृ0 9.

बीर सिंह जी से प्रार्थना की कि वे हीरा सिंह डोगरे से उनकी रक्षा करें । निर्मल संत बीर सिंह जी ने अपनी शरण में आए सरदार की रक्षा के लिए अपने जीवन तक की आहुति दे दी । इस घटना का उल्लेख महंत गणेश सिंह जी ने किया है ।[1]

2.4.1.6 मृदु-भाषा

अधिकांश निर्मल संत सदैव मृदु भाषा का प्रयोग करते हैं । कटु वचनों के लिए निर्मल-सम्प्रदाय में कोई स्थान नहीं है । अनेक सिख विद्वानों ने 19 वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में 'निर्मल सम्प्रदाय' पर अनेक आरोप लगाए । ज्ञानी ज्ञान सिंह, महंत गणेश सिंह, महंत दयाल सिंह इत्यादि निर्मल संतों ने बड़ी मृदु भाषा में अपने सम्प्रदाय का इतिहास लिखकर उन आरोपों का खंडन किया । किसी भी स्थल पर निर्मल -संतों ने कटु भाषा का प्रयोग नहीं किया ।

उपर्युक्त विधि -परक नैतिक मान्यताओं के अतिरिक्त सत्य, क्षमा, परोपकार इत्यादि भी निर्मल-सम्प्रदाय में सर्वमान्य हैं ।

2.4.2 निषेध परक नैतिक मान्यताएं :-

निषेध परक नैतिक मान्यताओं में उन मान्यताओं का वर्णन किया जाएगा, जिनको अनुचित समझकर निर्मल-संतों ने परित्यक्त किया ।

2.4.2.1 काम और क्रोध

"काम" से हमारा अभिप्राय: है कामना । निर्मल-संत ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं । इसलिए काम-वासना के लिए उनके जीवन में कोई स्थान नहीं है । क्रोध से मनुष्य अपना विवेक खो देता है और विवेक को निर्मल संत आत्म-साधना के रूप में स्वीकार करते हैं, इसलिए क्रोध का भी निर्मल-सम्प्रदाय में परित्याग किया गया है ।

---

1. महंत गणेश सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ0 408.

2.4.2.2 लोभ और मोह

"लोभ का अर्थ है किसी भौतिक पदार्थ की लालसा और मोह का अर्थ है, अपने किसी प्रिय जन के लिए अनुराग।[1] पंडित गुलाब सिंह निर्मला ने मोह का परित्याग करने का परामर्श दिया है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि लोभ और मोह को निर्मल संत मोक्ष के मार्ग में बाधा स्वीकार करते हैं।

2.4.2.3 निंदा और चिंता

निंदा का अर्थ है दूसरों की बुराई करना। निंदा आत्म बल को कम करती है, इसलिए 'निर्मल-सम्प्रदाय' में इसका परित्याग किया जाता है। चिंता प्रायः भौतिक पदार्थों की होती है और भौतिक पदार्थों के लिए लगाव निर्मल संतों में होता नहीं है। इसलिए चिंता के लिए भी "निर्मल-सम्प्रदाय" में कोई स्थान नहीं है।

2.4.2.4. अहंकार और आलस्य

अहंकार और आलस्य दोनों ही मनुष्य के मानसिक स्तर को नीचे गिराते हैं। विरक्त जीवन व्यतीत करने वाले निर्मल संतों में इन दोनों दुर्गुणों का परित्याग किया जाता है।

2.4.2.5 द्वेष और तृष्णा

द्वेष से अभिप्राय है किसी की भौतिक उन्नति को देखकर जलना। "तृष्णा" का अर्थ है किसी भौतिक वस्तु की प्राप्ति के लिए तीव्र इच्छा। 'निर्मल-सम्प्रदाय' के संत भौतिक पदार्थों का परित्याग करते हैं, इसलिए द्वेष तथा तृष्णा के लिए उनके जीवन

---

1. गुलाब सिंह निर्मला : प्रबोध चंद्र नाटक, पृ0 21.

में कोई स्थान नहीं है ।

2.4.2.6 असत्य और हिंसा :-

निर्मल संत सदैव परम सत्य की खोज में लगे रहते हैं इसलिए उनके जीवन में असत्य का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता । हिंसा का भी 'निर्मल सम्प्रदाय' में विरोध किया जाता है ।

उपर्युक्त निषेधपरक नैतिक मान्यताओं के अतिरिक्त कुसंगति, कृतघ्नता, चोर कर्म, ठगबाजी इत्यादि का भी 'निर्मल सम्प्रदाय' में परित्याग किया जाता है ।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि "निर्मल-सम्प्रदाय" के संतों ने प्रायः सभी सद्गुणों को धारण किया है और दुर्गुणों का परित्याग किया है ।

:-:-

अध्याय 3

हरि अकृष्ट सतसैया : कृति और कृतिकार

अध्याय - 3

हरि अष्टम सतसैया , कृति और कृतिकार

"हरि अष्टम सतसैया" के रचयिता कवि कर्म सिंह निर्मला के जीवन पर सामग्री नाम मात्र को ही उपलब्ध है । सिक्खों के ऐतिहासिक ग्रन्थों में विद्यमान छुट-पुट सामग्री के अतिरिक्त केवल प्रताप सिंह जी का ही पी-एच0डी0 का शोध-प्रबंध [अप्रकाशित] उपलब्ध है, जिसमें कवि के जीवन पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है । कवि के संबंध में प्रताप सिंह जी का मत है —— "कुछ मौखिक स्रोतों के आधार पर यह अनुमान होता है कि कवि कर्म सिंह जी जाति के ब्राह्मण या अरोड़ा थे । इनका निवास अमृतसर में था । इसका उल्लेख उन्होंने अपनी रचना में स्वयम् किया है और यह स्वर्ण मन्दिर के पिछली ओर किसी गली में रहते थे, उपजीविका के लिए कथा तथा गुरु ग्रंथ साहिब के पाठादि एवं ग्रन्थ लेखन से काम चलाते थे । इनकी लिखी अभी तक तीन रचनाओं का पता चल सका है —— हरि अष्टम सतसैया [1845 ई0], गुरु धर्म चन्द्रिका [1847 ई0], सद गुरु प्रकाश [1864 ई0]"[1] यह मत स्थापित करने से पूर्व प्रताप सिंह जी ने अमृतसर के तीन कर्म सिंह नामक कवियों पर विचार किया है-

[क] संत कर्म सिंह निर्मला, डेरा गली गुजरों वाली, अमृतसर ।

[ख] संत कर्म सिंह अड्डणशाही, कटड़ा
भाई कर्म सिंह, गली अरोड़ा, अमृतसर ।

[ग] संत कर्म सिंह निर्मला, शाहाबाद ।

---

1. प्रताप सिंह : 18वीं और 19वीं शताब्दी में अमृतसर नगर के हिन्दी कवि [अप्रकाशित शोध-प्रबंध] अमृतसर, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, 1979 ई0, पृ0 79.

§क§ संत कर्म सिंह निर्मला, डेरा गली गुजरों वाली, अमृतसर पर अधिक विचार करने का कोई औचित्य नहीं है क्योंकि डेरे के वर्तमान महंत सुन्दर सिंह जी के अनुसार आपका जन्म सन् 1850 ई0 तथा देहान्त सन् 1915 ई0 के लगभग निश्चित होता है जबकि कवि की सन् 1850 ई0 के पूर्व की रचनाएं भी उपलब्ध हैं यथा "हरि अष्ट सतैया" §1845 ई0§ तथा "नृप धर्म चन्द्रिका" §1847 ई0§ ।

§ख§ संत कर्म सिंह अड्डणशाही, डेरा कटड़ा भाई कर्म सिंह, अमृतसर का संबंध सेवा -पंथ से है । वर्तमान महंत जगजीत सिंह जी के अनुसार इस डेरे को महाराजा रणजीत सिंह ने जागीर तथा फतहपुर गांव में जमीन दी हुई थी, जो कि सिक्ख राज्य के अन्त होने पर भी अंग्रेजों द्वारा संत कर्म सिंह जी के जीवन पर्यन्त बहाल रखी गई और फिर बाद में ज़ब्त कर ली गई । काल की दृष्टि से आपके जीवन पर विचार करना उचित प्रतीत होता है, परन्तु हमारे आलोच्य प्रबंध का कवि अपनी किसी भी कृति में अड्डणशाही प्रमाणित नहीं होता बल्कि इसके विपरीत कवि की चारों रचनाओं के कथ्य तथा काव्य शिल्प के आधार पर बड़ी सरलता से निर्मला प्रमाणित हो जाता है । इसके अतिरिक्त संत कर्म सिंह अड्डणशाही के कवि होने का भी कहीं कोई प्रमाण नहीं मिलता । अतः संत पर विचार करना भी तर्क संगत नहीं है ।

§ग§ संत कवि कर्म सिंह निर्मला, शाहबाद को हम अपने आलोच्य प्रबंध का रचयिता स्वीकार करते हैं । इससे पहले कि हम संत कर्म सिंह निर्मला , शाहबाद को "हरि अष्ट सतैया" का कृतिकार स्थापित करें, प्रताप सिंह जी की मान्यताओं पर विचार करना यहाँ तर्क संगत होगा :-

1. प्रताप सिंह जी के मतानुसार -- "निर्मल सम्प्रदाय के इतिहास ग्रंथों

में किसी संत भाग सिंह और उनके शिष्य कर्म सिंह का उल्लेख नहीं मिल पाया ।"[1]

यह उचित है कि "निर्मल सम्प्रदाय" के किसी भी इतिहास ग्रंथ में संत भाग सिंह और उसके शिष्य कर्म सिंह का साथ-साथ उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु दोनों का अलग-अलग संक्षिप्त वर्णन "निर्मल सम्प्रदाय" के इतिहास-ग्रंथों में अवश्य मिलता है ।

ज्ञानी ज्ञान सिंह के मतानुसार ---

"फेर सरदार ध्यान सिंघ शाहाबादिए ने अपने तमाम इलाके का वारिस भाई करम सिंघ निरमले संत को बना दीया था । जिसकी औलाद अब तक है ।"[2] महंत गणेशा सिंह जी ने अपने निर्मल सम्प्रदाय के इतिहास ग्रंथ में कर्म सिंह निर्मले का दो-तीन स्थानों पर उल्लेख किया है यथा ---

"सरदार ध्यान सिंह शाहाबादीए ने अपना वारसी नामा पंडित कर्म सिंघ निर्मले नूं लिख दित्ता सोहनां संतों दे बारस हुन तक सुवाद विचुच काबज़ हन ।"[3] संत कर्म सिंघ निर्मले ने तीन मंजिला शाहाबादियों वाले बुंगे का सन् 1773 ई0 में 8800 रूपय की लागत से निर्माण करवाया और यह बुंगा हरिमन्दिर साहिब की परिक्रमा की लहंदी दिशा में स्थित है ।[4]

---

1. प्रताप सिंह, 18वीं और 19वीं शताब्दी के अमृतसर नगर के कवि अप्रकाशित शोध-प्रबंध, पृ0 76.
2. ज्ञानी ज्ञान सिंह : निर्मल पंथ-प्रदीपका, पृ0 68.
3. गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ0 83.
4. महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख,पृ0185.

गुरु भाग सिंह के जीवन पर भी महंत गणेशा सिंह जी ने प्रकाश डाला है ——— "नौवें प्रीतम गुरु जी दे बचन द्वारा संमत 1823 विच्च कादराबाद आपदा जन्म होया ——————————— अते 72 साल दी आयु भोग के माघ सुदी 5 संमत 1895 नूं प्रलोकवास कर गए"।[1]

महंत दयाल सिंह जी ने गुरु भाग सिंह जी के संबंध में लिखा है ——— "आप पूर्ण सिद्ध पुरख होए हन। जन्म ज़िला गुजरात पिंड कादराबाद विखे भाई हरजस राय सिंह दे घर सं0 1823 बिक्रमी नूं होइया ——————— ससकार तों बाद चौथे दिन बाबा जी दे फुल भाई रोशा सिंघ जी हरिद्वार लै गए। श्री भाई चंदा सिंघ जी पीछे डेरे रहे।"[2]

इन महंतों के अतिरिक्त और भी कई विद्वानों ने भाग सिंह कुरी वाले का उल्लेख किया है।

§2.§ प्रताप सिंह जी की दूसरी मान्यता यह है कि "कवि कर्म सिंह जाति के ब्राह्मण या अरोड़ा था।"[3] इस संबंध में हमारा विचार है कि कवि कर्म सिंह निर्मला अमृतसर के सन्धु जाट थे। हमारे इस तथ्य का आधार श्रीमती सरदारनी जसवंत कौर जी से एक साक्षात्कार[4] है जो कवि के वंशजों में से हैं।

---

1. महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ0-398-402.
2. महंत दयाल सिंह: निर्मल पंथ दर्शन §भाग 2§ पृ0 253-260.
3. प्रताप सिंह : 18वीं और 19वीं शताब्दी के अमृतसर नगर के कवि, पृ0 79.
4. सरदारनी जसवंत कौर से एक साक्षात्कार, दिनांक 24-29 दिसम्बर, 1983.

§3§ प्रताप सिंह जी की तीसरी मान्यता कवि के निवास के संबंध में है यथा "इनका §कवि कर्म सिंह§ निवास अमृतसर में था, इसका उल्लेख उन्होंने अपनी रचना में स्वयं किया है।"[1] ध्यातव्य है कि कवि का निवास अमृतसर में था, ऐसा उल्लेख कवि ने अपनी किसी रचना में नहीं किया। इतना अवश्य सिद्ध होता है कि कृतियों की रचना अथवा रचना की प्रतियों का लेखन अमृतसर में हुआ है, यथा—

"हरि अद्रिष्ट सतसय भयो, अंम्रितसर कर बास।
नैन नमं ग्रह आतमा, संमत सुभ नभ मास।।"[2]

"सुधासुसर मै वास कर, भदर मास मह जोई।
क्रिसन् पख की त्रोदसी, ग्रंथ संपूरन होई।।"[3]

"सुधासर तट चित् होइ रची रचन इह चाह।
आतम द्रिड के हेत गुन और हेतु को नाह।।"[4]

"नृप धर्म चन्द्रिका नाम के इस ग्रंथ को उसने सुधाताल §अमृत सरोवर§ के किनारे रचा।"[5]

---

1. प्रताप सिंह : 18वी और 19वीं शताब्दी के अमृतसर नगर के कवि, पृष्ठ 79.
2. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, संख्या – 701.
3. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरबंस चन्द्रोदै, छंद संख्या 669.
4. कर्म सिंह निर्मला : सदगुरु प्रकाश, छंद संख्या 92.
5. डा० प्रताप सिंह : 18वी और 19वी शताब्दी के अमृतसर नगर के कवि, पृ० 241.

§4.§ "अमृतसर नगर के निर्मल पंथी डेरों में भी उनकी उपस्थिति सिद्ध नहीं हो पाई।"[1] यह प्रताप सिंह जी की चौथी मान्यता है। हमारा मत यह है कि कवि का जन्म तो अवश्य अमृतसर में हुआ, परन्तु वे अमृतसर बहुत कम ही रहे होंगे। चूंकि शाहबाद क्षेत्र हरियाणा में उनकी स्वतन्त्र जागीर थी, इसी लिए अमृतसर के किसी निर्मल पंथी डेरे में उनके रहने का प्रश्न ही नहीं उठता। कवि कर्म सिंह निर्मला की धार्मिक वृत्ति थी, इसलिए सुधा सार §अमृतसर के स्वर्ण मंदिर का सरोवर§ के तट पर आपने सन् 1773 में बुंगा §एक प्रकार का आवासीय भवन§ शाहबादियों वाला बनवाया। अतः वे जब भी अमृतसर रहे होंगे, निश्चित रूप से अपने बनवाए बुंगे में ही रहे होंगे।

§5.§ प्रताप सिंह जी का कथन है ---- "कवि कर्म सिंह जी स्वर्ण मन्दिर के पिछली ओर किसी गली में रहते थे।"[2] इस संबंध में हमारा मत यह है कि कवि का बचपन अपने जन्म-स्थान गांव भकना §जिला अमृतसर§[3] में बीता। इसके बाद आपका कुछ समय संन्यास में व्यतीत हुआ और सन् 1771 ई0 के बाद आपका निवास शाहबाद §हरियाणा§ में ही रहा। प्रताप सिंह जी के मौखिक स्रोत के आधार पर अवलम्बित उस कथन से हम सहमत नहीं हैं।

§6§ "उपजीविका के लिए §कवि कर्म सिंह§ कथा तथा गुरु ग्रन्थ साहिब के पठादि एवं ग्रंथ लिखने से काम चलाते थे।"[4] यह प्रताप सिंह जी की

---

1. डा0 प्रताप सिंह : 18वीं और 19वीं शताब्दी के अमृतसर नगर के कवि, पृ0 76.
2. वही
3. सरदारनी जसवंत कौर से एक साक्षात्कार 24-29 दिसम्बर, 1983.
4. प्रताप सिंह: 18वीं और 19वीं शताब्दी के अमृतसर नगर के कवि, पृ0 76.

छटी मान्यता है । उपजीविका के लिए कवि के पास पर्याप्त साधन थे । ब्राउनी के अनुसार कर्म सिंह निर्मला की सेना में 750 घुड़सवार तथा 250 पैदल सैनिक थे ।[1] अतः जो व्यक्ति इतनी बड़ी सेना रख सकता है, उसे उपजीविका हेतु कथा एवं पाठादि करने की क्या आवश्यकता हो सकती है ।

हमने कवि कर्म सिंह निर्मला शाहाबादी को "हरि अद्भुत सतसैया" एवं अन्य कृतियों का कृतिकार स्वीकार किया है, इसके निम्नलिखित कारण हैं ---

(क) कवि कर्म सिंह : निर्मला संत

"हरि अद्भुत सतसैया" का कृतिकार, हुकम सिंह का पुत्र एवं भाग सिंह का शिष्य कवि कर्म सिंह क्या निर्मला संत था ? इस प्रश्न को सुलझाने के लिए हमें 18वीं शताब्दी के दूसरे चरण से लेकर 19वीं शताब्दी के प्रथम चरण में विद्यमान राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों पर विचार करना पड़ेगा । इस समय सिख मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित थे -

क सिख धर्म में विश्वास रखने वाले एवं रोजमर्रा का जीवन व्यतीत करने वाले गृहस्थ सिख ।

ख तलवार के बल पर सिख धर्म की रक्षा में प्रवृत्त निहंग सिख

ग सिख धर्म का अध्ययन एवं अध्यापन करने वाले विद्या-व्यसनी सिख अर्थात निर्मले संत ।

सन् 1768 ई० में अहमद शाह अब्दाली भारत पर अपने आठवें आक्रमण के बाद वापिस लौट चुका था । सिखों में लूटमार मची हुई

---

1. नरेन्द्र कृष्ण सिन्हा : राइज़ ऑफ द सिख पावर, कलकत्ता, ए० मुकर्जी, 1973 ई०, पृ० 61.

थी । "जोरो जबर बाजु-ए-शमशीर" जिसके हाथ जो भी लगा, उसने उसी पर कब्जा कर लिया था । ऐसी परिस्थितियों में जो व्यक्ति जगत , जीव, ब्रह्म, माया, मोक्ष,कर्म, ध्यान, चित, मनन, निजानंद, निदिध्यासन इत्यादि दार्शनिक बिन्दुओं पर विचार करता है,[1] सदैव सुख प्राप्ति हेतु ग्रन्थ की रचना करता है,[2] अपने सिख गुरुओं के इतिहास का विस्तार-पूर्वक वर्णन करता है,[3] वह सिख निश्चित रूप से अध्ययन एवं अध्यापन करने वाला विद्या-व्यसनी निर्मला संत ही हो सकता है । उस समय निहंग सिखों , गृहस्थ सिखों और निर्मलि सिखों में पारस्परिक बहुत तालमेल था । सभी वर्ग मुख्य रूप से सिख ही कहलाते थे । इसीलिए अधिकांश निर्मले सिखों ने अपनी कृतियों में स्वयं को "निर्मला" बहुत कम लिखा है । यही कारण है कि कवि कर्म सिंह ने अपनी किसी भी रचना में स्वयं को निर्मला कहीं नहीं लिखा । लेकिन जब हम कृतिओं के प्रतिपाद्य तथा शिल्प का अध्ययन करते हैं, तो कवि का निर्मला पंथ का अनुगामी होना सिद्ध हो जाता है । कवि की कृतियों का आरम्भ इष्ट-स्तुति अथवा मंगलाचरण एवं अन्त संस्कृत भाषा में निबद्ध पुष्पिका ——— "इति श्री मत भाग सिंघ चरन सिख्य करम सिंघेन दया हुकम सिंघ आतमयेन विरचते ससया सुर्भ भवेत"[4] इसी दिशा में प्रयत्न होता है ।

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्ट सतसैया
2. कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश
3. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुर बंस चन्द्रोदै
4. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्ट सतसैया , पुष्पिका देखें ।

सरदार कर्म सिंह शाहबादी को अनेक सिख इतिहासकारों यथा - एल०एच० ग्रिफिन,[1] हरी राम गुप्ता,[2] शमशेर सिंह अशोक,[3] महंत गणेशा सिंह,[4] सतबीर सिंह[5] इत्यादि ने निर्मला स्वीकार किया है। सरदारनी जसवंत कौर ने भी एक साक्षात्कार में लेखक[6] के समक्ष अपने पूर्वज को निर्मला स्वीकार किया है। उन्होंने यहाँ तक माना है कि आज भी उनके परिवार में कुछ निर्मल सम्प्रदाय की मर्यादाओं का पालन किया जाता है :-

क आज भी इस परिवार के बड़े पुत्र को "सरदार जी" एवं सरदार बहादुर" न कहकर" लाल जी" कह कर सम्बोधित किया जाता है। सरदार बीरेन्द्र सिंह जी को शाहबाद में प्रायः "लाल जी" कहा जाता है।

ख आज भी इस परिवार की जायदाद इत्यादि को निर्मल संतों की गद्दी की जायदाद स्वीकार किया जाता है।

---

1. एल०एच० ग्रिफिन : द राजाज़ ऑफ द पंजाब, नई दिल्ली, मनु पब्लिकेशन, 1977 ई०, पृ० 70.
2. हरी राम गुप्ता : हिस्ट्री ऑफ द सिख्ज़ (भाग III), लाहौर, मिनर्वा बुक शॉप 1944 ई० , पृ० 140.
3. शमशेर सिंह अशोक : पंजाबी हथलिखतां दी सूची (भाग II), पटियाला, भाषा विभाग पंजाब, 1983, पृ० 9, 375.
4. महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ० 185.
5. सतबीर सिंह : साडा इतिहास (भाग II) जालन्धर, न्यू बुक कम्पनी, 1970 ई. ,पृ० 185.
6. सरदारनी जसवंत कौर से साक्षात्कार दिनांक 24-29 दिसम्बर, 1983.

ग आज भी इनके वंशजों में देहान्त के बाद अस्थियों का प्रवाह कीरतपुर साहिब की अपेक्षा हरिद्वार में करने की प्रथा है ।

घ आज भी शाहाबाद के निर्मल संत ज्ञानी अमर सिंह जी निर्मला इस परिवार में विशेष श्रद्धेय समझे जाते हैं । परिवार के उत्सवों में वे ही "गुरु ग्रंथ साहिब" का पाठादि करते हैं ।

(ख) कवि कर्म सिंह : सिख सरदार :-

जहाँ तक ओर कवि कर्म सिंह की सिख धर्म तथा सिख इतिहास पर कृतियाँ प्राप्य हैं वहाँ दूसरी ओर राजनीति के विषय पर भी एक कृति "नृपधर्म चन्द्रिका" उपलब्ध है । कहा जाता है कि इस कृति में कवि ने राजनीति में पारंगत होने के लिए 16 प्रकार की राजनैतिक कलाओं का महत्व बतलाया है यथा — सभा सावनी कला, सभा एक मत राखनी कला, सभा अवस होनी कला, सभा अचल करनी कला इत्यादि ।

सरदार कर्म सिंह शाहाबादी की अपनी स्वतन्त्र जागीर थी । चूँकि उनको राजनीति के विषय में पर्याप्त ज्ञान नहीं था, इसलिए अनुमानतः युद्धकाल एवं शान्ति-काल में उन्हें अनेक प्रकार की राजनैतिक समस्याओं का सामना करना पड़ा होगा । परिस्थितियों ने जो कुछ उन्हें सिखाया होगा, उसी के आधार पर "नृप धर्म चन्द्रिका" की रचना हुई होगी ।

(ग) कवि कर्म सिंह : शिष्य गुरु भाग सिंह :-

कवि कर्म सिंह के गुरु का नाम भाग सिंह था, इस तथ्य

---

1. डा० देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी, खालसा कालेज, अमृतसर के निजी पुस्तकालय में यह पुस्तक थी, जो डा० विद्यार्थी के अनुसार अब मिल नहीं रही है । उन्होंने एक वार्तालाप में यह सूचना दी है ।

की स्वीकृति कवि की रचनाओं में मिल जाती है यथा -- "इति श्री मत भाग सिंघ चरन सिक्ख करम सिंघेन ---------------------- समाप्त शुभं भवेत ।"[1]

"टोल टोल मै टोल गुरु भाग सिंघ गुरु टोल ।
कर के प्रेम उपदेश मम सिद जड मै गिर ओल ।।"[2]

"ऐसे गुर के पंथ मै, मुझ को लयाए जोड़ ।
बार बार तिह नमो कर, भाग सिंघ गुर सोई ।।"[3]

सरदार कर्म सिंह शाहबादी के साहिब सिंह बेदी, ऊना से बड़े मधुर संबंध थे । यहाँ तक कि बिना किसी स्वार्थ के सन् 1798 ई० में राय कोट के अफगानों के विरुद्ध युद्ध में आपने बेदी जी का साथ दिया ।[4] साहिब सिंह बेदी के एक शिष्य भाग सिंह कुरी वाले[5] (रावलपिंडी) जिनका संबंध निर्मल सम्प्रदाय की उपशाखा नौरंगाबाद से है, प्रसिद्ध निर्मल संत हुए हैं । हमारा अनुमान है कि साहिब सिंह बेदी के माध्यम से यहीं आपकी मुलाकात भाग सिंह जी से हुई होगी और प्रभावित होकर आपने

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्ट सतैया, पुष्पिका देखें ।
2. कर्म सिंह निर्मला : सद्गुरु प्रकाश, छंद संख्या 10.
3. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरवंस चन्द्रोदै, छंदसंख्या 653.
4. एल०एच०ग्रिफिन : द राजाज़ ऑफ द पंजाब, पृ० 79.
5. ज्ञानी मेहर सिंह : नौ रतन, लुधियाना, लाहौर बुक शॉप, 1970 ई०, पृ० 64.

भाग सिंह जी को अपना गुरु बना लिया होगा । भाग सिंह जी को आपका गुरु स्वीकार करने के कुछ अन्य कारण भी हैं –

क महंत गणेशा सिंह जी के मतानुसार ——— "संत भाग सिंह जी सिद्ध पुरख, नाम दे रसिया, सच्चे विरक्त, करामातां दे घर, निर्मल मत दे दृढ़ विश्वासी संत हो गुजरे हैं । आपदे अनेकां सती सेवक राजे, सेठ शाहूकार सन ।"[1] हमारा विश्वास है कि सरदार कर्म सिंह शाहाबादी भी भाग सिंह जी के शिष्य राजाओं में से एक होंगे ।

ख संत भाग सिंह जी का जन्म सन् 1766 ई० तथा देहान्त 1838 ई० में हुआ । सरदार कर्म सिंह शाहाबादी की जन्म तिथि अज्ञात है । सबसे पहले सन् 1759 ई० में आपका उल्लेख ग्रिफिन ने अपनी पुस्तक में किया है ।[2] जहाँ तक इनके देहान्त का संबंध है, सभी इतिहासकारों ने इसका समय सन् 1808 ई० स्वीकार किया है । चूँकि दोनों महापुरुष समसामयिक हैं, इसलिए भी गुरु भाग सिंह जी को इनका गुरु स्वीकार करने में कम ही हिचकिचाहट होती है ।

ग महंत गणेशा सिंह जी ने गुरु भाग सिंह कुरी वाले को "निर्मल मत के दृढ़ विश्वासी संत,[3] स्वीकार किया है । सरदार कर्म सिंह शाहाबादी भी निर्मल संत थे । यह भी भाग सिंह कुरी वाले को सरदार कर्म सिंह जी के गुरु स्वीकार करने का एक कारण हो सकता है।

घ कवि कर्म सिंह जी की रचनाओं में ध्यान, मनन, निदिध्यासन, हठ-योग इत्यादि योग-साधनाओं पर विशेष बल दिया गया है ।

---

1. महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ० 402.
2. एल०एच०ग्रिफिन : द राजाज़ ऑफ द पंजाब, पृ० 70.
3. महंत गणेशा सिंह: निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ०402.

हमारा अनुमान है कि इन पर अपने गुरु भाग सिंह जी की योग-साधना का पर्याप्त प्रभाव था। भाग सिंह जी को अनेक विद्वानों ने योग-साधना में पारंगत स्वीकार किया है। संत दयाल सिंह जी ने गुरु भाग सिंह जी को अणिमा, महिमा इत्यादि अनेक ऋद्धि-सिद्धियों के स्वामी स्वीकार किया है।[1] निहाल सिंह निर्मला लाहौर वाले का भाग सिंह जी के संबंध में मत है ——

"श्री गुरु साहिब सिंघ, भुकति भल मुकति प्रदायक।
योगीपति निज मगन प्रगट गुरु भाग सिंघ जस।
तरब सकति संयुकति विदत गुरु बीर सिंघ तस।
प्रभु सत गुरु श्री यसवंत हरि गाद्दि भूमिका दृतबत।
सुप सब कर चरन सरोज रज भा रूज मेकज कलुख हम।"[2]

महंत गणेशा सिंह जी का कथन है :-

(भाग सिंह जी ने बाबा साहिब सिंह जी बेदी से) "अमृत पान कीता अर दीखया लेके निर्मल मत विखे आ गए। इस मंत्र दे अभ्यासी होके कई चिर ऊने विचच रहे, फिर अजेहे विरकत होए जो वस्त्र तक त्याग दित्ते, अवधूत बिरति विचच मसत होए, गुर मंत्र दे अभ्यासी बने रहे। पूरी विधि योगाभ्यास दी प्रपक्क कर लई।"[3] मेहर सिंह जी के अनुसार ——

---

1. महंत दयाल सिंह : निर्मल पंथ दर्शन (भाग II), पृ० 257.
2. निहाल सिंह निर्मला : श्री जगत गुरु पंथ प्रबोध नाटक (हस्तलिखित ग्रंथ), पृ० 131.
3. महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ० 401.

"बाबा साहिब सिंघ जी ने इकांत
अंदर सबात रूप घोड़े पर सवार
हो के दसम दुआर ते फिर सुन्न
तों महासुन्न ते डेरे अनहद शब्द
त्रिकुटी विचों कुण्डलनी दा झरना
ते अगिड झरनिआं दी फुहार चोंही
पासीं शब्द दी मिठी फुहार दा बरसना
इह इक पातर भाई दया सिंघ जी राहीं
गुरदेव दा दसिआ मार्ग दृढ़ करवाइआ ।"[1]

ग कवि कर्म सिंह : लिपिकार बीर सिंह :-

कवि कर्म सिंह निर्मला की दो कृतियों –"सदसुख प्रकाश" तथा "स्री गुरबंस चन्द्रोदे" की . . . . . से पहली प्रति बीर सिंह जी ने तैयार की थी ।

"बीर सिंघ की बंदना, संतन करो सहाइ ।
जनम मरन मिट जाहि दुख, आपन लेहु मिलाई ।"[2]

"याते प्रथम लखायो, बीर सिंघ ने ग्रंथ ।
जाहि पड़े सुख लहैगो, जो गुर दस को पंथ ।।"[3]

लिपिकार के संबंध में दोनों कृतियों में से नाम के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की कोई सामग्री नहीं मिलती ।

---

1. ज्ञानी मेहर सिंह : नौ रतन , पृ0 64.
2. कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश (पाडुलिपि–ख, छंद संख्या 2.
3. कर्म सिंह निर्मला : स्री गुरबंस चन्द्रोदे,दोहा संख्या 672.

हमारा अनुमान है निर्मल सम्प्रदाय की नौरंगाबादी उपशाखा के छोटे बीर सिंह जी ही इन कृतियों के लिपिकार रहे होंगे ।

कर्म सिंह शाहाबादी का छोटे बीर सिंह जी से संबंध भाग सिंह जी के माध्यम से जोड़ा जा सकता है ।

उपर्युक्त वर्णित कड़ियों के मिलान के आधार पर कहा जा सकता है कि कवि कर्म सिंह निर्मला तथा सरदार कर्म सिंह निर्मला शाहाबादी एक ही व्यक्ति का नाम है ।

3.1 कृतिकार का जीवन परिचय

समय समय पर विद्वान इन्हें विभिन्न विशेषणों से विभूषित करते रहे हैं । कोई पंडित कर्म सिंह निर्मला[1] कहता रहा है, तो कोई साधु कर्म सिंह,[2] कोई कवि कर्म सिंह[3] कहता रहा है तो कोई सरदार कर्म सिंह निर्मला शाहाबादी[4] । यदि सभी के मत सम्मिलित करें तो कवि को "साधु सरदार पंडित कवि कर्म सिंह निर्मल शाहाबादी" कहा जा सकता है । चूँकि कवि एक निर्मला संत थे, इसलिए जीवन से संबंधित सामग्री की कड़ियाँ या अनुपलब्ध थीं या बिखरी पड़ी थीं । हमने यथा सम्भव इन बिखरी

---

1. गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ083.
2. शमशेर सिंह अशोक : निर्मले साधुआं दी सिक्ख धर्म नूं देन, (निर्मल सम्प्रदाय) पृ0 154.
3. डा0 प्रताप सिंह : 18वीं और 19वीं शताब्दी के अमृतसर नगर के कवि, पृ0 79.
4. एल0एच0 ग्रिफिन : द राजाज़ ऑफ द पंजाब, पृ0 70.

कड़ियों को जोड़ने का प्रयत्न किया है । कवि के जीवन परिचय को हमने चार खण्डों में विभाजित किया है :-

3.1.1 पारिवारिक परिचय

सरदारनी जसवंत कौर के मतानुसार जो कि कवि की वंशज हैं, कवि का जन्म जिला अमृतसर के "मनना" नामक ग्राम में हुआ ।[1] ग्रिफिन के अनुसार सन् 1759 ई० में कर्म सिंह निर्मला माझा (ब्यास तथा रावी नदियों के बीच का क्षेत्र) का निवासी था ।[2] जहाँ तक इनकी जन्म-तिथि का संबंध है, साहित्य एवं इतिहास ग्रंथ इस संबंध में मौन हैं । सरदारनी जसवंत कौर के अनुसार ---- एक बार गाँव (मनना) में धर्म प्रचार के लिए कुछ निर्मले संत आए हुए थे । उनके वचनों से प्रभावित होकर बालक कर्म सिंह उन्हीं के साथ संन्यासी होकर गाँव छोड़ कर चले गए । उस समय आपकी अवस्था लगभग आठ-नौ वर्ष की थी ।[3] इतिहास की पुस्तकों में सन् 1759 ई० में पहली बार आपका नाम आया है । यदि लगभग 15 वर्ष भी आपने वैराग्य में व्यतीत किए हों, तो आपका जन्म सन् 1735 ई० के आस पास कहीं पड़ता है । दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि आपका जन्म 18वीं शताब्दी के दूसरे चरण में होने की सम्भावना है ।

---

1. सरदारनी जसवंत कौर . से एक साक्षात्कार, 24-29 दिसम्बर, 1983.
2. एल०एच० ग्रिफिन : द राजाज़ ऑफ द पंजाब, पृ० 80.
3. लेखक का सरदारनी जसवंत कौर से एक साक्षात्कार 24-29 दिसम्बर, 1983.

आपके पितामह का नाम संगत सिंह, पिता का नाम हुकम सिंह तथा माता का नाम दया देवी था। कवि ने अपनी सभी (उपलब्ध) कृतियों में इस तथ्य को स्वीकार किया है, यथा ---

(१) "संगत हरि को तनुज जो, हुकम हरि सोधीर।
तिहँ सुत हरि अदृष्ट जग, भन्यो ग्रंथ ए बीर।।"[1]

"संगत सुत जो हुकम हरि, तिह सुत करम हरि जान।
सद सुख प्रकाश ग्रंथ जो, कीनो ताहि बखान।।"[2]

"भव में भव को जिह मोहि दयो,
नर के तन को फल सोंसु लयो,
हुकमी हरि को मुहि पितृ लखो,
जननी सु दिया सुभ है सु अखो।।"[3]

"इति श्री मत भाग सिंघ चरन सिक्ख करम सिंघने दया हुकम सिंघ आतमयेन विरचते समसया सुभ भवेत।"[4]

---

1. कर्म सिंह निर्मला : ध्रुव धर्म चन्द्रिका, छंद संख्या 38
2. कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, छंद संख्या 90.
3. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुर बंस चन्द्रोदै, छंद संख्या 664.
4. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, पुष्पिका देखें।

बचपन में निर्मले संतों के साथ संन्यासी बन जाने के तथ्य की पुष्टि कवि ने स्वयं भी की है यथा ---

"जनम मात्र धर तासि के, हम हरि को हुइ जान ।
सिख साधन मे बसयो सद, याते ग्रंथ बखान ।"[1]

बचपन से लेकर युवावस्था तक के कवि के जीवन के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं होता, यहाँ तक कि श्री महंत सुच्चा सिंह जी, निर्मल पंचायती अखाड़ा, कनखल भी मौन हैं ।[2]

हमारा विचार है कि यह समय कवि ने पूर्णतः वैराग्य में व्यतीत किया होगा, क्योंकि कवि की उपस्थिति कहीं किसी स्थान पर भी सिद्ध नहीं होती । कमिश्नर एडवर्ड लेक ने अपनी रिपोर्ट में इनकी पत्नियाँ - बैदान कौर, महताब कौर, प्रधान कौर, प्रेम कौर तथा रूप कौर और पाँच पुत्र --- हुम्मन सिंह, शेर सिंह, सुरज सिंह, रणजीत सिंह तथा काहन सिंह स्वीकार किए हैं ।[3]

---

1. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरमत चन्द्रोदै , दोहा संख्या 667.
2. श्री महंत सुच्चा सिंह जी से एक साक्षात्कार, दिनांक 28 दिसम्बर, 1983.
3. एडवर्ड लेक: रिपोर्ट आन द ------------ सेटलमेंट आफ द परगनाज़ फारमेरिली कम्प्राईज़्ड इन द थानेसर डिस्ट्रिक, लाहौर, पंजाब प्रिन्टिंग कम्पनी, 1865 ई०, पृ० 60.

यथा ——

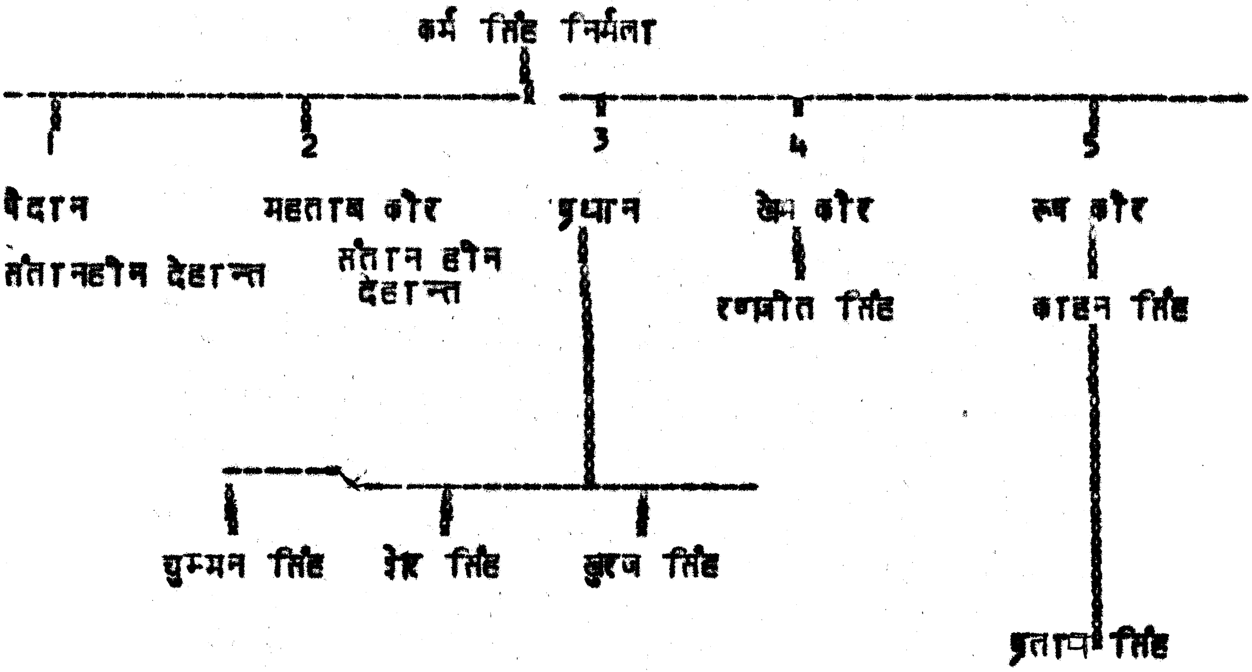

एल0एच0 ग्रिफिन[1] तथा सोहन सिंह सीतल[2] ने रणजीत सिंह, शेर सिंह, खड़क सिंह तथा काहन सिंह नामक चार पुत्र स्वीकार किए हैं ।

सरदार प्रताप सिंह, सरदार धर्म सिंह, सरदार किशन सिंह इत्यादि पौत्रों ने अपने "पारिवारिक-कुर्सीनामे में"[3] कुछ तथ्य अंकित किए हैं यथा सरदार कर्म सिंह निर्मला की पाँच पत्नियाँ थी । मुसम्मात रूप कौर के सरदार काहन सिंह, मुसम्मात प्रधान कौर के सरदार शेर सिंह और सरदार खड़क सिंह, मुसम्मात खेम कौर के

---

1. एल0एच0ग्रिफिन : द राजाज़ ऑफ द पंजाब, पृ0 70.
2. सोहन सिंह सीतल : सिक्ख मिसलाँ ते सरदार घराणे, लुधियाना, लाहौर बुक शॉप, 1979 ई0 पृ0 279.
3. पारिवारिक कुर्सीनामा परिशिष्ट में देखें ।

सरदार रणजीत सिंह, मुसम्मात चेदतान की दुखतर गुलाब कौर और दुखतर इन्द्र कौर तथा मुसम्मात महाँ कौर की दुखतर जिंद कौर और दुखतर नंद कौर पुत्र एवं पुत्रियाँ थी। सरदार कर्म सिंह निर्मला तथा सरदार साहिब सिंह, महाराजा पटियाला आपस में समधी थे। आपके पुत्र खड़क सिंह का विवाह महाराजा पटियाला सरदार साहिब सिंह की पुत्री बीबी प्रेम कौर से हुआ था।[1] महाराजा पटियाला साहिब सिंह जी ने सन् 1808 ई० में दिल्ली के रेजीडेंट को लिखे गए पत्र में स्वयं सरदार कर्म सिंह निर्मला को अपना रिश्तेदार स्वीकार किया है।[2]

शाहबाद मारकंडा (हरियाणा) में दो किले हैं -- किला सिखाँ तथा किला माजरी। चूंकि आपके वंशजों को माजरी वाले सरदार कहा जाता है, इसलिए हमारा अनुमान है कि कर्म सिंह निर्मला अपने परिवार सहित इसी किले में रह रहे होंगे।

3.1.2 धार्मिक परिचय :-

कवि कर्म सिंह का संबंध सिख धर्म की उपशाखा निर्मल सम्प्रदाय से है। बचपन से ही आपकी धार्मिक वृत्ति बहुत प्रबल थी। इसी प्रवृत्ति के कारण बचपन से ही निर्मले संतों के साथ

---

1. एल०एच०ग्रिफिन : द राजाज़ ऑफ द पंजाब, पृ० 11.
2. एल०एच०ग्रिफिन: द राजाज़ ऑफ द पंजाब, पृ० 100.

तीर्थाटन एवं धार्मिक ज्ञान की खोज में घर द्वार त्याग कर निकल गए ।[1]

सन् 1773 ई० में 8800 रुपए की लागत से आपने हरि मन्दिर साहिब की पश्चिमी दिशा में बुंगा शाहजादी का निर्माण करवाया था ।

सन् 1798 ई० में इन्होंने गुरु नानक देव जी के वंशज एवं धार्मिक नेता साहिब सिंह बेदी जी का निःस्वार्थ भाव से रायकोट के अफगानों के विरुद्ध युद्ध में साथ दिया था ।

इनकी चार कृतियों में से तीन का विषय धार्मिक ही है । "हरि अद्रुष्ट सतसैया" में जीव, परमात्मा, मोक्ष, माया, मनन इत्यादि पर विचार प्रकट किए गए हैं । "सद सुख प्रकाश" में शाश्वत सुख हेतु विचार किया गया है । "श्री गुरवंश चन्द्रोदै" में दसों सिख गुरुओं तथा बंदा बहादुर के जीवन पर प्रकाश डाला गया है ।

आपके गुरु संत भाग सिंह, कुरी वाले योग-साधना में निपुण निर्मले संत थे । योग-साधना का आपके साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव अपने गुरु भाग सिंह जी के कारण ही है । गुरु के लिए आपके मन में बहुत आदर भाव था यथा ---

"भाग सिंघ गुर को नमै, याते बारं बार ।
लया के गुरो के पंथ में, चिद को दयो विचार ।"[2]

हम संक्षेप में कह सकते हैं कि कवि कर्म सिंह निर्मला को अपने धर्म के प्रति विशेष आस्था थी, जिसका निर्वाह उन्होंने जीवन पर्यन्त किया था ।

---

1. गणेश सिंह महंत : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख, पृ० 185.
2. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुर बंस चन्द्रोदै, दोहा संख्या 657 .

3.1.3 राजनैतिक परिचय

वैराग्य जीवन से राजनैतिक जीवन में उभर कर आना इनके जीवन में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन है । डा0शमशेर सिंह अशोक केअनुसार ———"श्री दशमेश ते बाबा बंदा बहादुर तों लगभग 40 वरहे पिछों जद पंजाब विचा सिआसी स्तबा बधणा तों सिक्खां दीआं 12 मिसलों काईम होइआं तां कई निरमले साधु निविरती मार्ग छडू के अमली तौर उते, निशान वाली ते शहीदी मिसल जां निहंगा वाली मिसल विच शामिल हो गए । नगर शाहबाद [जिला अम्बाला] दा प्रसिद्ध सरदार कर्म सिंघ निरमला उन्हां ही निरमले जोधिआं विचों इक सी ।"[1] चूँकि श्री दशमेश जी का देहान्त सन् 1708 ई0 तथा बंदा बहादुर की शहादत सन् 1716 ई0 में हुई, इसलिए यह समय सन् 1748 ई0 से लेकर सन् 1756 ई0 के लगभग होना चाहिए । इस तथ्य की पुष्टि ग्रिफिन ने भी की है ——— "कर्म सिंह [आफ शाहाबाद] वाज़ एन इमीग्रैंट फराम मांझा इन 1759"[2] अतः यह निश्चित हो जाता है कि कर्म सिंह निर्मला का राजनीति में आगमन सन् 1748 ई0 से लेकर सन् 1759 ई0 के बीच में कहीं हुआ था ।

निर्मल संत का शाहाबाद मारकंडा[हरियाणा] पर कब्जा कब और कैसे हुआ ? इसी प्रकार के अनेक प्रश्न हमारे मानस पटल पर उभरते हैं । इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए हमें अनेक विद्वानों के मतों का अध्ययन करना पड़ेगा । वित्तीय

---

1. शमशेर सिंह अशोक : निर्मले साधूआं दी सिक्ख धर्म नूं देन [निर्मल सम्प्रदाय], पृ0 156.
2. एल0एच0ग्रिफिन: द राजाज़ आफ द पंजाब, पृ0 70.

कमिश्नर एडवर्ड लेक मे इनके पूरे परिवार का इतिहास बताते हुए लिखा है ---- "दी एनसैसटरज़ ऑफ दी सरदारज़ एण्ड पट्टीदारज़ ऑफ शाहाबाद आर ए पार्ट ऑफ दी निशानाँ मिसल । दिस मिसल और कनफ्छेसी हेड नाइन डिवज़नज़, ऑल ऑफ विच वर अंडर सरदार संधू सिंह, अफ्क दीज़ नाइन डिवज़नज़, सेवन सैटलड़ इन अदर पार्टस ऑफ दीज़ स्टेट्ज़ , प्रिंसिपली ऑफ नाट एनटायरली इन दी लुधियाना डिस्ट्रिक्ट, वन कम टू शाहाबाद, अनदर वैंट टू अम्बाला । दी पार्टी विच टुक शाहाबाद वाज़ अगेन ब्रोकन अप इन टू सेवन पट्टीज़ और सब डिवज़नज़, विच टुक देयर टाईटल आइदर फराम दी नेम आफ देयर लीडरज़ और फराम दी विलेजिज़ फराम विच दे इमीग्रेटड़ , एज़ विल बी सीन फराम दी फौलोविंग टेबल :-

नेम ऑफ चीफ	नेम ऑफ रेज़ीडैंस	नेम ऑफ पट्टी
1. मोहर सिंह		हिम्मत सिंह
2. राम सिंह	थ्रू	थ्रू
3. दसौंधा सिंह	हेर	हेरोवेन
4. सुर्ज सिंह	काला टुलियाँ	सुर्खों
5. सन्तोख सिंह		रंगरटा
6. द्वारा सिंह		द्वारा सिंह
7. दीवान सिंह	रूड़की	रूड़की

दी ओनली एक्सेप्शनस आर पट्टी हिम्मत सिंह एण्ड दी रंगरटा पट्टी । दी लेटर टुक इटस नेम फराम दी कास्ट ऑफ दी कान्करज़, हू वर मैन ऑफ दी लोएस्ट (झीवी , मेहतर और स्वीपर) कास्ट कनवर्टड टू दी सिख रैलिजन ।

मोहर सिंह वाज़ किल्ड बाइ दी रॉयल ट्रूप्स इन 1767 । ही लेफ्ट नो सन् एण्ड वाज़ सक्सीडड बाई हिज़ नेफ्यू कपूर सिंह । ही अपीयरज़ टु हेव बिन ए मेन अन्स्युटेड टु दोज़ ट्रबल्ड टाइमज एण्ड प्रेफरिंग हिज़ ओन कम्फर्ट्स टु दी एक्साईटमेंट ऑफ कमांड एण्ड कम्फिक्ट्स वाज़ डीपेज़ड फराम दी सरदारशिप, एण्ड हिम्मत सिंह ए स्टैंडड बीयरर वाज़ स्लेक्टड टु फिल हिज़ प्लेस । दी पट्टी हेज़ सिंस बोर्न हिज़ नेम । हिम्मत सिंह फैल विद साहिब सिंह इन एक्शन नियर दिल्ली । ही हेड नो सन्, एण्ड वुड हेव बिन सक्सीडड बाई हिज़ नेफ्यू अनूप सिंह, बट भागां, हिम्मत सिंहज़ विडो, हू वाज़ इन पोज़ेशन ऑफ हर हस्बैंडज़ इस्टेट, वुड गिव हिम नथिंग । कर्म सिंह, सरनेमड निर्मला (दी स्पाटलेस), हू वाज़ ए फ्रैंड एण्ड वकील ऑफ हिम्मत सिंह, रिटर्नड फराम एन इम्बैसी टु दिल्ली, भागां गेव हिम फाइव विलेजिज़ , वन ऑफ विच जैनपुर, ही गेव टु दी एक्सक्ल्यूडिड अनूप सिंह । दिस विलेज इज़ नाऊ हेल्ड बाई हिज़ सन हरी सिंह । ही गेव अनदर विलेज़, अऊलताल टु दीदार सिंह, ए फालोवर ऑफ हिम्मत सिंह, विच वाज़ हाऊ एवर रिज़्यूम्ड बाई कर्म सिंहज़ डिसेंडेंटज़ । ही केप्ट थ्री फार हिमसेल्फ । ही अगेन प्रोसीडिड टु दिल्ली, एण्ड आर्मड विद अथार्टी फराम देन्स ही आऊसटिड सरदारनी भागां फराम हर पोज़ेशन, विद दी सक्सेप्शन ऑफ इस्माईलाबाद, विच वाज़ लेफ्ट टु हर फार हर लाईफ एज़ मैन्टेनेन्ज़, एण्ड विच ही आलसो रिज़्यूम्ड आन हर डैथ । दज़ कर्म सिंह, दी फ्रैंड ऑफ दी स्टैंडर्ड बीयरर हिम्मत सिंह, असर्पड

दी होल पोज़ेशन्स आॅफ अनूप सिंह ।"[1]

इसी प्रकार का मत ग्रिफिन का भी है ——————

"कर्म सिंह वाज़ एन एमीग्रेंट फराम माझा इन 1759 । दी शाहबाद डिस्ट्रिक्ट हेड बिन सेज़्ड बाई सेवरल चीफ्स आॅफ निशानां कनफेडरेसी, दी विडो आॅफ वन आॅफ दैम, हिम्मत सिंह, गैव टू कर्म सिंह फाईव विलेजिज़ । इन रिटर्न फार दिस काईडनैस, कर्म सिंह ओबटेन्ड ए ग्रांट आॅफ हर होल इस्टेट फराम दिल्ली, एण्ड आउसटेड हर फराम आॅल बट दी विलेज आफ़ इस्लामाबाद । दिस कंडक्ट स्केर्सली एग्रीड विद हिज़ एनोमन आॅफ "निर्मला" और स्पारटैंस ।"[2]

लैक तथा ग्रिफिन अंग्रेज इतिहासकारों ने दोष लगाया है कि कर्म सिंह निर्मला ने बलपूर्वक माई भागां का राज्य छीन लिया, परन्तु इसके विपरीत अन्य विद्वानों के मत कुछ इस प्रकार हैं । सोहन सिंह सीतल के अनुसार —— "मिसल निशानां दा बानी सरदार दसौंधा सिंघ (गाँव मनसूर, जिला फिरोज़पुर) गिल जट्ट सी । उसने दीवान दरबारा सिंघ तो अमृत छकिया सी । उसदा जथा दल खालसे दे अग्गे निशान साहिब[3] (केसरी झंडा) लै के चलिया करदा सी । जद मिसलां बनियां, तां सरदार दसौंधा सिंघ दी मिसल दा ना निशानां वाली मिसल पै गया । सिखा दीयां बहुत सारियां

---

1. एडवर्ड लैक: रिपोर्ट आन द —— सैटलमैंट आफ़ द परगनाज़ फारमैरिली कम्प्राइज़्ड इन द थानेसर डिस्ट्रिक्ट, पृ0 59-60.
2. एल0एच0ग्रिफिन राजाज़ आॅफ द पंजाब पृ0 70.
3. इस झंडे का लौह दंड अभी तक शाहबाद मारकंडा (हरियाणा) में गुरुद्वारा झंडा साहिब में सुरक्षित है (चित्र के लिए परिशिष्ट देखिए) बैसाखी के मेले के अवसर पर प्रत्येक वर्ष इसे दर्शनार्थ निकाला जाता है ।

मुहिमां विच इस मिसल नाल रही । जद सरहिंद दे जैन खां नूं मार के सिंघा ने इलाके मल्ले, तां इस मिसल ने हेठ लिखे इलाकियां उत्ते कब्जा कर लिया - अम्बाला, बोह, बाबयाल, पंजखोर, खिडबा, शहाबाद, लिद्दड़ा, सराय लशकरी खां, सिंघा वाला, साहने वाल, दो राहा, सौंती, जीरा, सुधड़ , ठेडी, इस्माईलाबाद, मनसूरवाल आदि । अम्बाला मिसल दी राजधानी बनाया गया ।

सरदार दसौंधा सिंघ जमना पार के इक हमले विच मारिया गया (सन 1765-66 ई०) तां उसदा भरा संगत सिंघ मिसलदार बना । उस अम्बाला दी हकूमत गुरबख्श सिंघ नूं दे के आप सिंघावाला (जिला फिरोजपुर) विच आ बसा । जिथे सन् 1774 ई० नूं स्वर्गवास हो गया, उसदे पुत्र अजे बालक सन, सो जागीर दा सरपरस्त सरदार ध्यान सिंघ होया ।[1]

सैयद मुहम्मद लतीफ के अनुसार ध्यान सिंह , संगत सिंह का साला था ।[2] इसी ध्यान सिंह ने गुरबख्श सिंह से अम्बाला का अधिकार वापिस लेने के लिए आक्रमण भी किया, परन्तु असफल रहा ।[3]

हमारा अनुमान है कि यह वही ध्यान सिंह है, जिसने शाहाबाद का सारा क्षेत्र कर्म सिंह निर्मला के नाम लिख दिया था । हमारे इस मत की पुष्टि ज्ञानी ज्ञान सिंह[4] तथा महंत गणेशा सिंह[5]

---

1. सोहन सिंह सीतल : सिख मिसलां ते सरदार घराणे, पृ० 91-92.
2. सैयद मुहम्मद लतीफ : हिस्ट्री ऑफ द पंजाब, नई दिल्ली, यूरेशिया पब्लिशिंग हाउस, 1964 ई०, पृ० 369.
3. ज्ञानी ज्ञान सिंह : तवारीख गुरू खालसा, पटियाला, भाषा विभाग पंजाब, 1970 ई०, पृ० 273.
4. ज्ञानी ज्ञान सिंह : निर्मल पंथ प्रदीपका, पृ० 68.
5. महंत गणेशा सिंह : निर्मल भूषण अर्थात इतिहास निर्मल भेख पृ० 83.

दोनों ने अपने अपने निर्मल पंथ के इतिहास में की है । इसी वारिसनामें के बल पर कर्म सिंह निर्मला ने दिल्ली से हुकुमनामा लाकर शाहबाद मारकंडा पर कब्जा किया होगा ।

सरदार सोहन सिंह सीतल ने भी कर्म सिंह निर्मला को ही हिम्मत सिंह का उत्तराधिकारी स्वीकार किया है । "सरदार हिमंत सिंघ निशानां वाली मिसल विचों सी । पैन खाँ दे मरन उत्ते उहने शाहबाद उत्ते कब्जा कर लया । उह सन् 1771 ई० विच स्वर्गवास हो गया, तां उसदा भतीजा कर्म सिंघ उसदा मुतबंना ते जायदाद दा मालिक बनिया ।"[1]

सरदार कर्म सिंह ने वंशजों के "पारिवारिक कुर्सीनामे"[2] का मत उन मतों से अलग है--- "सम्वत 1821 अर्थात सन् 1764 ई० में सरदार कर्म सिंह दादा हमारा मुल्क मांझा से आया और सम्वत् 1828 [अर्थात सन् 1771 ई०] में जंगों जदल करके बजोरे शमशीर खुद फतह पाकर परगना शाहबाद व थानेसर व लाडवा व रोपड़ पर कब्जा और दखल अपना किया ।[3]

विद्वानों के उपर्युक्त विचारों के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :-

1. कर्म सिंह निर्मल का संबंध निशानों वाली मिसल से था । आज भी शाहबाद में किला सिखों के गुरुद्वारे में निशानों वाली मिसल का प्राचीन झंडा विद्यमान है, जिसके दर्शन बैसाखी के दिन प्रतिवर्ष

---

1. सोहन सिंह सीतल : सिख मिसलां ते सरदार घराणे, पृ० 279.
2. पारिवारिक-कुर्सीनामा परिशिष्ट में देखें ।
3. सरदारनी जसवंत कौर से एक साक्षात्कार, दिनांक 24-29 दिसम्बर, 1983.

जन-साधारण को करवाए जाते हैं । इस झंडे का चित्र
संलग्न है ।

2. अनूप सिंह की अपेक्षा संत कर्म सिंह निर्मला का शाहाबाद मारकंडा पर अधिक अधिकार था क्योंकि ----

क एडवर्ड लैक के अनुसार वह हिम्मत सिंह का मित्र तथा वकील था ।

ख मोहन सिंह सीतल के अनुसार वह हिम्मत सिंह का भतीजा तथा मुतबंना (वारिस) था ।

ग ज्ञानी ज्ञान सिंह तथा महंत गणेशा सिंह के अनुसार उसके पास सरदार ध्यान सिंह द्वारा दिया गया वारसनामा विद्यमान था ।

घ वह "जंगों जदल में बजोरे शमशीर का प्रयोग जानता था ।

3. संत कर्म सिंह निर्मले का शाहाबाद मारकंडा पर कब्जा सन् 1771 ई० में हिम्मत सिंह के स्वर्गवास के बाद हुआ ।

मोहन सिंह सीतल के अनुसार ----------

"30 मार्च, 1785 ई० नूं मरहट्टियां वल्लों अम्बाजी ते सिक्खां वल्लों सरदार बघेल सिंघ, सरदार कर्म सिंघ, दुलचना सिंघ, भाग सिंह , दीवान सिंघ, मेहर सिंघ ने दोसती दा अहमदनामा कीता।" इसदी वड्डी शर्त इस सी कि सिक्खा दिल्ली सरकार दे इलाके विच लुट्टमार नहीं करेंगे ते दिल्ली सरकार सिक्खां नूं दस लाख सालाना नज़राना दिया करेगी ।"[1]

इसी प्रकार कुछ अन्य इतिहासकारों ने भी कर्म सिंह से संबंधित छोटी-छोटी घटनाओं का उल्लेख किया है ।

सन् 1789 ई० में करनाल से लौटते समय प्रतिकूल राजनैतिक परिस्थितियां बन जाने के कारण पटियाला राज्य के दीवान

---

1. मोहन सिंह सीतल : सिक्ख मिसलां ते सरदार घराणे, पृ० 104.

नानूमल ने कर्म सिंह निर्मले के पास शाहाबाद में आश्रय लिया ।[1] ग्रिफिन ने भी नानूमल के शाहाबादी सरदार कर्म सिंह निर्मले के पास आश्रय लेने के तथ्य की पुष्टि की है ।[2]

एन0के0 सिन्हा के मतानुसार 3 नवम्बर, 1791 ई0 में 7-8 हजार सिखों को लेकर भंगा सिंह, कर्म सिंह तथा दूसरे सरदारों ने यमुना पार करके गौसगढ़, मेरठ अन्तर्वेदी को लूट दिया ।[3] हरी राम गुप्ता ने भी इसी समय की एक घटना का उल्लेख किया है ---- "कर्म सिंह निर्मला , भंगा सिंह, दीवान सिंह एण्ड अदरज़ वर रैवेजिंग दी कंटरी ऑफ राम कान्हा ।"[4]

सन् 1798 ई0 में गुरु नानक देव जी के वंशज साहिब सिंह बेदी जी ने रायकोट के अफगानों के विरुद्ध मुहिम चलाई थी । इस युद्ध में बुधा सिंह फैजलपुरी के साथ सरदार कर्म सिंह निर्मला ने भी इस युद्ध में निःस्वार्थ भाव से भाग लिया ।[5]

सन् 1798 ई0 में ही पटियाला, नाभा, जींद इत्यादि के सरदारों के साथ शाहाबादी सरदार कर्म सिंह निर्मला ने भी जार्ज थॉमस का डटकर मुकाबला किया । ग्रिफिन के अनुसार बाद में

---

1. सोहन सिंह सीतल : सिक्ख मिसलां ते सरदार घराणे, पृ0 143.
2. एल0एच0ग्रिफिन : द राजाज़ ऑफ द पंजाब, पृ0 70.
3. एन0के0सिन्हा : राइज़ ऑफ द सिख पावर, पृ0 93.
4. हरि राम गुप्ता : हिस्ट्री ऑफ द सिक्खज़ (भाग III) पृ0 140.
5. एल0एच0ग्रिफिन : द राजाज़ ऑफ द पंजाब, पृ0 179.

वह भाग गया +— "कर्म सिंह "दी स्पाटलैस" §निर्मला§ वाज़ आलसो एक्यूज्ड ऑफ हैविंग अक्सेप्टिड 5000 रूपए फराम धामस टु सेट द एक्ज़ाम्पल ऑफ रनिंग अवे बराइवड और नाट, ही सर्टनली रन अवे विद ग्रेटेस्ट अलाक्रिटी ।"[1]

चूँकि पटियाला की बीबी साहब कौर ने नाभा की सेना के सिपाहियों को मेहतर कहा था, इसलिए सिख सेनाओं में आपसी फूट पड़ चुकी थी । हमारा अनुमान है कि कर्म सिंह निर्मला ने ऐसी परिस्थितियों में युद्ध में भाग न लेना ही उचित समझा होगा और वह अपनी सेना सहित वापिस लौट गया होगा ।

सन् 1807 ई0 में जब महाराजा रणजीत सिंह ने दूसरी बार सतलुज नदी को पार करके मालवा के सरदारों से नज़राने लिए, तो तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों से समझौता करते हुए कर्म सिंह निर्मला ने भी नज़राना देकर अपनी जागीर की रक्षा की । इस तथ्य को ज्ञानी ज्ञान सिंह[2], सैयद मुहम्मद लतीफ़,[3] डा0 गोपाल सिंह,[4] जी0एस0छाबड़ा,[5] नरेन्द्र कृष्ण सिन्हा[6] आदि अनेक इतिहासकारों ने स्वीकार किया है ।

दिल्ली दरबार के ब्राऊनी के अनुसार कर्म सिंह निर्मला शाहाबादी की सेना में 750 घुड़सवार तथा 250 पैदल सिपाही थे ।[7]

---

1. एल0एच0ग्रिफिन : द राजाज़ ऑफ द पंजाब, पृ0 83.
2. ज्ञानी ज्ञान सिंह :तवारीख गुरु खालसा, पृ0 308.
3. सैयद मुहम्मद लतीफ : हिस्ट्री ऑफ द पंजाब पृ0 369.
4. डा0 गोपाल सिंह : ए हिस्ट्री ऑफ द सिख पीपल, पृ0458.
5. जी0एस0छाबड़ा : एडवांस्ड हिस्ट्री आफ द पंजाब §भाग II§ पृ0 87.
6. नरेन्द्र कृष्ण सिन्हा : रणजीत सिंह, कलकत्ता, ए0मुकर्जी, 1960ई0, पृ0 23.
7. नरेन्द्र कृष्ण सिन्हा : राईज आफ द सिख पावर, पृ0 61.

कर्म सिंह निर्मले की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों के पास सेना कम रह गई । ग्रिफिन ने शेर सिंह, अटक सिंह, रणजीत सिंह जोकि स्वर्गीय कर्म सिंह निर्मला के पुत्र थे, के पास सन् 1809 ई0 में 250 घुड़सवार तथा 150 पैदल सैनिक स्वीकार किए हैं । इसके अतिरिक्त उनकी जागीर का मूल्य 65000/- रुपए वार्षिक बताया है ।[1]

सरदार कर्म सिंह निर्मला की जागीर बहुत बड़ी थी उसके देहान्त के बाद यह जागीर कम होती गई । सरदार धर्म सिंह, सरदार किशन सिंह तथा सरदार प्रताप सिंह स्वर्गीय कर्म सिंह निर्मला के पौत्रों की जागीर में रतनगढ़, धर्म गढ़ , किशन गढ़, गुमटी, मगरह, टांगी, टांगा, ईसर गढ़, औलसाल, सुन्दरगढ़, राम गढ़, अकाल गढ़, बजू मल्ली, मलकुमला, सुल्तानपुर, हरोडा, केहर मडोह, कारना गढ़, कोलापुर, शादीपुर, टोडा बड़े, बहादुर पुरा, सालोला, बबाई खुर्द, मीयाली कलां, गोरीपुरा, राम नगर सरशा, राये, सागड़ा, मोसीपुर, कहतल, कलाल पुरा, कामकरा, राम नगर, सामड़ा, तारे इत्यादि स्थान शामिल है ।[2]

16 मार्च, सन् 1808 ई0 (संवत् 1865) में कर्म सिंह निर्मला का देहान्त हो गया ।[3]

3.1.4 साहित्यिक परिचय :-

गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी -साहित्य में संत कवि कर्म सिंह निर्मला का विशिष्ट स्थान है । आप बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न थे, इसलिए इनके साहित्य में भी अनेक साहित्यिक विशेषताएं लक्षित होती है । जहाँ एक ओर "श्री गुरु बंस चन्द्रोदै" मेंकवि का सिख इतिहास संबंधी तथ्यों का ज्ञान तथा "नृप धर्म चन्द्रिका" में

---

1. एल0एच0ग्रिफिन : द राजाज़ आफ द पंजाब, अन्तिका -10
2. पारिवारिक कुर्सीनामा : परिशिष्ट में देखें ।
3. वही

राजनैतिक चातुर्य दिखाई देता है, वहाँ दूसरी ओर कवि की "हरि अदृष्ट सतसैया" में भारतीय वेदान्त दर्शन के प्रति आस्था तथा "सद सुख प्रकाश" में सद्य सुख अर्थात मोक्ष प्राप्ति की आकांक्षा उभर कर आई है । अब तक कवि की कुल चार कृतियाँ प्रकाश में आई हैं —

(क) हरि अदृष्ट सतसैया
(ख) नृप धर्म चन्द्रिका
(ग) सद सुख प्रकाश
(घ) श्री गुरु वंश चन्द्रोदै

इससे पूर्व कि उपर्युक्त कृतियों का अध्ययन किया जाए, कवि के काल तथा कृतियों के काल पर विचार करना तर्क संगत प्रतीत होता है । यह कहा जा चुका है कि कवि का देहान्त 16 मार्च, सन् 1803 ई० में हो गया था, लेकिन कवि की उपलब्ध चारों कृतियों का रचना काल (लिपि-काल) बाद का दिया गया है । यदि कवि के व्यक्तिगत जीवन पर भरपूर दृष्टि डालें, तो हमें ज्ञात होता है कि इनका सम्पूर्ण जीवन राजनैतिक , धार्मिक संघर्षों में व्यतीत हुआ । इनको अपनी रचनाओं की प्रतिलिपियाँ तैयार कराने का अवसर नहीं मिला होगा । इसी संबंध में हमारी मान्यता यह है कि जिसने भी इन कृतियों की प्रतिलिपियाँ तैयार की, उसने निश्चित रचना-काल ज्ञात न होने के कारण प्रतिलिपि तैयार होने के समय को ही ग्रंथ का रचना-काल लिख दिया है । हम अपनी इस मान्यता की पुष्टि कवि की ही एक कृति "श्री गुरु वंश चन्द्रोदै" से उद्धृत दोहों से कर सकते हैं यथा ——

"बीर बीर मै बीर हरि, हम को रूप बताइ ।
गुर सु बंस चन्द्रोदै, कथ कर मुझै सुनाइ ।।
याते ग्रंथ लखायो, बीर सिंघ मै ग्रंथ ।
याहि पढ़ै सुख लहैगो, जो गुर दस को पंथ ।।"[1]

"अथ ग्रंथ समाप्त प्रकरण" के अन्तर्गत आने वाले इन दोहों से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते है ---

(क) कृति के लिपिकार का नाम बीर सिंह है ।

(ख) बीर सिंह जी को कह कर (पढ़कर) यह कृति सुनाई गई थी ।

(ग) बीर सिंह जी ने पहली बार इस ग्रंथ की प्रतिलिपि तैयार की ।

उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि लिपिकारों द्वारा कवि की अन्य कृतियाँ ---- "सद सुख प्रकाश" (लिपिकार- बीर सिंह), "नृप धर्म चन्द्रिका" (लिपिकार -अज्ञात), "हरि अष्टक सतैया" (लिपिकार - अज्ञात) के निश्चित रचना काल अज्ञात होने के कारण पाडुलिपियाँ तैयार होने के काल को इनमें लिख दिया गया है । कवि का देहान्त सन् 1808 ई0 में हो गया था । अतः "सदसुख प्रकाश" का रचना - काल 1864 ई0, "नृपधर्मचन्द्रिका" का रचनाकाल 1847 ई0 तथा "श्री गुरबंस चन्द्रोदै" का रचनाकाल 1864 ई0 कैसे हो सकता है ? ये सूचित वर्ष वस्तुतः इन प्रतियों के लेखन काल को सूचित करते हैं । अतएव इनका रचना काल सम्भवतः 18वीं शताब्दी का मध्य भाग या इसका अन्तिम चरण रहा होगा ।

3.1.4.1 नृप धर्म चन्द्रिका (प्रतिलिपिकाल 1847 ई0)

कवि कर्म सिंह निर्मला कृत "नृप धर्म चन्द्रिका" 18वीं शताब्दी की राजनीति-विषयक कृति है । इस कृति की एक मात्र

---

1. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुर बंस चंद्रोदै, दोहा संख्या 671-672.

पांडुलिपि डा० देवेंद्र विद्यार्थी जी के निजी संग्रह में उपलब्ध थी, परन्तु गुरु नानक देव विश्वविद्यालय से अवकाश प्राप्त करने के बाद जब उनका सामान पुश्तैनी घर पटियाला जा रहा था, तो मार्ग में हुई एक बस दुर्घटना में यह कृति कहीं खो गई। यह सूचना मुझे डा० विद्यार्थी जी से साक्षात्कार[1] करते हुए प्राप्त हुई है। इस कृति से संबंधित सामग्री अब एक मात्र पुस्तक डा० प्रताप सिंह के शोध प्रबंध -- "18वीं और 19वीं शताब्दी के अमृतसर नगर के हिन्दी कवि" में ही उपलब्ध है।

"नृप धर्म चन्द्रिका", जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, में यह बतलाया गया है कि राजा का धर्म अथवा नीति कैसी होनी चाहिए। कवि के जीवन वृत्त से ज्ञात होता है कि उनका जन्म गांव के साधारण परिवार में हुआ था। अपनी शक्ति एवं बुद्धि के बल पर उसने अपनी छोटी सी रियासत बना ली थी। यह अनुमाननीय है कि अपनी रियासत में कवि को अनेक राजनैतिक समस्याओं का सामना करना पड़ा होगा। आदर्श राजा भगवान राम की राजनैतिक नीतियों को आधार बनाकर कवि ने अपनी राजनैतिक समस्याओं का समाधान प्राप्त करने का विचार किया होगा। बाद में दूसरे नृपों की सहायता के लिए कवि ने उन सब राजनैतिक नीतियों एवं धर्मों को लिखित रूप प्रदान किया और इस प्रकार "नृप धर्म चन्द्रिका" का प्रणयन हुआ। ऐसा मेरा निजी अनुमान है। कवि ने अपने एक दोहे में इस तथ्य को आंशिक रूप से स्वीकार भी किया है ------

"यां ही ग्रंथ जो है बन्यो, तां हित कर के जान।
जो जो नृप या को धरै, सो सो हुवै सुख खान।।"[2]

---

1. डा० देवेंद्र सिंह विद्यार्थी जी से एक साक्षात्कार, 21 जून, 1984.
2. कर्म सिंह निर्मला : नृप धर्म चन्द्रिका, छंद संख्या 9.

कवि ने एक अन्य स्थल पर अपनी इस कृति का उद्देश्य और भी स्पष्ट कर दिया है ——

"नृप धर्म चन्द्रिका, याहि ग्रंथ को नाम ।
नर चकोरावलोक को, सो याहि सुख को धाम ।।"[1]

कृति का आरम्भ कवि ने "ओंकार सतिगुर प्रसादि । गणेशायनमः ।।" कहते हुए पारम्परिक विधि से किया है । कृति के नायक भगवान राजा राम चन्द्र जी हैं । कवि ने इस तथ्य को "ग्रंथ मत कथन" के अन्तर्गत स्वीकार किया है ——

"बड़े बड़ेव जग भूप जो, भए सुधि अति सोइ ।
तिहँ भूपन के भूप सिर, बड़े राम ही जोइ ।।
रीति नीति सो राम की, अति ही विपुल बखान ।
कछुक भनो समास कर, मन बुधि सुधि हित मान ।।"[2]

अर्थात संसार में अनेक राजा और उनसे भी बड़े अनेक महाराजा हुए हैं, परन्तु राजा राम उन सबसे बड़े हैं । इसीलिए राजा राम की नीति अत्यन्त विस्तृत एवं विशाल है । इस विस्तृत एवं विशाल नीतियों में से कुछ को विवेकपूर्वक संक्षिप्त करके कवि ने इस ग्रंथ में कहा है । कवि ने सुनकर तथा समझकर ही राम-नीति को स्वीकार किया है ——

"आई जो मम मन सुनी, गुन हों सोई बात ।
राम नीति नित चित्त भजो, तो हो विघ्न विनास ।।"[3]

---

1. कर्म सिंह निर्मला : नृप धर्म चन्द्रिका, छंद संख्या 5.
2. वही , छंद संख्या 6-7.
3. वही , छंद संख्या ।

अर्थात् राजा राम की नीति हृदय में धारण करने से सब विघ्न-बाधाएं दूर हो जाती हैं। राजा राम की नीतियों की अनुपस्थिति में अन्य सभी नीतियाँ रीति-हीन हो जाती हैं यथा ——

"नीति रीति अविरोतिमय, बिना राम है कोइ।
यों ते जोई ताहि भ्रम, ता मो किम् नहीं सोइ।"[1]

सब सारों में से राम भजन ही सबसे बड़ा सार है ——
"यही सार मो सार है, राम भजन ही सार।
जो इहि अति ही भजेगो, सो सब भय से सार।।"[2]

किसी भी नृप की सफलता मुख्यतः उसकी राजनैतिक नीति पर आधारित होती है और राजनैतिक नीति एक कला है। कवि ने अपनी कृति में इसी प्रकार की 16 कलाओं का वर्णन किया है ——

1. सभा साधनी कला
2. सभा एक मत राखनी कला
3. सभा अचल होनी कला
4. सभा अचल करनी कला
5. हृदय धन संचिनी कला
6. सर्वगुनी राखनी कला
7. निज गुण गोपनी कला
8. निज बीर गोपनी कला
9. गन उपचार कर शत्रु जीतनी कला

---

1. कर्म सिंह निर्मला : नृप धर्म चन्द्रिका, छंद संख्या 4.
2. वही , छंद संख्या 2

10. शत्रु क्षयापिनी कला
11. सावधानिनी कला
12. उदारनी कला
13. सुदानी कला
14. शरण पालनी कला
15. सत्य व्रतभिनी कला
16. त्यागिनी कला

किसी भी राजा में वीरता का गुण होना अत्यंत आवश्यक है । युद्ध में राजा की अनुपस्थिति से सेना शीघ्र ही हतोत्साहित अथवा थक जाती है ——

"अतल वितल लोक लोकन, को छाड जाहिं
जाहिं सुन नायक दरन को दबक दबक ।
सुना याँहि खंड में अखंडन की खंड कर
हरे सुख टरे नाहि करे डंड तबक तबक ।
और कहीं किन माहिँ सुरपति आदि सुर
करे ताँ को व्रत सम सुर ही से धकधक ।
बिना रघुपति ताहिँ माधव की हाथ कौन
दासन को काट सेना रही अति धक धक ।।"[1]

राजा के निजी गुणों के संबंध में कवि का कथन है ——

"गन गुनीन को गुनं गह वो सोभा सद राम ।
सो नर गुन गुन गहेगो जो जप सिह अठ जाम ।।
वेदें को वेद कर वेदे को छेद कर
भेदह को भेद कर गनना गहत है ।
अस्त्र को जान कर युद्ध को पहचान कर
नीति तंत्र गह छट तंत्र को चहत है ।

---

1. कर्म सिंह निर्मला : नृप धर्म चन्द्रिका, पृ० 13.

तंत्र मंत्र यंत्र को मानकर नीकी विधि
पर न को धारिनो को अति ही महत है ।
कर्म मग्रिद जब राम . . . . . . अनुबंध होइ
नृप ऐसो वैसो काव्य में कहत है ।।"[1]

राजा न्यायधीश का कार्य भी करता है, इसलिए उसमें न्यायशीलता का गुण भी होना आवश्यक है ——

"स्वान पुन विप्र हूं को करयो है अदल जाहिं
और हूं को अनेक जाहिं याह धार धर ।
नृप आदि बृपा कर अशुभ ते शुभ करें
धरे पुन पुण को आठ दाय कर कर ।
जाहिं नाम सुनत ही दुतन को हटि यम
दूर दौर जाय जा ही धरा अति डार डर ।
ताहि राम की शरन गहो सुनो गुनो अब
दुक्ख जो बीतों पीतों ताके ताहिं . . . कर कर ।।"[2]

राजा के लिए मंत्री बहुत महत्वपूर्ण होता है, मंत्री के संबंध में कवि का कथन है ——

"जब जब सुरपति दुख लहत, तब तब ब्रहस्पति टार ।
तां बिन कोई टारि सक, ऐसे मंत्रि विचार ।।"[3]

दोष होने पर भी राजा को चाहिए कि वह अपने कर्मचारियों को जीवन-दान दे ——

---

1. कर्म सिंह निर्मला : नृप धर्म चन्द्रिका, छंद संख्या 1-2
2. वही ,पृ0 6
3. वही , छंद संख्या 25.

"कूप मेंडक बक मोर पिक, जल सों नृप ह्वै जान ।
ता अति आशा ताहिं की, भरे या दे जीवन दान ।।"[1]

राजा को मित्रों से भी प्रेम करना चाहिए, यथा ——

"सकल कला की कलाधर, मित्रन सों कर प्रीति ।
जिहिं सन कर अति वृद्ध कै, वर्द्ध सु गण र नीति ।।"[2]

कवि ने अबला अर्थात नारी को प्रबल स्वीकार किया है——

"कहा न पावक जार सक, का न समुद्र समाय ।
का न करै अबला प्रबल, किहि जग काल न खाय ।।"[3]

इन सब गुणों के होने के बावजूद भी राजा में विचारों की स्वतंत्रता का गुण होना आवश्यक है——

"त्रिया पुत्र मित्र पुन, मंत्री चाकर कोइ ।
नृप काहू बस होय मत, मत को मतसर होइ ।।"[4]

राजा और प्रजा दोनों को अपने अपने धर्म का पालन करना चाहिए । यदि वे दोनों धर्म-च्युत होते हैं, तो फिर हानि ही हानि है ——

"नृप प्रजा जो परस्पर, होइ अधर्मी जानि ।
होय पाप मय धरा सो, तो किम नाहिं होई हानि ।।"[5]

---

1. धर्म सिंह निर्मला : नृप धर्म चन्द्रिका, छंद संख्या 6.
2. वही , छंद संख्या 18
3. वही , छंद संख्या 14
4. वही , छंद संख्या 9
5. वही , छंद संख्या 17.

कवि ने कहीं कहीं अपने मत को स्पष्ट करने के लिए "वचनिका" नाम से गद्य का भी प्रयोग किया है —— "इस और और ग्रंथन के कवित्त आदि होंगे । वां कवित्त आदि मों कवि को नाम होइगो तां को अन्य को करि ना लिखैं । जा मै नाम नहीं होइगो ता को अन्य को करि लिखैं ।"[1] कवि ने अपनी कृति में अनेक अन्य कवियों के छंद उद्धृत किए हैं, इस तथ्य को स्वीकार करना कवि की ईमानदारी का परिचायक भी है और संग्रह -ग्रंथों की परम्परा का अनुपालन भी है । कृति के अन्त में कवि ने नायक भगवान राजा राम से प्रार्थना की है कि उसे अन्य भक्तों की भाँति मुक्ति प्रदान की जाए ——

"जान के अनाथ अति तारे हैं अनेक राम
तारो हमें बेर तब तारन को बेर है ।
तारयो है तु हाथी जा को साथी तज गए सब
यह सुता टेर सुन तारी बिन देर है ।
अहल्या तारी भिल्लिनी तारी तारयो ही गीध
पुन तारे और पापी नहिं कोनी अवसेर है ।
कर्म हरि बेर कीजो करेगो अबेर ए तो
पतित पावन मों परे फेर फेर है ।।"[2]

कवि ने इस कृति में प्रश्नोत्तर शैली का भी प्रयोग किया है । मुख्यतः दोहा, कवित्त इत्यादि छंदों का प्रयोग हुआ है । कहीं कहीं झूलना, कुण्डलिया इत्यादि छंद भी प्रयुक्त हुए हैं ।

3.1.4.2 <u>सद सुख प्रकाश (प्रतिलिपि काल 1864 ई0)</u>

भारतीय वेदांत दर्शन से प्रभावित 18वीं शताब्दी के गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी-साहित्य में "सद सुख प्रकाश" का एक विशिष्ट स्थान है । आलोच्य कृति की दो पांडुलिपियां

1. कर्म सिंह निर्मला : सुध धर्म चन्द्रिका, पृ0 2.
2. वही , छंद संख्या 34

उपलब्ध हैं । संत बीर सिंह जी द्वारा तैयार की गई पांडुलिपि {"क" प्रति} अन्य पांडुलिपि {"ख" प्रति} की तुलना में अधिक प्राचीन प्रतीत होती है ।

"क" प्रति का विवरण :- यह पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ के पुस्तकालय {एम०एस०एस०- 498} में उपलब्ध है । इसके कुल 71 पृष्ठ हैं जिनमें से पृष्ठ 38 तथा पृष्ठ 39 अनुपलब्ध हैं । प्रत्येक पृष्ठ के दोनों ओर लिखा गया है तथा प्रति पृष्ठ लगभग 16 पंक्तियां है । पृष्ठ का आकार 18 x 23 वर्ग सें०मी० तथा पृष्ठ पर लिखित सामग्री का क्षेत्र 13 x 16 वर्ग सें० मी० है । प्रयुक्त कागज़ मुलायम हल्के पीले रंग का है । काले रंग की स्याही से लिखित पांडुलिपि पर सुन्दर गहरे लाल रंग की जिल्द है । पांडुलिपि में कुल 799 दोहा, कवित्त इत्यादि छंद प्रयुक्त हैं । पांडुलिपि का लिपिकार अज्ञात है । पांडुलिपि की वर्तमान स्थिति संतोषजनक है ।

"ख" प्रति का विवरण :- यह पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के पुस्तकालय {क्रमांक 115132} में उपलब्ध है । इस पुस्तकालय में आने से पूर्व यह प्रति भाई कान्ह सिंह नाभा पुस्तकालय, त्रिवेणी भवन, नाभा में विद्यमान थी ।[1] कुल 77 पृष्ठ हैं और पांडुलिपि अपने आप में पूर्ण है । प्रत्येक पृष्ठ के दोनों ओर लिखा गया है । अधिकांश पृष्ठों पर 10 पंक्तियां तथा कुछ पृष्ठों पर 9 पंक्तियां हैं । पृष्ठ का आकार 25 x 14.5 वर्ग सें० मी० तथा पृष्ठ पर लिखित सामग्री का क्षेत्र 18 x 10 वर्ग सें० मी० है । प्रयुक्त कागज़ मोटा {देसी} है । काली स्याही से लिखित पांडुलिपि के पृष्ठ खुले हैं, जिल्द नहीं है । पांडुलिपि में कुल 800 छंद है । पांडुलिपि के लिपिकार संत बीर सिंह जी हैं । पृष्ठ खुले होने के कारण इस प्रति की स्थिति नाजुक है ।

---

1. भाषा विभाग पंजाब {पटियाला} : पंजाबी हथ्थ लिखतां दी सूची, पृ० 161.

इस कृति को रचने का कवि का उद्देश्य शाश्वत सुख अथवा मोक्ष प्राप्ति है । "अथ ग्रंथ नाम" के अन्तर्गत कवि का कथन है ——

"अगद सुखन को छडयो पद, सद सुख को पद जोड ।
सद सुख प्रकास ग्रंथ को, नीके पड है सोइ ।।"[1]

इतना ही नहीं, अपनी इस कृति के संबंध में कवि का कथन है कि "सद सुख प्रकाश" के अध्ययन से कोई भी [मनुष्य] सदैव सुख अर्थात मोक्ष को प्राप्त करके ब्रह्मवत् हो सकता है ।

कृति का आरम्भ कवि ने पारम्परिक-विधि अर्थात ईश-स्तुति से किया है । एक ओंकार सत्य स्वरूप ब्रह्म के प्रति अपना आदर-भाव प्रकट करते हुए गणेश-वन्दना के साथ ग्रंथ का आरम्भ किया गया है । सिक्ख धर्म के प्रवर्तक श्री गुरु नानक देव तथा निर्मल सम्प्रदाय के संस्थापक दशम गुरु गोविंद सिंह जी द्वारा प्रतिपादित मार्ग में कवि ने अपना विश्वास प्रकट किया है । अपने हृदय की गांठ खोलने का श्रेय कवि ने अपने गुरु भाग सिंह जी को दिया है ——

"टोल टोल मै टोल गुरु, भाग सिंघ गुरु टोल ।
करके प्रभ उपदेस मम, चिद जड मै गिर खोल ।।"[2]

आलोच्य कृति की विषय-वस्तु छः अध्यायों में विभाजित है ——

3.1.4.2.1 आत्म साधन निरूपण

3.1.4.2.2 आत्म विवेक निरूपण

---

1. कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, छंद संख्या 12.
2. वही , छंद संख्या 10.

3.1.4.2.3 माया अविद्या में ब्रह्माण्ड, पिंड, ईश्वर तथा जीव निरूपण

3.1.4.2.4 साक्षी – तत्व–परम्परा–एकता निरूपण

3.1.4.2.5 प्रमा ज्ञान निरूपण

3.1.4.2.6 अप्रमा, जीवनमुक्ति, विदेह अवस्था निरूपण

3.1.4.2.1 आत्म–साधना निरूपण :-

सदैव सुख अथवा मोक्ष प्राप्ति के लिए हमें कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सभी साधन जीव के आत्म अथवा स्वयं में ही विद्यमान हैं । कवि ने स्वयं में विद्यमान साधनों का ही निरूपण इस अध्याय में किया है । आत्म साधनों की पहचान के लिए जीव में जिज्ञासा का होना अनिवार्य है । आरम्भ में जिज्ञासा उत्पन्न होती है, जिज्ञासा की सन्तुष्टि के लिए जीव कर्म के मार्ग पर अग्रसर होता है । कर्म कैसे होने चाहिए ? इस संबंध में कवि ने "हरि अष्टक सतसैया" के एक दोहे को उद्धृत किया है ——

"बरनाश्रम के करम जो, रज हर ते सो जान ।
साते धोवै पाप रज, पुन मन हरि मै ठान ।।"[1]

अर्थात वर्णाश्रम में किए गए कर्म जल के समान हैं जिनके द्वारा धूल रूपी पापों को धोकर अपना चित्त हरि में लीन किया जा सकता है । हरि में मन अथवा चित्त को लीन करने के लिए उपासना की भी आवश्यकता होती है । उपासना के संबंध में कवि का मत है ——

"धूव प्रहलाद की साखि सुनि हरी राम जब गीत ।
अजा मेल सर गनक तरि, हरि को धारि चीत ।।"[2]

---

1. कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, छंद संख्या 16.
2. वही , छंद संख्या 24.

जिस प्रकार ध्रुव , प्रहलाद, अजा, गणिका ने हरि को चित में धारण किया था, उसी प्रकार जीव को भी उठते, बैठते, बोलते समय हरि को चित्त में धारण किए रहना चाहिए । हरि को चित्त में धारण किए रहना ही उपासना है । कवि ने शाश्वत सुख प्राप्ति के लिए चार प्रमुख साधनों का वर्णन किया है----

(क) वैराग्य

(ख) विवेक

(ग) षट् संपत्ति

(घ) मुमुक्षता

जब जीव को अपने दोषों का ज्ञान हो जाता है और उनका त्याग कर देता है, तभी वैराग्य की उत्पत्ति होती है । सम्पत्ति, यौवन, पिता-पुत्र आदि के प्रति अनुराग इत्यादि सभी सुख क्षणिक हैं और ये सब दुःखों का मूल हैं । इन सब दोषों का त्याग करके ही वीतराग हुआ जा सकता है । संक्षेप में कह सकते हैं कि त्याग ही वैराग्य है । कवि का कथन है ------

"विराग सरूप त्याग है, बेडा सो है सोई ।
भवनिधि मे जिम डूब सो, पावत जाही होइ ।।"[1]

दूसरा आत्म-साधन विवेक अर्थात् बुद्धि है । सत्य, संतोष और क्षमा के बिना विवेक का कोई अर्थ नहीं है । असत् सुख के त्याग, इच्छा के त्याग तथा सद् सुख अथवा मोक्ष की चाह से ही विवेक धीरे धीरे प्रबल होकर सत्य की खोज में अग्रसर होता है ।

तृतीय आत्म-साधन षट् संपत्ति के अन्तर्गत कवि ने उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्व फल, अर्थवाद, उपपत्ति का उल्लेख किया है । जगत का उपक्रम तथा उपसंहार ब्रह्म से होता है ।

---

1. कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, छंद संख्या 57.

अभ्यास के द्वारा ब्रह्म की खोज की जा सकती है । जब अभ्यास में दृढ़ता आ जाती है, तो उसे अपूर्वता कहते हैं । ब्रह्म फल है तथा इस फल की प्राप्ति को अर्थवाद कहते हैं । इस संबंध में कवि का मत है ——

" ए ही अभ्यास भयो जब ही दृढ़ तो ही अपूरबता करि जानो ।
पूरब नाहि अनूरब है अति ब्रह्म को जो निसचै करि मानो ।।
ब्रह्म की प्रापति है फल सो सुन और न ही कोई दूसर मानो ।
ऐसे कह्यो सुरीया फल सो सब पंडित जो अर्थवाद बखानो ।।"[1]

उपपत्ति अद्वैत ब्रह्म को ही कहा गया है और जो जीव उस अद्वैत का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह स्वयं उसी स्वरूप का हो जाता है ।

चतुर्थ आत्म साधन मुमुक्षता अर्थात मोक्ष की इच्छा है । श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन के द्वारा मोक्ष की इच्छा उत्पन्न की जा सकती है । इस अध्याय के अंत में कवि ने आठ आत्म साधनों — वैराग्य, विवेक, श्रवण, मनन, निदिध्यासन इत्यादि को महत्वपूर्ण बतलाया है ।

3.1.4.2.2 आत्म विवेक निरूपण

स्वयं का ज्ञान ही आत्म- विवेक है । आत्म ही सत्य है, अनात्म अथवा अन्य कुछ भी सत्य नहीं है । जब इस तथ्य का विवेक हो जाता है, तो सब दुःख दूर हो जाते हैं । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इत्यादि विषयों का त्याग आत्म-विवेक के लिए

---

1. कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, छंद संख्या 85.

अनिवार्य है । आत्म अथवा चिद् का स्वरूप प्रेममय है यथा ———

"परम प्रेम सारूप चिद, भिन्न प्रेम नहि कोइ ।
को मे कोई हित करे, निज हित करि है सोइ ।।"[1]

अर्थात् चिद् प्रेम स्वरूप है और चिद् प्रेम के अतिरिक्त अन्य कोई भी प्रेम नहीं है । दूसरे का हित करने से स्वयं का हित हो जाता है । जीव के आत्म अथवा चिद् के स्वरूप के बाद कवि ने ब्रह्म के अद्वैत रूप का भी निरूपण किया है ———

"सत चित आनंद स्वरूप स्वप्रकास जाको,
सम सब ही के हर अंतर रहत है ।
अचल अखंड अज अक्रिय अनंत,
अत अद्भुत इंद्री मन न गहत है ।
निर बिकार निरधार निर विकलप निराकार,
कूटस्त निर गुन निरंतु लहितु है ।
ऐसे ब्रह्म को माने देह को अभिन्न जाने,
पंडत स्याने ग्यान याही को कैहत हैं ।।"[2]

जो सत चित आनंद स्वरूप , स्वयं से प्रकाशमय और जिसके समान सबके हृदय में अन्तर रहता है, अचल, अखंड, अक्रिय, सीमा रहित, अत्यंत अद्भुत, रूप रहित, इन्द्रियों तथा मन की पहुंच से दूर है, विकास रहित, आधार रहित, विकल्प रहित,

---

1. कर्म सिंह निर्मला : सद सुधा प्रकाश , छंद संख्या 17.
2. वही , छंद संख्या 29.

आकार रहित, कूटवत्, निर्गुण, शाश्वत है, ऐसे ब्रह्म को मानना चाहिए । तथा शरीर को अनित्य जानना चाहिए । विद्वान इसी को ज्ञान अथवा विवेक कहते हैं ।

जब जीव को ऐसा आत्म-विवेक जाता है तो वह तटस्थ अवस्था को प्राप्त होता है । तटस्था की स्थिति में जाति, देह, पिता-माता इत्यादि के प्रति मोह समाप्त हो जाता है । माया-छाया तथा भय का भी जीव पर कोई प्रभाव नहीं होता ।

3.1.4.2.3 माया, अविद्या, ब्रह्माण्ड, पिंड, ईश्वर तथा जीव का निरूपण :-

माया तथा अविद्या दोनों ही आत्म-ज्ञान के मार्ग में बाधाएँ हैं । माया से प्रभावित जीव छल को देखकर भी अनदेखा कर जाता है यथा ----

"छल प्रपंच माया कर्यो, या ते छलमय लेख ।
सुर नर तिरय नदी त्रिकुछ, देखा देख न देख ।।"[1]

माया के प्रपंच से वही जीव बच सकता है, जिसके लिए छल एवं प्रपंच का कोई अर्थ न हो, अर्थात् प्रभाव न हो ।

"अविद्या" का अर्थ है आत्म-विवेक का अभाव । कवि का अविद्या के संबंध में कथन है ----

"आतम विद्या नाह जो, सोई अविद्या आहि ।
लखा आतम लखाइ नह, तम कर छा दे ताहि ।।"[2]

अर्थात् आत्म विद्या का अभाव ही अविद्या है । अविद्या की अवस्था में स्वयं को देखने पर अन्धकार की ही छाया दिखाई देती है ।

---

1. कर्म सिंह निर्मला : सद सुखा प्रकाश, छंद संख्या 10.
2. वही , छंद संख्या 13.

भारतीय वेदांत-दर्शन के अनुसार तीन गुण — सत, रज, तम होते हैं। सत गुण से ही आत्म-ज्ञान होता है ——

"सत गुन ते उद ग्यान हुइ, भावत करयो बखान।
ताते ही सुभ करम हुइ, ता बिन पसु पठान।।"[1]

रजो गुण लोभ को जन्म देता है, इसलिए कोई भाग्यवान जीव ही इससे बच सकता है। तम गुण के कारण तो जीव आत्म ज्ञान के संबंध में सोच भी नहीं सकता।

इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि कैसे हुई ? इस संबंध में कवि ने सांख्य दर्शन के पंचीकरण सिद्धान्त में अपना विश्वास प्रकट किया है——

"प्रथमै पांचो तत्त है जोइ।
एक एक के दो दो होइ।
याते दस ही भए सु चीने।
मुख्य पांच सब भिन्न कर लीने।।
रहे पांच ताके करि बीसा।
चार चार करि कै पृथीसा।
पांचों मुख्य में बीस मिलाए।
पंचीकरन इम भए सुहाए।।"[2]

कवि के अनुसार जीव का पिंड अर्थात् शरीर दो प्रकार का है ——

(क) स्थूल पिंड
(ख) सूक्ष्म पिंड

कवि के मतानुसार आत्म ज्ञान के लिए स्थूल पिंड का अस्तित्व होना अनिवार्य है ——

---

1. कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, छंद संख्या 19.
2. वही , छंद संख्या 119.

"बिना थूल तन बिन ब्रह्मंड,
भोगै भोग किम जीव अखंड ।
करमन फल किम देह जु ईस,
पिंड ब्रह्मंड तातै कर दीस ।।"[1]

स्थूल पिंड के अस्तित्व के अभाव में जीव आत्म ज्ञान प्राप्ति के लिए शुभ कर्म करने में असमर्थ होगा । अतः स्थूल पिंड के बिना जीव ब्रह्म से एकाकार नहीं हो सकता । स्थूल पिंड की उत्पत्ति पाँच मूलभूत तत्वों — जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश से हुई है । "पंच भूत थूल तन कारन"[2] कहकर कवि ने उपर्युक्त मत की पुष्टि की है ।

भारतीय वेदान्त दर्शन के अनुसार जीव की दस इन्द्रियाँ— कर्म इन्द्रियाँ तथा ज्ञान इन्द्रियाँ हैं । कर्म इन्द्रियों के अन्तर्गत हाथ, पाँव, मुँह, गुदा तथा लिंग आते हैं, जबकि ज्ञान इन्द्रियों के अन्तर्गत आँख, कान, नाक, जिह्वा तथा स्पर्श आते हैं । वेदान्त दर्शन के अनुसार शरीर के विभिन्न भागों में विद्यमान वायु को प्राण वायु कहा जाता है । प्राण वायु पाँच प्रकार की होती है ——

(क) प्राण (हृदयदेश में स्थित वायु)
(ख) अपान (गुह्यदेश में स्थित वायु)
(ग) समान (नाभिदेश में स्थित वायु)
(घ) उदान (कंठदेश में स्थिति वायु)
(ङ.) व्यान (सम्पूर्ण शरीर में स्थित वायु)

सूक्ष्म पिंड के संबंध में कवि के उपर्युक्त विचार वेदान्त दर्शन से प्रभावित है ——

---

1. कर्म सिंह निर्मला : सद गुरु प्रकाश, छंद संख्या 110.
2. वही , पृ0 30.

"पंच प्राण इन्द्री दसं, मन बुधि पुन मान ।
इन सत्रह को ग्रंथ जो, सो सूक्ष्म तन जान ।।"[1]

अर्थात् पाँच प्राण वायु, दस इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि के योग से ही सूक्ष्म तन अथवा पिंड की रचना होती है ।

3.1.4.2.4 साखी-तत्व-परम्परा-एकता निरूपण

ब्रह्म जीव से भिन्न नहीं है यह साखी नई नहीं है । वेद तथा अन्य श्रुतियाँ आरम्भ से ही इस तथ्य का प्रतिपादन करती आई हैं । जीव और ब्रह्म के पारस्परिक संबंध में कवि ने "अहं ब्रह्मास्मि" के सिद्धान्त का अनुमोदन किया है यथा ——

ब्रह्म रूप निज को लखो, लखो द्रिष्ट सम पूर ।
ए कहनो द्रिड होइ जब, तबो होइ सुख मूर ।।"[2]

जब जीव को यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि ब्रह्म को स्वयं में ही पाया जा सकता है, तो जीव को सुख प्राप्त होता है । एक अन्य स्थल पर भी कवि ने स्वीकार किया है कि ब्रह्म अमृत के समान शाश्वत, विकल्प रहित, आकार रहित, नाश रहित है और जीव में ही शोभित है ।

जगत और ब्रह्म के संबंध में कवि का कथन है ——

"जग को कारन ब्रह्म , तासे भिन्न जब नाह ।
तीन जीव तीन ईश जो, एको चिद की बाह ।।"[3]

क्योंकि जगत ब्रह्म के कारण ही है, इसलिए यह उससे अलग नहीं हो सकता । यहाँ तीन प्रकार के जीव है, तीन प्रकार के

---

1. कर्म सिंह निर्मला: सद सुख प्रकाश, छंद संख्या 68.
2. वही , छंद संख्या 17
3. वही , छंद संख्या 23.

ईश्वर {कर्ता-विष्णु, पालक-ब्रह्मा, संहारक-शिव} हैं और यह सब एक ही चिद् अथवा ब्रह्म की इच्छा के कारण हैं । इस जगत रूपी सागर से पार उतरने के लिए कवि का कथन है ——

"उपासना ग्यान कांड वेद को प्रमान जान,
तीनो मतो भिन्न कैसे एको गाइ है ।
ना ही भेद जानो परंपरा एको ही बखानो,
बुधि सुधि थिर करि अभेद मे लगाइ है ।
ऐसे ही विचार करि मन मे अखंड धर,
अखंडाकार वृत्ति करि श्रेय सो पाइ है ।
क्रम हरि बार बार अभ्यास जहाज धार,
पार हुइ भवनिधि नाहि भव आइ है ।।"[1]

अर्थात् वेद के कर्म, उपासना तथा ज्ञान तीनों कांडो में एक ही ब्रह्म को स्वीकार किया गया है । परंपरा के अनुसार

ब्रह्म एक ही है । अपनी बुद्धि को अभेद ब्रह्म में केन्द्रित करके, मन में ब्रह्म के अखंड रूप को धारण करके अखंडवृत्ति द्वारा ही उस श्रेष्ठ ब्रह्म को पाया जा सकता है । इस युक्ति के अभ्यास से जीव इस जगत् रूपी सागर से पार उतर जाता है अर्थात् ब्रह्म से एकाकार हो जाता है और उसे इस जगत में फिर नहीं आना पड़ता ।

3.1.4.2.5 प्रमा ज्ञान निरूपण :-

परम ज्ञान का साधारण अर्थ है शुद्ध अथवा भ्रम रहित ज्ञान । किन्तु परम ज्ञान के संबंध में कवि का कथन है ——

---

1. कर्म सिंह निर्मला : सद सुधा प्रकाश, छंद संख्या 90.

"बोध सहित स्थिति जो, स्थिति सहित जो बोध ।
सो प्रमा दो प्रकार की, ईश जीव की सोध ।।"[1]

अर्थात् विवेक सहित ध्यान अथवा सुरति और ध्यान सहित विवेक ही प्रमा है । यह दो प्रकार का है —— ईश प्रमा और जीव प्रमा । जगत की उत्पत्ति का ज्ञान ईश प्रमा के अन्तर्गत आता है । वेदान्त दर्शन के "एकोऽहं बहुस्याम्" सिद्धान्त का कवि ने समर्थन किया है ——

"जब उतपति से पूरब जान । हुत ईश संकल्प महान ।।
एको मै हुइ जाउं अनेक । कहि औ अनेक पुन टेक ।।"[2]

विषय में अज्ञान, अंतःकरण में ध्यान और ध्यान में ब्रह्म प्रतिबिंब हो, वह जीव प्रमा है ——

"अविद्य मान जो विषै मै, अतहंकरन स्थिति होइ ।
तामै चिति प्रतिबिंब सो, जीव प्रमा है सोइ ।।"[3]

कवि ने "जगन्मिथ्या", "अहं ब्रह्मास्मि" आदि शंकराचार्य के मतों का अनुमोदन किया है ——

"जग तो मिथ्या है सही, यामै हूं अनुमान ।
दुई दुइ याको धरैगो, सो तो दुइ दुख खान ।।"[4]

ज्यों-ज्यों जीव को यह विवेक होता जाता है कि यह जगत मिथ्या है, त्यों त्यों उसके सुख में वृद्धि होती जाती है ।

---

1. कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, छंद संख्या 6.
2. वही ,छंद संख्या 8.
3. वही , छंद संख्या 9.
4. वही , छंद संख्या 69.

3.1.4.2.6 अप्रमा, जीवन्मुक्ति, विदेह अवस्था निरूपण :-

जो प्रमा से भिन्न है, वही अप्रमा है । यह दो प्रकार की है — स्मृति और अनुभूत । संस्कार जन्य ज्ञान स्मृति है । स्मृति से भिन्न ज्ञान अनुभूत है । अनुभूत से कवि का अभिप्राय अनुभव से प्राप्त ज्ञान है । स्मृति दो प्रकार की है —— यथार्थ स्मृति और अयथार्थ स्मृति । इन दोनों के भी आगे आत्म तथा अनात्म दो उप भेद होते हैं । विवेक द्वारा तत्वों का चिंतन आत्म यथार्थ स्मृति है । सूखी हुई मिट्टी के समान यह जगत् मिथ्या है । इस तथ्य का ज्ञान ही अनात्म यथार्थ स्मृति है । सत्य के स्मरण द्वारा अर्जित असत्य संसार का ज्ञान अनात्म अयथार्थ स्मृति है । तन, मन, इन्द्रियों आदि पर आत्म चिन्तन द्वारा अर्जित ज्ञान आत्म अयथार्थ स्मृति है ।

अनुभूत ज्ञान दो प्रकार का है —— यथार्थ तथा अयथार्थ । यथार्थ अनुभूत के अन्तर्गत आत्म का अनुभव अर्थात् अनुभव द्वारा स्वयं के बारे में अर्जित ज्ञान आता है । अयथार्थ अनुभूत ज्ञान —— संशय तथा निश्चय दो प्रकार का है । चिद् में उत्पन्न संशय दो प्रकार के होते हैं — प्रमाणगत तथा प्रमेयगत । जिसके प्रमाण विद्यमान हों, उस संशय को प्रमाणगत कहते हैं जैसे ब्रह्म अद्वैत है , इसका प्रमाण हमें वेदों से मिलता है । हालांकि ब्रह्म एक है, फिर भी वह विभिन्न रूपों में मिलता है । उस आनंद स्वरूप तथा चिद् स्वरूप के गुणों को पहचानना ही प्रमेयगत संशय को दूर करना है । कवि के मतानुसार मनन और तर्क द्वारा सब प्रकार के संशयों को दूर किया जा सकता है —

"मनन तरक से होत है, सभ संसन को नास ।
सचपण यां को भेलो, जो अद्विसट हरिदास ।।"[1]

---

1. कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश , छंद संख्या 20.

अयथार्थ अनुभव का दूसरा भेद निश्चय है । कवि संशय को ज्ञान का सबसे बड़ा शत्रु मानता है और निश्चय के द्वारा ही ज्ञान को पहचाना जा सकता है ——

"सतु संसै ग्यान को, जोई ग्यान पछान ।
निसचा सोई जानिये, एउ दो विधि जान ।।"[1]

निश्चय भी दो भागों में विभाजित है —— यथार्थ निश्चय तथा अयथार्थ निश्चय । संशय के दूर होने से धीरे धीरे अज्ञान का नाश होता है , आत्म ज्ञान से चित् में लीनता आती है और जीव ब्रह्म से एकाकार होने की ओर अग्रसर होता है । कवि ने स्वीकार किया है कि भ्रमों की हानि से ही सच्ची मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है ——

"ब्रह्म तु प्रापत ही गुनो, कहो मुकति किम होइ ।[2]
सतत मुकति इ ही लखो, भ्रम हत प्रापति जोइ ।।"

समाधि के संबंध में कवि का मत है कि अपनी वृत्ति को दृढ़ निश्चय से अद्वैत ब्रह्म में स्थित करना ही समाधि है । ब्रह्म की प्राप्ति में समाधि अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । कवि ने समाधि के अन्तर्गत राज-योग तथा हठ-योग दोनों का उल्लेख किया है ।

मुक्ति के संबंध में यों भी कहा जा सकता है कि भ्रम और अज्ञान को दूर करके विवेक द्वारा जो स्वयं में विद्यमान ब्रह्म को पहचान लेता है और अपने ध्यान को उसी में स्थित कर लेता है, वही जीवन मुक्त है । जहाँ तक विदेह होने का प्रश्न है, वह तो मृत्यु के बाद ही देह का त्याग हो सकता है ।

इस अध्याय के अंत में कवि ने "अथ कवि निरूपण" के अन्तर्गत ब्रह्म के संबंध में अपने अन्तिम निश्चय का निरूपण किया है ——

---

1. कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, छंद संख्या 31.
2. वही , छंद संख्या 83.

"याते याह मुक्त होइ केवल लैय होहि,
जामै तामै नाह भेद को सो सुखधाम है ।
याही मैं सु लीला तनु धार करी लीला सार,
देह मै देही होई विराम सो विराम है ।
जाही को महा प्रकाश प्रकाशनि मैं प्रकाशै,
जाको पुर्ब सतुर ते करि देसटा ग्राम है ।
करम सिंघ नमो नमो कर सुताही को,
जाही को भनो सु वेद रमन ते राम है ।।"[1]

उपर्युक्त कवित्त से कवि ने देह सहित अवतार में अपना विश्वास प्रकट किया है । कृति के अन्त में कवि ने अपने गुरु, माता, पिता के प्रति अपना आदर भाव भी प्रकट किया है ।

"सद गुण प्रकाश" की लिपि तो गुरुमुखी है, परन्तु भाषा मुख्यतः ब्रज है । कवि ने पंजाबी , संस्कृत, अरबी, फारसी के शब्दों का भी यथा स्थान प्रयोग किया है । कवि ने प्रश्न-उत्तर शैली को अपनी कृति में अपनाया है । कवि का प्रयत्न शिष्य के माध्यम से प्रश्न और गुरु के माध्यम से उनका उत्तर अथवा समाधान देने का रहा है । यह शैली शंकराचार्य ने "प्रश्नोत्तरी" में अपनाई थी । कवित्त, दोहा, चौपाई छंदों का मुख्य रूप से कवि ने प्रयोग किया है । सोरठा, सवैया, पादकुलक, कुण्डलिया छंद भी यदा-कदा प्रयुक्त हैं । अलंकारों में रूपक , उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि के प्रति कवि को विशेष लगाव रहा है । सारांश में कवि की भाषा संस्कृत -निष्ठ हिन्दी है ।

3.1.4.3 श्री गुरु बंस चंद्रोदै (प्रतिलिपिकाल 1866 ई०)

सिख धर्म के इतिहास की दृष्टि से कवि कर्म सिंह निर्मला कृत "श्री गुर बंस चंद्रोदै " 18वीं शताब्दी की एक उत्कृष्ट कृति है ।

---

1. कर्म सिंह निर्मला: सद गुण प्रकाश, छंद संख्या 178.

कवि ने इस कृति में सिख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक देव जी से आरम्भ करके खालसा एवं निर्मल पंथ के संस्थापक अन्तिम गुरु गोबिंद सिंह जी तक से संबंधित ऐतिहासिक, पारिवारिक अथवा सामाजिक, धार्मिक तथ्यों का निरूपण किया है। चूंकि कवि ने इस कृति में अपनी अन्य तीनों कृतियों को अनेक स्थानों पर उद्धृत किया है, इसलिए यह कृति कवि की अन्तिम एवं प्रौढ़तम कृति प्रमाणित हो जाती है।

इसके लिपिकार बीर सिंह के अनुसार "कथ कर" (कह कर) इस कृति को सुनाया था। पहली बार बीर सिंह जी ने ही इसकी प्रतिलिपि को विधिवत् ढंग से लिखा था। बीर सिंह द्वारा लिखित प्रति आजकल गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर के पुस्तकालय (एम०एस०एस०-345) में उपलब्ध है। यह प्रति गुरु नानक देव विश्वविद्यालय में 28 फरवरी, 1979 ई० को पहुंची और पुस्तकालय में इसका मूल्य 350/- रुपये आंका गया है। 100 पृष्ठों की इस पांडुलिपि की स्थिति अच्छी है। शीर्ष लेख, छंद नाम, छंद संख्या अधिकांशतः लिखने के लिए लाल स्याही तथा शेष के लिए काली स्याही का प्रयोग हुआ है। हाशिया लाल रंग की स्याही से बना है। पृष्ठ का आकार 25 x 17 वर्ग से०मी० है। और प्रत्येक पृष्ठ पर लगभग 19 पंक्तियां हैं। "हरि अष्टुट सतसैया" की पाण्डुलिपि की भांति इस पांडुलिपि में भी कश्मीरी तथा मुलायम कागज प्रयुक्त हुआ है। यह कृति 10 अध्यायों में विभाजित है। प्रत्येक अध्याय में एक गुरु महाराज के जीवन परिचय एवं उनकी धार्मिक विचारधारा पर प्रकाश डाला गया है। इस कृति में कुल 1431 छंद हैं।

3.1.4.3.1 <u>प्रथम गुरु निरूपण :-</u>

कवि ने कृति का आरम्भ एक ओंकार सत्य स्वरूप गुरु की स्तुति से किया है। कृति को देखकर अथवा पढ़कर सिखों के दुख संताप

---

1. कर्म सिंह निर्मला: श्री गुरु बंस पद्रोदे, दोहा संख्या 672 (पृ० 100)

दूर हो जाएं, यही इस कृति को लिखने का कवि का मूल उद्देश्य है ---

"गुर सु बंस चंद्रोदै जानो । याहि ग्रंथ को नाम बखानो ।
सिख चकोर अवलोक के जब ही । तपत सोक को हते सु तब ही ।।"[1]

"गुरु महिमा निरूपनं" के अन्तर्गत कवि ने गुरु के महत्व को स्वीकार किया है ---

"गुर दाता गुर हिवै घरू, गुर दीपकु तिह लोइ ।
अमर पदारथु नानका, मनि मानिऐ सुख होइ ।।"[2]

अर्थात् गुरु दीपक है, इसलिए उसे हृदय में धारण करना चाहिए ताकि हृदय में लौ अर्थात ज्ञान का प्रकाश हो । अमर पदार्थ मन में मानने से ही सुख होता है ।

चूंकि कवि निर्मला पंथ का संत था, इसलिए हिन्दू धर्म का उस पर पर्याप्त प्रभाव था । कवि ने गुरु नानक देव जी को सूर्यवंशी भगवान राम चन्द्र जी का वंशज माना है । कवि के मतानुसार भगवान राम के पौत्र हंसकेतु तथा पारिजात में बहुत भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें पारिजात को पराजय का सामना करना पड़ा । पारिजात विरक्त होकर बनारस जाकर वेदों का अध्ययन करने लगा । पारिजात के वंशजों को वेदों का पर्याप्त ज्ञान था, इसलिए वे बेदी कहलाए । गुरु नानक देव जी का जन्म बेदी कुल में हुआ था । इस प्रकार कवि ने गुरु नानक देव जी को सूर्यवंशी प्रमाणित किया है । गुरु नानक देव जी का जन्म संवत् 1526 (सन् 1469 ई0) में तलवंडी (ननकाना साहिब) में कालू राम बेदी के घर हुआ ।[3] संवत् 1544 (1487 ई0) में

---

1. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरु बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 16.
2. वही , छंद संख्या 10
3. वही , छंद संख्या 58

बटाला निवासी मूलचंद की पुत्री सुलखनी का विवाह गुरु जी से सम्पन्न हुआ।[1] कवि को तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों का भी पर्याप्त ज्ञान था। कवि ने गुरु जी के विवाह प्रसंग में दहेज अथवा लेन-देन का भी उल्लेख किया है ----

"लैन दैन तहि भयो विसाले, विदया हुइ मिल आए आले।
कछक काल बतियो असे, भयो नानकी भ्रमहीं जैसे।।"[2]

संवत् 1551 (1494 ई0) मे गुरु जी के घर उदासी संत श्री चंद जी का जन्म हुआ।[3] दूसरे बालक लक्ष्मी दास का जन्म संवत् 1553 (1496 ई0) में हुआ।[4]

गुरु नानक देव जी के मूलमन्त्र के माध्यम से कवि ने ब्रह्म के स्वरूप का अंकन किया है ---

"। ओं सतिनाम करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि।
सचु आदि सचु जुगादि सचु है भी
सचु नानक होसी भी सचु।।"[5]

संवत् 1596 (1539 ई0) में गुरु जी ने अपनी देह का त्याग किया।[6] कवि के मतानुसार गुरु जी ने 69 वर्ष 10 मास 10 दिन आयु भोग कर इस संसार से विदा ली।[7] परन्तु कान्ह

---

1. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरु वंश चंद्रोदै, छंद संख्या 83.
2. वही , छंद संख्या 86.
3. वही , छंद संख्या 88.
4. वही , छंद संख्या 90.
5. वही , छंद संख्या 116
6. वही , छंद संख्या 192
7. वही , छंद संख्या 187.

सिंह नाभा के अनुसार गुरु जी की कुल आयु 70 वर्ष 4 महीने 3 दिन थी।[1] इस अध्याय के अन्त में कवि ने भवनिधि पार करने के लिए गुरु जी से अनुरोध किया है ——

"श्री गुर नानक को नमो, पुना पुना मम मान।
भव सागर ते तरन हित, कर हौं अब हो ध्यान ।।"[2]

3.1.4.3.2 द्वितीय गुरु निरूपण :-

गुरु अंगद देव जी का जन्म संवत् 1561 (1504 ई०) में मते की सराय निवासी फेरू मल खत्री तथा दया कौर के घर हुआ।[3] संवत् 1576 (1519 ई०) में आपका विवाह खीवी देवी से सम्पन्न हुआ।[4] संवत् 1581 (1524 ई०) में बाबा दासू जी,[5] संवत् 1589 (1532 ई०) में बीबी अमरो जी,[6] संवत् 1592 (1535 ई०) में बीबी अनोखी जी[7] तथा संवत् 1594 (1537 ई०) में बाबा दातू जी[8] का जन्म हुआ।

गुरु अंगद देव जी का आरम्भिक नाम "लहणा" था। लहणा जी देवी भक्त थे। देवी-दर्शन के लिए जाते हुए एक बार करतारपुर में गुरु नानक देव जी के दर्शन हो गए। वे गुरु नानक देव जी की विचार धारा से प्रभावित होकर वहीं रहने लगे। गुरु नानक देव जी ने लहणा जी की सेवा से प्रसन्न होकर उनको अपना शिष्य

---

1. कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ० 693.
2. धर्म सिंह निर्मला : श्री गुरु बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 209.
3. वही , छंद संख्या 11, 12, 13, 22.
4. वही ; छंद संख्या 16.
5. वही , छंद संख्या 17.
6. वही , छंद संख्या 18.
7. वही , छंद संख्या 19
8. वही , छंद संख्या 20.

बनाया और नाम अंगद रख दिया ----

"निज अंगद की सकत दे, अंगद राख्यो नाम ।
याते अंगद गुर क्यो, याते हुइ सुख धाम ।।"[1]

गुरु अंगद देव जी ने ब्रह्म के संबंध में अपना मत स्पष्ट किया है ----

"मिलिऐ मिलिआ न मिलै, मिलै मिलिआ जे होइ ।
अंतर आतमै जो मिलै, मिलिआ कहीऐ सोइ ।।"[2]

संवत् 1609 (1552 ई0) में गुरुअंगद देव जी ने अपनी देह का त्याग किया ।[3] कवि के मतानुसार 47 वर्ष 11 मास 8 दिन की आयु होकर गुरु जी ने इस संसार से विदा ली ।[4] भाई कान्ह सिंह नाभा जी के अनुसार गुरु जी ने 47 वर्ष 11 मास 29 दिन आयु भोगी ।[5] कवि का मत लगभग औचित्यपूर्ण ही है । संवत् 1639 (1582 ई0) में माता खीवी जी का देहान्त हुआ था ।[6]

कवि अपार ज्ञान की कामना करता हुआ गुरु जी से प्रार्थना करता है ----

"महाराज गुर दीजीऐ , मुझ को ग्यान बिसाल ।
लख गझ मय चिद अनल, से जारों भ्रम जाल ।।

---

1. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरु बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 32.
2. वही , छंद संख्या 50.
3. वही , छंद संख्या 57.
4. वही , छंद संख्या 57.
5. कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ0 111
6. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरु बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 60.

काल जाल मे फसे सभ, जीव भाव धर जीव ।
भरम द्वैत को हरो तुम, निकसै सउ सुख थीव ।।"[1]

3.1.4.3.3 <u>तृतीय गुरु निरूपण :-</u>

गुरु अमर दास जी का जन्म संवत् 1536 (1479 ई0) में पिता तेज भान तथा माता सुलखनी के घर बासरके गाँव में हुआ ।[2] संवत् 1566 (1509 ई0) में उन्होंने गुरु अंगद देव जी से दीक्षा लेकर पंथ की सेवा आरम्भ की ।[3] संवत् 1590 (1533 ई0) में आपका विवाह श्रीमती मनसा देवी से हुआ ।[4] भाई कान्ह सिंह नाभा के अनुसार संवत् 1597 (1540 ई0) में आप गुरु अंगद देव जी के शिष्य बने और संवत् 1559 (1502 ई0) में आपका विवाह मनसा देवी से हुआ ।[5] कुछ समय बाद गुरु पुत्री, गुरु पत्नी तथा गुरु माता बीबी भानी का जन्म हुआ । गुरु वंशावली में बीबी भानी का अपना एक विशिष्ट स्थान है । कवि का इस संबंध में कथन है —

"याते बीबी सम नहि कोऊ ।
गुर गुर गुर गुरु जिह कुल होऊ ।
गुर ही गुर सुख पुना सु जानो ।
याते वा सम वाही मननो ।।"[6]

---

1. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरु बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 61-62.
2. वही , छंद संख्या 5,6,7.
3. वही , छंद संख्या xxx 8.
4. वही , छंद संख्या 10.
5. कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ0 74.
6. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरु बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 12.

गुरु जी की दूसरी पुत्री बीबी दानी जी का कवि नेकहीं उल्लेख नहीं किया । सपुत्र मोहन सिंह जी का जन्म[1] संवत् 1583 §1526 ई0§ में हुआ । दूसरे पुत्र मोहरी जी का जन्म संवत् 1596 §1536 ई0§ में हुआ ।[2] [illegible] [illegible] संवत् 1603 §1556 ई0§ में बाबा मोहरी जी का विवाह हुआ ।[3] बीबी भानी ने अपने गुरु पिता की बहुत सेवा की और उनकी सेवा में निष्ठा देखकर ही गुरु अमरदास जी ने बीबीभानी के पति राम दास जी को गुरु गद्दी का अधिकार दिया । कवि का इस संबंध में कथन है ------

"बीबी भानी करि अति सेवा, लीनो गुर पदवी को मेवा ।
गुर पित सेवा कठिन सु भारी, सुधी विचार विचार विचारी ।।"[4]

पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए ही बीबी भानी अपने पति रामदास जी के साथ " गुरु के चक" §अमृतसर§ में आकर रहने लगी । अन्त में संवत् 1631 §1574 ई0§ में गुरु अमरदास जी ने

---

1. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरु बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 16
2. वही , छंद संख्या 17
[illegible]
[illegible]
3. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरु बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 20.
4. वही , छंद संख्या 25.

गोइंदवाल में अपने प्राण त्याग दिए[1]। कवि ने गुरू महाराज के चरणों में प्रार्थना की ——

"मोकऊ भी गुर दीजीए, बर ए ही तुम टोल ।
अंत समे ब्रह्म बिम लखों, भनों ब्रह्म मै बोल ।।"[2]

कवि की कामना है कि अन्त समय में उसके हृदय ब्रह्म का ही सिमरन हो ।

3.1.4.3.4 चतुर्थ गुरू निरूपण :-

गुरू राम दास जी का जन्म संवत् 1587 (1530 ई०) में लाहौर निवासी हरिदास सोढी तथा माता दया कौर के घर हुआ[3]। भाई कान्ह सिंह नाभा जी गुरू जी के प्रकाश का समय संवत् 1591 (1534 ई०) बतलाया है[4]। संवत 1602 (1545 ई०) में आपका विवाह बीबी भानी से हुआ[5]। इसके विपरीत भाई कान्ह सिंह नाभा जी ने इस विवाह का समय संवत् 1610 (1553 ई०) बताया है[6]। बाबा पृथी चंद, गुरू अर्जन देव तथा बाबा महादेव नामक तीन पुत्रों का जन्म हुआ ।

गुरू राम दास जी ने गुरू का चक अथवा रामदासपुर अथवा अमृतसर की नींव संवत् 1634 (1577 ई०) में रखी और एक

---

1. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरू बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 55
2. वही , छंद संख्या 56
3. वही , छंद संख्या 8
4. कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ० 1035.
5. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरू बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 9.
6. कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ० 1035.

कच्चे कुंड का भी निर्माण करवाया, जो बाद में अमृतसर नाम से प्रसिद्ध हुआ।[1] भाई कान्ह सिंह नाभा अमृतसर की नींव रखने का समय संवत् 1631 (1574 ई०) स्वीकार करते हैं।[2] कवि ने अमृतसर की महिमा की विस्तारपूर्वक व्याख्या की है। अमृतसर में स्नान करने पर एक पतिव्रता स्त्री के पति का चर्म रोग दूर हो गया। कवि का कथन है ——

"ताते जोई नाइगो, सो फल पल मै पाइ।
सरधा हीन जु मन मुखा, ताके मन नहि आइ।।"[3]

"ताते" से कवि का भाव अमृत सरोवर से है। हरि मंदिर साहिब को कवि गुरु राम दास जी का ही दूसरा रूप मानता है, इसलिए उसका मत है कि अमृत सरोवर में स्नान करने पर हरि रूप को प्राप्त किया जा सकता है यथा ——
"सभ इंद्रन को रोक कै, अंम्रितसर जो नाइ।
हरी धिआन हरि जापजप, हरी रूप सद पाइ।।"[4]

कवि ने पतिव्रता स्त्री जाति को चार भागों में विभाजित किया है ——

(क) उत्तम पतिव्रता
(ख) मध्यम पतिव्रता
(ग) अधम प्रतिव्रता
(घ) अधमतर पतिव्रता

---

1. कर्म सिंह निर्मला : स्री गुर बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 21.
2. कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ० 1035.
3. कर्म सिंह निर्मला : स्री गुरु बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 46.
4. वही , छंद संख्या 49

उत्तम पतिव्रता स्त्री के लिए कवि ने अपना आदर भाव प्रकट किया है ------

"वहि पतिव्रता अति वड भागी ।
ऐसे पति मै जो अनुरागी ।
ताको सिर पर फिरे उपाई ।
टेक ताहि को अन्त सिधाई ।।"[1]

संवत् 1655 (1598 ई0) में बीबी भानी का देहान्त हुआ ।[2] संवत् 1638 (1581 ई0) में गुरु जी का गोइंदवाल में देहान्त हुआ ।[3] कवि गुरु रामदास जी को राम की भाँति हरि मंदिर (स्वर्ण मंदिर) के रूप में सदा स्थिर स्वीकार करता है ------

"रामदास गुर राम हो, सदा सदा थिर मान ।
हरि मंदर को रूप हुई, देत दरस अब जान ।।"[4]

3.1.4.3.5 पंचम गुरु निरूपण

गुरु अर्जुन देव जी का जन्म संवत् 1610 (1553 ई0) में पिता गुरु रामदास तथा माता बीबी भानी के घर हुआ ।[5] भाई कान्ह सिंह नाभा गुरु जी का जन्म संवत् 1620 (1563 ई0) में स्वीकार करता है ।[6] गुरु अर्जुन देव जी का पहला विवाह चंदन दास की पुत्री राम देवी जी से हुआ । राम देवी के घर संतान नहीं

---

1. कर्म सिंह निर्मला: श्री गुरु बंस चंद्रोदै , छंद संख्या 38.
2. वही 8, छंद संख्या 58.
3. वही , छंद संख्या 66.
4. वही , छंद संख्या 68.
5. वही , छंद संख्या 14.
6. कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ0 80.

हुई थी, इसलिए उन्होंने गुरु जी पर दूसरी शादी के लिए जोर डाला । फलस्वरूप गुरु जी की दूसरी शादी लाहौर निवासी संगत राय की पुत्री श्रीमती गंगा देवी से संवत् 1646 (1589 ई०) में हुई ।[1] भाई कान्ह सिंह नाभा श्रीमती गंगा देवी के पिता का नाम कृष्ण चंद तथा शुभ विवाह का समय संवत् 1636 (1579 ई०) स्वीकार करता है ।[2]

सिख धर्म के इतिहास तथा साहित्य को पहली बार गुरु जी ने विधिवत् ढंग से भाई गुर दास जी से लिखवाया । "गुरु ग्रंथ साहिब" को संकलित करने के लिए गुरु जी को अनेक स्थानों पर जाकर अनेक भक्तों की वाणी एकत्रित करनी पड़ी । गुरु ग्रंथ साहिब में सिख गुरुओं के अतिरिक्त अनेक भक्तों यथा — कबीर, सूरदास, नामदेव इत्यादि की वाणी को भी समाहित किया गया । गुरु वाणी के संबंध में कवि का कथन है ——

"स्री गुर ते गुर पंचमों, पुना नौमि गुर बाणि ।
जो पढ़े जो सुणेगो, सो मम दुख कर हाणि ।।"[3]

अन्य शब्दों में गुरु वाणी पढ़ने अथवा सुनने से दुःख दूर हो जाते हैं । आपके घर एक ही पुत्र का जन्म हुआ जो आगे चलकर गुरु हरि गोबिंद नाम से प्रसिद्ध हुआ । संवत् 1663 (1606 ई०) में गुरु अर्जुन देव जी ने रावी के किनारे लाहौर में अपने प्राण त्याग दिए ।[4] गुरु जी के संबंध में कवि का मत है ———

---

1. कर्म सिंह निर्मला: स्री गुर बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 19-20-21.
2. कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ० 80.
3. कर्म सिंह निर्मला: स्री गुर बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 66.
4. वही , छंद संख्या 74.

"जनम जनम के दुख सभ, पल मै होवे दुर ।
गुर अरजन ब्रहमैद को, जब कर चितवन मूर ।।"[1]

अर्थात् गुरु अर्जुन देव महाराज की कृपा से एक जन्म तो क्या प्रत्येक जन्म के दुःख दूर हो जाते हैं ।

3.1.4.3.6 छठम गुरु निरूपण -

गुरु हरगोविंद सिंह जी का जन्म पिता गुरु अर्जुन देव तथा माता गंगा देवी के घर संवत् 1652 (1595 ई०) में वडाली नामक स्थान पर हुआ ।[2] गुरु जी का पहला विवाह संवत् 1661 (1604 ई०) में नारायण दास की सुपुत्री दामोदरी देवी जी से हुआ ।[3] दूसरा विवाह हरीचंद की सुपुत्री नानकी जी से संवत् 1670 (1613 ई०) में सम्पन्न हुआ ।[4] संवत् 1672 (1615 ई०) में तीसरा विवाह श्रीमती महादेवी से हुआ ।[5] कवि के अनुसार चौथा विवाह गुरु जी ने काजी की पुत्री कौला जी से किया, जिसके नाम पर कौल सर (अमृतसर में) बनाया गया । कौल सर की महिमा का महत्व कवि ने स्वीकार किया है यथा —

"कौल सर सुत प्रगट तब, कौला ही के नाम ।
जो नावै सो तरैगो, पावैगो बिसराम ।।"[6]

---

1. कर्म सिंह निर्मला: श्री गुर बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 65.
2. वही, छंद संख्या 10.
3. वही, छंद संख्या 15-16.
4. वही, छंद संख्या 25-26.
5. वही, छंद संख्या 28-29.
6. वही, छंद संख्या 35.

अर्थात् कौल सर में स्नान करने से भव सागर से बेड़ा पार हो सकता है। माता दामोदरी देवी के यहाँ दो पुत्र बाबा गुरदित्ता जी और बाबा अणी राय जी तथा एक पुत्री बीबी वीरो का जन्म हुआ। बाबा सूरज मल तथा बाबा अटल जी का जन्म माता महादेवी जी के घर हुआ। माता नानकी देवी जी के घर नवम गुरु तेग बहादुर जी का जन्म हुआ। गुरु जी ने अकाल बुंगे (अमृतसर) की नींव रखी। बाबा गुरदित्ता जी का विवाह संवत् 1678 (1621 ई0) में पिता रामा खत्री तथा माता निहाल कौर की सुपुत्री अनंती जी से हुआ।[1] भाई कान्ह सिंह नाभा के अनुसार इस शुभ विवाह का समय संवत 1681 (1624 ई0) है।[2] अनंती जी के घर बाबा धीर मल तथा गुरु हरि राय जी का जन्म हुआ। बीबी वीरो का विवाह धर्म चंद खत्री के सुपुत्र साधु राम जी से हुआ। तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण कवि ने इस अवसर पर किया है ---

"तेल चडे वीरो सिह भूल।
सुना सदा ई मन अनकूल।
फेरे दयो सु जाइ कमाल।
हट के कीनो युध बिसाल।।"[3]

एक ओर बीबी वीरो का विवाह चल रहा था दूसरी ओर गुरु जी पैंदे खाँ का युद्ध में सामना कर रहे थे। इस प्रकार

---

1. कर्म सिंह निर्मला: श्री गुरु बंस चंद्रोदे; छंद संख्या 53-54
2. कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ0 416.
3. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरु बंस चंद्रोदे, छंद संख्या 79.

तत्कालीन विकट राजनैतिक परिस्थितियों का गुरु जी को सामना करना पड़ा । अन्त में संवत् 1701 (1644 ई0) में गुरु जी ने अपने प्राणों को त्याग दिया । कवि का गुरु जी के संबंध में कथन है ——

"अष्टम गुर महाराज के , भने चरत सुख रूप ।
जो गावैं जो सुनैगे, किम भ्रम तो भ्रम कूप ।"[2]

अर्थात् गुरु जी की महिमा गाने अथवा सुनने वाला संसार रूपी कुएँ में नहीं गिर सकता ।

3.1.4.3.7 सप्तम गुरु निरूपण —

छठे गुरु हरगोबिंद सिंह जी के पौत्र तथा बाबा गुरदित्ता जी तथा श्रीमती अनंती जी से सुपुत्र गुरु हरि राय जी का जन्म संवत् 1686 (1630 ई0) में कीरतपुर नामक स्थान पर हुआ ।[3] कवि के मतानुसार गुरु जी के चार विवाह हुए । पहला विवाह श्रीमती ...... किशन कौर जी, दूसरा विवाह श्रीमती चंद कौर जी, तीसरा विवाह श्रीमती प्रेम कौर जी तथा चौथा विवाह श्रीमती राम कौर जी से हुआ । श्रीमती कोट कलयानी नामक एक दासी भी गुरु जी के साथ रहती थी, जिससे कीरतपुर में बाबा राम राय जी का जन्म हुआ । बाबा राम राय जी के चार विवाह हुए । श्रीमती पंजाब कौर उनमें प्रसिद्ध है । माता किशन कौर के घर आठवें गुरु हरि किशन जी का जन्म हुआ । गुरु हरि राय जी कीरतपुर में संवत् 1718 (1661 ई0) को ज्योति ज्योत

---

1. कर्म सिंह निर्मला: श्री गुरु बंस चंद्रोदे, छंद संख्या 124.
2. वही , छंद संख्या 128.
3. वही , छंद संख्या 7 से 10

समा गए ।[1] कवि के अनुसार गुरू जी की कृपा से जन्म जन्म के दुखी जीव भव सागर को पार कर गए ———

"जनम जनम को दुखी जी, किह विधि सुखी सु होइ ।
तुम समरथ तुम ही कहो, तुम सो लख्यो न कोइ ।।"[2]

गुरू जी ने फेरू मल के फेर अथवा आवागमन के चक्र काट दिए और सुथरे व इत्यादि अनेक संतों का कल्याण कर दिया । कवि की यह कामना है कि वह अन्त काल के समय गुरू महाराज को चित्त में धारण करे ————

"करनानिधि करना करयो, जब हुइ अंतह काल ।
तबहि सुमेरी उर तुम, दव्यो अती विसाल ।।"[3]

"गुरुब्दाक" के अन्तर्गत कवि बतलाया है कि अन्त काल के समय जो धन लक्ष्मी अर्थात् धन-दौलत याद करता है, वह सर्प योनि को प्राप्त होता है । जो अन्त काल में अपनी स्त्री को याद करता है, वह वेश्या योनि को प्राप्त होता है । पुत्रों को अन्तकाल में याद करने वाला शूकर योनि को प्राप्त करता है । जो व्यक्ति अन्तकाल में मंदर अर्थात् मृतकों एवं कब्रों को याद करता है वह प्रेत योनि को प्राप्त करता है । परन्तु जो व्यक्ति जीवन की अन्तिम घड़ियों में नारायण का स्मरण करता है, वह मुक्ति को प्राप्त करता है । यही कारण है कि कवि अपने अन्त काल में गुरू महाराज का स्मरण करना चाहता है ।

---

1. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरू बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 60-61.
2. वही , छंद संख्या 50.
3. वही , छंद संख्या 65.

3.1.4.3.8 अष्टम गुरु निरूपण

गुरु हरि क्रिशन महाराज जी के वंश निरूपण से पूर्व कवि ने विघ्नहर्त्ता के रूप में गुरु जी की स्तुति की है ——

"रमत राम सत रूप जो, हरी क्रिशन है सोइ ।
नमो नमो तिह को करो, विघन होइ किम कोइ ।।"[1]

गुरु हरि क्रिशन जी का जन्म गुरु हरि राय (पिता) तथा माता क्रिशन कौर के घर संवत् 1713 (1656 ई०) में हुआ ।[2] सब दुःखों को दूर करने के लिए अन्तिम गुरु गोबिंद सिंह जी ने भी आपका ध्यान धरने के लिए कहा है ——

"श्री हरि क्रिशन ध्याईये, जिस डिठे सभ दुख जाई ।।"[3]

संवत् 1718 (1661 ई०) में गुरु हरि क्रिशन जी ने चेचक के कारण बाल्यावस्था में ही अपने प्राण त्याग दिए ।[4] परन्तु भाई कान्ह सिंह नाभा गुरु जी के ज्योति में ज्योति समाने का समय संवत् 1721 (1664 ई०) स्वीकार करता है ।[5] कवि के मतानुसार गुरु जी केवल सात वर्ष, आठ मास और उन्नीस दिन इस संसार में रहे ,[6] परन्तु भाई कान्ह सिंह नाभा ने गुरु जी की आयु सात वर्ष आठ मास और उब्बीस दिन स्वीकार की है ।[7]

---

1. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरु बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 1.
2. वही , छंद संख्या 2-3.
3. वही , ... पृ० 51.
4. वही , छंद संख्या 20.
5. कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ० 265.
6. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरु बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 28.
7. कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ० 265.

गुरु जी का जीवन सीमित था, परन्तु निर्मलता से परिपूर्ण था ।

3.1.4.3.9 नवम गुरु निरूपण -

गुरु तेग बहादुर जी का जन्म पिता गुरु हरगोबिंद तथा माता नानकी जी के घर रामदास पुर (अमृतसर) में संवत् 1678 (1621 ई0) में हुआ ।[1] गुरु तेग बहादुर जी के संबंध में गुरु गोबिंद सिंह जी का कथन है —— "गुर तेग बहादुर सिमरीए घर नउ निधि आवै धाइ ।।"[2] इसी तथ्य का समर्थन कवि ने भी किया है :——

"सोढी कुल मे प्रगट हुइ, नउ निधि को दातार ।
गुर नउमे को धार उर, करम म्रिगिंद उचार ।।"[3]

संवत् 1686 (1629 ई0) में गुरु जी का विवाह करतार पुर नामक स्थान पर श्रीमती गुजरी जी से हुआ ।[4] भाई कान्ह सिंह नाभा इस शुभ विवाह का समय संवत् 1689 (1632 ई0) निश्चित करते हैं ।[5] गुरु जी ब्रह्म को अपने भीतर ही खोजने में विश्वास रखते थे । कवि ने गुरु जी का एक सुन्दर शब्द उद्धृत किया है ——————

"काहे रे बन खोजन जाई ।
सृब निवासी सदा अलेपा तो ही संग समाई ।

---

1. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरु बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 3.
2. वही , पृ0 53.
3. वही , छंद संख्या 5.
4. वही , छंद संख्या 7.
5. कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ0 600

पुहप मध्य जिउ बासु बसतु है मुकर माहि जैसे छाई ।
तैसे ही हरि बसै निरंतर घट ही खोजहु भाई ।
बाहर भीतर एको जानुहु इह गुर गिआन बताई ।
जनु नानक बिन आपा चीनै मिटै न भ्रम की काई ।।"[1]

अर्थात् ब्रह्म को खोजने के लिए जंगल में जाने की आवश्यकता नहीं है । जब तक जीव स्वयं को पहचान नहीं करता, तब तक न तो भ्रम दूर हो सकते हैं और न ही सर्व व्यापक ब्रह्म को पाया जा सकता है ।

संवत् 1722 (1666 ई0) में पटना नामक स्थान पर माता गुजरी जी ने पुत्र गोबिंद सिंह को जन्म दिया था ।[2] लोक कल्याण तथा धर्म प्रचार के हित गुरु महाराज जी ने बहुत भ्रमण किया और लोगों के पाप तथा दुःखों को दूर किया ——

"भांति भांति गुर तीरथ कीए, भांति भांति के दान सु दीए ।
देस देस की संगत आवै, गुर दरसन कर पाप मिटावै ।।"[3]

संवत् 1732 (1675 ई0) में दिल्ली में सीसगंज नामक स्थान पर गुरु जी ने जन-कल्याण के लिए अपना बलिदान दे दिया ।[4] रकाबगंज नामक स्थान पर गुरु जी का दाह-संस्कार किया गया, जहाँ आजकल प्रसिद्ध गुरद्वारा रकाबगंज है । कवि गुरु जी से प्रार्थना करता है ————

---

1. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरु बंस चंद्रोदै, पृ0 54.
2. वही , छंद संख्या 28.
3. वही , छंद संख्या 30.
4. वही , छंद संख्या 41.

"करना कर करना करा, दरना मोरी डर ।
महा मोह को जोर हर, हरना काल को जोर ।।"[1]

कवि गुरु जी की कृपा से मोह और काल के बल को कम करने की कामना करता है ।

3.1.4.3.10. दशम गुरु निरूपण –

कवि ने दशम गुरु गोबिंद सिंह जी के व्यक्तित्व का अंकन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है ———

"श्री गुर नानक सरूप रूप गुर दसमे
दसमे गोबिंद जो गोबिंद हरि जप्यो कर ।
सूरत अति मोहनी सोहनी झल झलात
अजान बाहु धनुरधर ध्यान बप्यो कर ।
करयो पंथ जो वचित्र चित्र भक्त
मुकति लहे सो जो तामे बप्यो कर ।
करम हरि असे गुर महाराज को नित औ बासर
ध्याइ ध्याइ मन दुख को चप्यो कर ।।"[2]

गुरु गोबिंद सिंह जी का जन्म गुरु तेग बहादुर तथा माता गुजरी के घर पटना में संवत् 1722 (1666 ई०) में हुआ ।[3] नौ वर्ष की आयु में ही पिता के बलिदान बाद उन्होंने गुरु गद्दी का भार सँभाला । गुरु जी का पहला विवाह श्रीमती जीतो जी, दूसरा विवाह श्रीमती सुन्दरी जी तथा तीसरा विवाह श्रीमती साहिब कौर जी से हुआ । पहले विवाह जीतो जी से हुआ अथवा सुन्दरी जी

---

1. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरु बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 55.
2. वही , छंद संख्या 2.
3. वही , छंद संख्या 7.

से, कवि इस संबंध में निश्चित नहीं है । अजीत सिंह, जुझार सिंह, जोरावर सिंह, फते सिंह नामक चार पुत्र आपके घर उत्पन्न हुए ।

भवानी अर्थात् महा शक्ति को सिद्ध करने के लिए गुरु जी ने पंडितों को बुलवाया । कई दिन उपवास तथा हवन करने बाद अन्त में भवानी प्रकट हुईं । कवि ने महा भवानी का सुन्दर चित्र खींचने का प्रयत्न किया है ——

"नख सिख पिख तब देखि सरूप ।
लह्यो सु सुख गुर बहुत अनूप ।
झल झलात दुइ बिपुल सुजान ।
आठ हसत मै ससत्र सु ठान ।।"[1]

गहरे लाल वस्त्र धारण किए हुए, सिंह पर सवार महा भवानी ने गुरु जी को एक विचित्र पंथ निर्माण करने का वर दिया , जो बाद में "खालसा पंथ" नाम से प्रसिद्ध हुआ ——

"इसत्री पुरख सु मेल ते, उपजे है संतान ।
हमरे हूं सुत होइगो, नाम खालसा मान ।।"[2]

संवत् 1756 (1699 ई0) में आनंदपुर साहिब (पंजाब) में गुरु जी ने विचित्र विधि से भाई दया सिंह, भाई धर्म सिंह, भाई हुकम सिंह, भाई साहिब सिंह तथा भाई हिम्मत सिंह को अमृत पान करवाकर खालसा पंथ की स्थापना की ।[3] गुरु जी ने स्वयं भी इन पांच प्यारों से अमृत पान किया और खालसा पंथ के विस्तार के लिए इन्हीं पांच प्यारों की सहायता से अनेक सिक्खों को "खालसा पंथ" में शामिल किया ।

---

1. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुर बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 75.
2. वही, ,छंद संख्या 156.
3. वही , छंद संख्या 169.

बाबा अजीत सिंह तथा बाबा जुझार सिंह जी ने चमकौर साहिब के युद्ध में लड़ते लड़ते वीर गति प्राप्त की । बाबा जोरावर सिंह ने 9 वर्ष तथा बाबा फते सिंह ने 7 वर्ष की अल्पावस्था में संवत् 1762 (1705 ई०) में सरहिंद में धर्म के लिए अपना बलिदान दिया ।[1] भाई कान्ह सिंह नाभा जी ने इस घटना का समय संवत् 1761 (1704 ई०) स्वीकार किया है ।[2]

गुरु जी ने "जफरनामा" लिखकर भाई दया सिंह के हाथ मुगल बादशाह औरंगजेब के पास भेजा । औरंगजेब की मृत्यु के बाद गुरु जी ने बहादुर शाह की अन्य मुगल शासन के वारिसों के विरुद्ध सहायता की । दक्षिण में गुरु जी की मुलाकात वैरागी लक्ष्मण दास से हुई । वैरागी लक्ष्मण दास गुरु जी से प्रभावित होकर उनका शिष्य अथवा "बंदा" बन गया । गुरु जी ने उसे "बंदा बहादुर" नाम देकर जुल्म के विरुद्ध लड़ने के लिए पंजाब भेजा । बंदा बहादुर गुरु जी की आज्ञा पालन करते हुए पंजाब आया और अनेक स्थानों पर उसने विजय प्राप्त की । अन्त में लड़ते लड़ते वह बंदी बना लिया गया । बंदा बहादुर को संवत् 1774 (1717 ई०) में दिल्ली कोतवाली में शहीद कर दिया गया ।[3] भाई कान्ह सिंह नाभा ने इस घटना का समय संवत् 1773 (1716 ई०) स्वीकार किया है ।[4]

संवत् 1765 (1708 ई०) गोदावरी नदी के किनारे[5] अबचल नगर (नंदेड़) में गुरु जी ने अपने प्राण त्याग दिए । उनका

---

1. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरु बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 316.
2. कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ0 537.
3. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरु बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 639.
4. कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ0 894.
5. कर्म सिंह निर्मला : श्री गुरु बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 580.

मत था कि आत्म तत्व की पहिचान के लिए काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, हठ, मोह इत्यादि का त्याग करना चाहिए। ऐसा करने से ही परम पुरुष के दर्शन किए जा सकते हैं । कवि ने गुरु जी के अन्तिम सन्देश का भी उल्लेख किया है ——

"भावत मय गुर बाणी पठ, हरि गुर को धर ध्यान ।
अंम्रितसर अस्नान कर, स्री ग्रंथ गुर मान ।।"[1]

(क) गुरु वाणी का पाठ करना
(ख) गुरु में ध्यान लगाना
(ग) अमृतसर में स्नान करना
(घ) श्री गुरु ग्रंथ साहिब को गुरु मानना

गुरु गोबिंद सिंह जी का यह अन्तिम उपदेश था । कवि ने कृति के अन्तिम दोहों में अपने दीक्षा गुरु भाग सिंह के प्रति अपना आदर भाव प्रकट किया है यथा —

"भाग सिंघ गुर को नमो, यात बारं बार ।
लया के गुरो के पंथ में, सिद्द को दयो विचार ।"[2]

"ग्रंथ समापत इच्छा" के अन्तर्गत कवि ने अपना विश्वास प्रकट किया है कि जो भी मनुष्य इस ग्रंथ को पढ़ेगा अथवा सुनेगा, वह सदैव सुख को प्राप्त करेगा ——

"महाराज दस गुरन को, कह्यो सुबंस सुधार ।
सुने पढै जो याहि को, लहसो सद सुख सार।।"[3]

---

1. कर्म सिंह निर्मला: श्री गुरु बंस चंद्रोदै, छंद संख्या 563.
2. वही , छंद संख्या 657.
3. वही , छंद संख्या 658.

अन्त में कवि यह कामना करता है कि "श्री गुर बंस चंद्रोदे" के प्रकाश में आने से सिक्ख संसार के दुःख दूर होंगे और चारों ओर सुख का वास होगा ।

गुरुमुखी लिपि में लिखित ब्रज भाषा की यह कृति कलात्मक दृष्टि से एक सामान्य कोटि की रचना ही है । किन्तु सिख इतिहास की दृष्टि से यह पुस्तक अत्यन्त महत्वपूर्ण है । पंजाबी, संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव, अरबी, फारसी के शब्दों का भी कवि ने प्रयोग किया है । ऐतिहासिक घटनाक्रम में कहीं कहीं कवि ने प्रश्नोत्तर शैली का भी प्रयोग किया है । कवि ने अधिकांशतः दोहा, चौपाई, कवित्त छंद का प्रयोग किया है । पाधो कुलक, सोरठा, श्लोक, सवैया, इत्यादि को भी कवि ने कहीं कहीं प्रयुक्त किया है । रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, यमक, अनुप्रास इत्यादि छंदों का कवि ने पर्याप्त प्रयोग किया है । अन्य कृतिओं की तुलना में कवि की इस कृति में सहज और सरल भाषा प्रयुक्त हुई है ।

3.2 कृति का परिचय

कवि कर्म सिंह निर्मला कृत "हरि अदृष्ट सतसैया" 18वी शताब्दी के गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी साहित्य की एक अछूती एवं उत्कृष्ट कृति है । डा० शमशेर सिंह अशोक का इस संबंध में कथन है -- " यह सतसई जो दुर्लभ है , अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है । वेदांत संबंधी यह पहली नई खोजी गई सतसई है।"[1] इस कृति का रचयिता निर्मला संत था, इसलिए इस के प्रतिपादित मूल विषय सिख दर्शन पर भारतीय वेदांत दर्शन का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है । हमें इस कृति का विस्तृत अध्ययन अपने शोध-प्रबंध में करना है । हमने अपने अध्ययन को मुख्यतः दो भागों में विभाजित कर दिया है -- बाह्य रूप अथवा पांडुलिपि का अध्ययन तथा प्रतिपादित विषय वस्तु xxx का अध्ययन ।

---

1. शमशेर सिंह अशोक : पंजाबी हथ लिखितां दी सूची, पृ० 376.

प्रतिपादित विषय – वस्तु का अध्ययन आगामी अध्यायों में किया जाएगा । इस स्थल पर कृति के केवल बाह्य रूप अथवा पांडुलिपि का विवरण ही किया जाएगा ।

"हरि अकृष्ट सतसैया" की एक मात्र उपलब्ध पांडुलिपि कई वर्षों तक डा० शमशेर सिंह अशोक के निजी पुस्तकालय (क्रमांक न० 10) की शोभा बनी रही, लेकिन 30 नवम्बर, 1974 को यह पांडुलिपि गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर के पुस्तकालय (एम०एस०-599) में आ गई और आज भी वहाँ सुरक्षित है । विश्वविद्यालय ने इस दुर्लभ पांडुलिपि का मूल्य मात्र 100 रुपए आंका है ।

सजिल्द पांडुलिपि का आकार 11 x 17 वर्ग सें०मी० है । पांडुलिपि में प्रयुक्त कश्मीरी कागज़ में कहीं कहीं कीड़ा लगा हुआ है । लिखित पृष्ठ का आकार 8x13 वर्ग सें०मी० है । पांडुलिपि के कुल 112 पृष्ठ हैं, डा० शमशेर सिंह अशोक जी ने कुल 112 पृष्ठ स्वीकार किए हैं ।[1] प्रत्येक पृष्ठ पर दोनों ओर लिखा गया है । प्रत्येक पृष्ठ पर लगभग 12 पंक्तियों में लिखा गया है । लाल रंग की लाइनों वाले हाशिए में काली स्याही लिखावट मोटी, परन्तु साफ तथा शुद्ध है । पांडुलिपि में कुल 701 दोहे हैं । दोहा अंक 305 (पृ० 51) दो बार आया है, दोहा अंक 533 (पृ० 87) और दोहा अंक 576 (पृ० 94) नहीं है । इस तरह से दोहों का कुल योग 700 रह जाता है । पांडुलिपि का आरम्भ[2] "ओं सतिगुर प्रसादि" से तथा अन्त "इति श्री मत भाग सिंघ चरन सिक्ख कर्म सिंघ दयां हुकम सिंघ आतमयेन विरचते सतसया सुंभ मस्तु ।" से होता है ।

संक्षेप में पांडुलिपि का अवस्था संतोषजनक कही जा सकती है ।[3]

---

1. शमशेर सिंह अशोक : पंजाबी हथ लिखतां दी सूची पृ० 375.
2. पांडुलिपि के आरम्भिक पृष्ठ चित्र परिशिष्ट में देखें ।
3. पांडुलिपि के अन्तिम पृष्ठ का चित्र परिशिष्ट में देखें ।

अध्याय 4

'हरि अदृष्ट ततैया' में आगत दार्शनिक एवं धार्मिक विचार

अध्याय – 4

"हरि अष्ट सतैया" में आगत दार्शनिक एवं धार्मिक विचार

कवि कर्म सिंह निर्मला कृत "हरि अष्ट सतैया" 19वीं शताब्दी की एक उत्कृष्ट काव्य कृति है, जिसमें आगत दार्शनिक एवं धार्मिक विचार मूलतः सिख धर्म एवं दर्शन से अनुप्राणित होकर भी अन्य भारतीय दर्शनों से प्रभावित प्रतीत होते हैं। वेदांत तथा सांख्य दर्शन का कृति पर पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता। "हरि अष्ट सतैया" में आगत दार्शनिक विचारों का अध्ययन करने से पूर्व हमारे लिए भारतीय दर्शन से परिचित हो लेना आवश्यक है ।

4.1 भारतीय दर्शन का संक्षिप्त परिचय :-

भारतीय – दर्शन को प्रायः दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। पहले वर्ग में वेद-विरोधी अर्थात् नास्तिक दर्शनों का परिगणन किया जाता है। वेदों को प्रमाण मानने वाले आस्तिक-दर्शनों का अध्ययन दूसरे वर्ग के अन्तर्गत किया जाता है।

4.1.1 नास्तिक दर्शन : नास्तिक – दर्शन में मुख्यतः तीन दर्शन -- बौद्ध, जैन तथा चार्वाक सम्मिलित हैं।

4.1.1.1 चार्वाक दर्शन :- चार्वाक-दर्शन के आदि प्रवर्तक आचार्य बृहस्पति स्वीकार किए जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि शुक्राचार्य की अनुपस्थिति में दानवों को इस मत का उपदेश बृहस्पति ने दिया था। अनेक विद्वान इस मत का प्रवर्तक चार्वाक ऋषि को मानते हैं, जिनका उल्लेख "महाभारत" में हुआ है। यह दर्शन "लोकायत" नाम से भी प्रख्यात है। इसमें प्रत्यक्ष को ही प्रमाण माना जाता है। अनुमान शब्द इत्यादि

अप्रत्यक्ष प्रमाण नहीं स्वीकार किए गए हैं । जड़ जगत् चार भौतिक तत्वों - वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी से बना माना गया है । जगत् के सभी द्रव्य तथा मनुष्य शरीर भी इन्हीं चार स्थूल भौतिक तत्वों से बने माने गए हैं । "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्" ही इस दर्शन का मूल सिद्धान्त है । खाओ, पिओ, मौज उड़ाओ अर्थात् अधिक से अधिक सुख-प्राप्ति ही मानव जीवन का लक्ष्य माना गया है । राहुल सांकृत्यायन का इस सिद्धान्त के संबंध में कथन है ----"प्राचीन चार्वाक - सिद्धान्त जड़वाद के सिद्धान्त थे --- ईश्वर नहीं, आत्मा नहीं, पुनर्जन्म और परलोक नहीं । जीवन के भोग त्याज्य नहीं, ग्राह्य हैं । तर्क (अनुमान) और बुद्धि को हमें सत्य के अन्वेषण के लिए अपना मार्गदर्शक बनाना चाहिए ।"[1]

4.1.1.2 जैन-दर्शन : जैन-धर्म में कुल 24 तीर्थङ्कर हुए हैं, जिनमें ऋषभदेव प्रथम हुए हैं । अतः ऋषभदेव को ही जैन-दर्शन का प्रवर्तक स्वीकार किया जा सकता है । अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर जी हुए हैं, जो महात्मा बुद्ध के समसामयिक थे । जैन दर्शन के संबंध में डा० उमेश मिश्र का मत है ----- "दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति या परम सुख की प्राप्ति, इसका चरम लक्ष्य है । कठोर तपस्या, साधना आदि के द्वारा कायिक, वाचिक तथा मानसिक क्रियाओं का नियंत्रण कर अन्तःकरण की शुद्धि करना एवं परमात्मा का साक्षात्कार करना, इनका भी चरम उद्देश्य है । इसीलिए जैन लोग "सम्यक् दर्शन, "सम्यक् ज्ञान" तथा "सम्यक् चरित्र" इन तीन "रत्नों" की प्राप्ति के लिए जीवन भर प्रयत्न करते हैं ।"[2] चार्वाक दर्शन की भाँति

---

1. राहुल सांकृत्यायन : दर्शन दिग्दर्शन, इलाहाबाद, किताब महल, 1983ई० पृ० 485.
2. डा० उमेश मिश्र : भारतीय दर्शन , लखनऊ, सूचना विभाग (उत्तर प्रदेश), 1970 ई० , पृ० 98.

जैन दर्शन में भी माना गया है कि भौतिक द्रव्य चार प्रकार के तत्वों के मिश्रण से ही बनते हैं । इन तत्वों के अतिरिक्त अनुमान द्वारा आकाश, काल, धर्म तथा अधर्म का ज्ञान होता है । डा० सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय का इस संबंध में कथन है ——— "जैन-दर्शन वस्तुवादी है क्योंकि यह बाह्य जगत् के अस्तित्व को मानता है । यह बहुसत्तावादी है क्योंकि यह अनेक तत्वों को मानता है । यह अनीश्वरवादी है, क्योंकि यह ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानता ।"[1] अनेक आचार्यों ने जैन-दर्शन "निर्युक्ति", भद्रबाहुसंहिता" आदि के कर्ता भद्रबाहु, "तत्वार्थाधिगमसूत्र", आदि के कर्ता उमास्वामी, "समयसार", "पंचास्तिकाय", "प्रवचनसार", "नियमसार" आदि के कर्ता कुन्दकुन्दाचार्य, "सम्मतितर्कसूत्र", "न्यायावतार" आदि के कर्ता सिद्धसेन दिवाकर, "षड्दर्शनसमुच्चय", "दशवैकालिकनिर्युक्तिटीका, "न्यायप्रवेशसूत्र", "न्यायवतारवृत्ति" आदि के कर्ता हरिभद्र सूरि आदि इस दर्शन के अनेक प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं ।

4.1.1.3 **बौद्ध- दर्शन :-** बौद्ध-दर्शन के प्रवर्तक गौतम बुद्ध हैं । महात्मा बुद्ध रोग, जरा, मृत्यु, इत्यादि सांसारिक दुःखों को देखकर बहुत पीड़ित हुए थे । अनेक वर्षों के अध्ययन और चिन्तन के बाद उन्हें "गया" नामक स्थान पर ज्ञान प्राप्त हुआ था, जिसका सार उनके चार सत्यों ———सर्वत्र दुःख है {सर्वं दुःखम्}, दुःख का कारण है, {दुःख समुदयः} दुःखों का अंत है {दुःख निरोधः}, दुःख दूर करने का उपाय है {दुःख-निरोधोपायः} में पाया जाता है । सांसारिक दुःखों को दूर करने के लिए महात्मा बुद्ध ने अष्ट मार्ग का अनुमोदन

---

1. डा० सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय : भारतीय दर्शन , पटना, पुस्तक भंडार, अज्ञात ई० पृ० 19 {अनुवादक हरिमोहन झा तथा नित्यानंद मिश्र}

किया -- §1§ सम्यक् दृष्टि, §2§ सम्यक् संकल्प, §3§ सम्यक् वाक्, §4§ सम्यक् कर्मान्त, §5§ सम्यक् आजीव, §6§ सम्यक् व्यायाम, §7§ सम्यक् स्मृति, §8§ सम्यक् समाधि। महात्मा बुद्ध ने अपने साधकों के लिए इन नियमों - अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, सत्य, धर्म में श्रद्धा, मध्याह्नोत्तर भोजन का निषेध, विलास से विरक्ति, सुगन्धित द्रव्यों का निषेध, सुखप्रद शय्या तथा आसन का परित्याग तथा सुवर्ण या चाँदी आदि मूल्यवान् वस्तुओं के अस्वीकार करने का प्रतिपादन भी किया। बौद्ध इस दर्शन के संबंध में डा० पारसनाथ द्विवेदी का कथन है ———

यह संसार दुःखमय है। दुःख को दूर करने का साधन सम्यक् ज्ञान है। सम्यक् ज्ञान से ही दुःखों की निवृत्ति एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है। निर्वाण ही बौद्धों का परमतत्त्व है।[1]"

"विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि", अभिधर्मकोश" आदि के कर्ता वसुबन्धु, "पंचभूमि", "अभिधर्मसमुच्चय", "महायान संग्रह", "प्रकरण-आर्यवाचा", संगीतिशास्त्र", "वज्रच्छेदिका" आदि के कर्ता असंग, "महायान-सूत्रालंकार", "धर्मधर्मताविभंग", "मध्यान्तविभंग" आदि के कर्ता मैत्रेयनाथ, "न्यायमुखर", "प्रमाणसमुच्चय" आदि के कर्ता दिङ्नाग, -न्यायबिन्दु", "प्रमाणवार्तिक" आदि के कर्ता धर्मकीर्ति, "माध्यमिक-कारिका", "युक्तिषष्टिका", "शून्यतासप्तति," "विग्रहव्यावर्तनी," आदि के कर्ता नागार्जुन, "चतुःशतक" आदि के कर्ता आर्यदेव, "माध्यमिकावतार",

---

1. डा० पारसनाथ द्विवेदी : भारतीय दर्शन, आगरा, श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, 1873 ई० पृ० 94.

"प्रसन्नपदा", "चतुःशतक व्याख्या", आदि के कर्ता चन्द्रकीर्ति, "शिक्षासमुच्चय", "सूत्रसमुच्चय" आदि के कर्ता शान्तिदेव, "तत्वसंग्रह", "माध्यमिकालंकारकारिका" आदि के कर्ता शान्तरक्षित आदि बौद्ध - दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं ।

4.1.2 <u>आस्तिक-दर्शन</u> :- वेदों को प्रमाण मानने वाले प्रमुख आस्तिक -दर्शनों की संख्या छः है । इनको षड्दर्शन भी कहा जाता है । षड्दर्शन के अन्तर्गत न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा तथा वेदान्त दर्शन आते हैं ।

4.1.2.1 <u>न्याय-दर्शन</u> :- न्याय-दर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम का समय ईसा पूर्व छठी शताब्दी माना जाता है । व्युत्पत्ति के आधार पर "नि" उपसर्ग पूर्वक "इण् गतौ" धातु में "घञ्" प्रत्यय लगकर "न्याय"शब्द की रचना होती है । न्याय का शाब्दिक अर्थ है "उचित" । महर्षि गौतम ने अपने "न्यायसूत्र" में तात्विक एवं तार्किक सिद्धान्तों की विशद व्याख्या की, इसलिए न्याय शास्त्र को "तर्कशास्त्र" तथा "आन्वीक्षिकी" भी कहा जाता है । न्याय-दर्शन के अन्तर्गत मुख्यतः प्रमाण-संबंधी, भौतिक जगत्-संबंधी, आत्मा और मोक्ष-संबंधी तथा

ईश्वर -संबंधी विचार व्यक्त किए गए हैं । प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द को इस दर्शन के अनुसार "प्रमाण" माना गया है । "प्रमाण" के द्वारा जिन यथार्थ पदार्थों का ज्ञान होता है, वे प्रमेय हैं । डा० उमेश मिश्र ने प्रमेयों की संख्या 12 स्वीकार की है —— आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मनस्, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख तथा अपवर्ग ।[1] नैयायिक ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं । ईश्वर इस जगत् का स्रष्टा , पालक तथा संहारक है । नैयायिकों के अनुसार ईश्वर ने इस जगत् का निर्माण शून्य से नहीं, बल्कि परमाणु, दिक्, काल,

---

1. डा० उमेश मिश्र : भारतीय दर्शन , पृ० 183.

आकाश, मन तथा आत्मा आदि उपादानों से किया है ।[1]
श्री के0 दामोदरन ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का मूल आधार पाँच मूलभूत शाश्वत तत्वों -- पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि तथा वायु को मानते हैं ।[2] रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इत्यादि विषयों का ज्ञान इन्द्रिय से होता है । नैयायिक इन्द्रिय दो प्रकार की मानते हैं -- बाह्य इन्द्रिय तथा आन्तरिक इन्द्रिय । बाह्य इन्द्रिय के दो भेद ---- ज्ञान इन्द्रिय तथा कर्म इन्द्रिय हैं । चक्षु, रसना, घ्राण, त्वक् और श्रोत्र ज्ञान-इन्द्रियाँ तथा वाक्, हस्त, पाद, जननेन्द्रिय और मल बाहर निकालने वाली इन्द्रिय कर्म-इन्द्रियों के अन्तर्गत आती हैं । आन्तरिक इन्द्रिय के अन्तर्गत केवल मन आता है । मोक्ष के संबंध में इनके मत का सार देते हुए डा0 सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय ने कहा है ---- " परमात्मा की दया तथा उसके मार्ग-प्रदर्शन से मनुष्य अपने आत्मा तथा विश्व का तात्विक ज्ञान प्राप्त कर सकता है और तत्पश्चात अपने दुःखों से मुक्ति पा सकता है ।"[3]
"न्यायसूचीनिबन्ध", उद्योतकर के वार्त्तिक पर "तात्पर्यटीका" आदि के रचयिता वाचस्पति मिश्र {प्रथम}, "न्यायकुसुमांजलि", "आत्मतत्वविवेक" आदि के रचयिता उदयनाचार्य, "न्यायसार" आदि के रचयिता भासर्वज्ञ, "न्यायमंजरी" आदि के रचयिता जयन्तभट्ट, "तार्किकरक्षा" आदि के रचयिता वरदराज मिश्र आदि प्रसिद्ध नैयायिक हुए हैं ।

---

1. डा0 सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृ0 23.
2. के0दामोदरन : भारतीय चिन्तन परम्परा , पृ0 171.
3. डा0 सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृ0 23.

4.1.2.2 **वैशेषिक – दर्शन:** वैशेषिक प्राचीन भारत का एक यथार्थवादी और क्रमबद्ध दर्शन है । इसके आदि प्रवर्तक महर्षि कणाद अथवा उलूक थे । यह दर्शन, न्याय-दर्शन से बहुत मिलता-जुलता है, परन्तु इस दर्शन का स्तर न्याय-दर्शन की तुलना में कुछ ऊँचा है । चूँकि इसमें "विशेष" पदार्थों को स्वीकार किया गया था, इसीलिए इस दर्शन का नाम "वैशेषिक" पड़ा । आरम्भ में वैशेषिक दर्शन में जगत् की सभी वस्तुओं का निमार्ण छः पदार्थों — द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय से स्वीकार किया गया । परन्तु बाद में श्रीधर और उदयन जैसे भाष्यकारों ने एक और पदार्थ "अभाव" भी जोड़ दिया ।

जिसमें गुण और क्रियाएँ होती हैं और जो किसी प्रभाव का अन्तर्निहित अथवा भौतिक कारण होता है, उसे द्रव्य कहते हैं । द्रव्यों की संख्या नौ है ——— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन । पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु अभौतिक तत्व हैं जो अपने मूल रूप में अत्यंत सूक्ष्म, अविभाज्य अनेक परमाणुओं से निर्मित हैं । आकाश, काल, दिक् और आत्मा सर्वत्र व्यापी तत्व हैं । मन अति सूक्ष्म पदार्थ है । प्रत्येक द्रव्य के अपने गुण होते हैं । आरम्भ में कुल 17 गुणों का उल्लेख वैशेषिक दर्शन में हुआ है, परन्तु श्री के० दामोदरन के अनुसार प्रशस्तपाद ने बाद में 7 गुण और जोड़ दिए ।[1] यह 24 गुण इस प्रकार हैं —— रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, प्रत्येकत्व, संयोग, विभाग परत्व,

---

1. के० दामोदरन : भारतीय चिन्तन परम्परा, पृ० 165.

अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, धर्म, अधर्म, शब्द और संस्कार । उपर्युक्त 24 गुणों में से विशेष गुण — रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द कहे जाते हैं । क्योंकि ये मुख्य पाँच पदार्थों — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के गुण हैं । कर्म पाँच प्रकार के हैं —— उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण और गमन । डा० सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय के अनुसार "सामान्य किसी वर्ग के साधारण धर्म को कहते हैं ।[1]" एक घोड़े में कुछ विशेष गुण होते हैं और कुछ ऐसे गुण भी होते हैं जो सभी घोड़ों में होते हैं , उन्हीं को "सामान्य" कह सकते हैं । नित्य द्रव्यों में रहने वाला "विशेष" स्वयं भी नित्य है । समवाय स्थायी संबंध को कहा जा सकता है । धागों के बिना वस्त्र नहीं बन सकता, वस्त्र का अस्तित्व धागों में है। इस प्रकार धागों और वस्त्र के संबंध को "समवाय" कह सकते हैं । किसी वस्तु का न होना ही उसका अभाव है । ईश्वर और मोक्ष संबंधी वैशेषिक मत, न्याय मत से बहुत मिलता-जुलता है । वैशेषिकों में "पदार्थधर्मसंग्रह" के कर्ता प्रशस्तपाद, "न्यायलीलावती" आदि के कर्ता वल्लभाचार्य, न्यायलीलावती पर प्रकाश नामक टीका के कर्ता वर्द्धमान, "उपस्कार" के कर्ता शंकर मिश्र, "विवृति" के कर्ता जयनारायण भट्टाचार्य आदि प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं ।

4.1.2.3 <u>सांख्य-दर्शन</u> :- सांख्य दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कपिल थे । इसको "विवेक-बुद्धि" भी कहा जाता है । इस दर्शन में "विवेक -बुद्धि" अथवा महत् बहुत महत्वपूर्ण है । इस द्वैतवादी दर्शन में मूलतः दो तत्व माने गए हैं —— पुरुष और प्रकृति । पुरुष चेतन है । पुरुष प्रकृति के परिणामों का भोक्ता है । प्रकृति इस सृष्टि का आदि कारण है । यह नित्य और जड़ वस्तु है । यह सदैव परिवर्तनशील है । सत्व, रज और तम प्रकृति के तीन गुण हैं ।

---

1. डा० सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय : भारतीय दर्शन पृ० 24.

सृष्टि से पहले सत्व, रज और तम तीनों गुण साम्यावस्था में रहते हैं। पुरुष और प्रकृति के संयोग से सृष्टि का आरम्भ होता है। पुरुष के संयोग से प्रकृति के तीनों गुणों की साम्यावस्था नष्ट होती है। सत्व की अधिकता से महत् अथवा "विवेक-बुद्धि" की उत्पत्ति होती है महत् चिन्तन को जन्म देता है। चिन्तन से अहंकार उत्पन्न होता है। अहंकार और महत् तत्व का संयोग 5 ज्ञानेंद्रियों, 5 कर्मेंद्रियों तथा मन की उत्पत्ति का कारण बनता है। अहंकार और तम के संयोग से पांच तन्मात्राओं ---- शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध और रूप का जन्म होता है। शब्द से आकाश, स्पर्श से वायु, रूप से अग्नि, रस से जल और गंध से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। ईश्वर के अस्तित्व के संबंध में डा० सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय का मत द्रष्टव्य है — "सांख्य के भाष्यकार विज्ञान-भिक्षु यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि सांख्य ईश्वर के अस्तित्व को एक विशिष्ट पुरुष के रूप में मानता है। उनका कथन है कि ईश्वर प्रकृति का द्रष्टा मात्र है स्रष्टा नहीं।"[1] निष्प्रयोजन ईश्वर के अस्तित्व के कारण डा० मिश्र ने भी इस दर्शन को "निरीश्वर सांख्य" कहा है।[2] सांख्य-दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य विन्ध्यवास, वार्षगण्य, विज्ञान-भिक्षु, ईश्वरकृष्ण, गौडपाद इत्यादि हुए हैं। विज्ञान भिक्षु की "सांख्यप्रवचन भाष्य", "योगवार्तिक", "विज्ञानामृत भाष्य", "सांख्यसार", "योगसार" आदि प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। "सांख्यकारिका" आचार्य ईश्वर कृष्ण का प्रसिद्ध ग्रंथ है।

4.1.2.4 <u>योग-दर्शन</u> :- योग-दर्शन के प्रवर्तक महर्षि पतंजलि हैं। योग का अर्थ है "समाधि"। समाधि में "चित्त" एक अनिवार्य तत्त्व है। महर्षि

---

1. डा० सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृ० 27.

2. डा० उमेश मिश्र : भारतीय दर्शन, पृ० 315.

पतंजलि ने चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा है ।[1] समाधि में चित की पाँच अवस्थाएँ —— क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र, निरुद्ध होती है । चित्त के अन्तर्गत तीन तत्व सत्व, रज और तम आते हैं । सत्व का उद्रेक होने से साधक समाधि लगाता है । रज और तम होने पर साधक के लिए समाधिस्थ होना कठिन है । क्षिप्त अवस्था में चित्त सांसारिक विषय-वस्तुओं में चंचल रहता है । समाधि की मूढ़ अवस्था निद्रा के समान है । विक्षिप्त अवस्था में क्षिप्त अवस्था की तुलना में अधिक शान्ति आरम्भ हो जाती है । एकाग्र अवस्था में साधक का चित्र अपने ध्येय में केंद्रीभूत रहता है । समाधि की अन्तिम अवस्था निरुद्ध में चित्त के चिन्तन का अन्त हो जाता है ।

योगाभ्यास के आठ अंग हैं —— यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि । योग-दर्शन में ईश्वर को पूर्ण, नित्य, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ स्वीकार किया गया है । ईश्वर के संबंध में डा० राधाकृष्णन का मत है —— "योग दर्शन का व्यक्तिगत ईश्वर उस प्रणाली के शेष भाग से बहुत कम सम्बद्ध है । मनुष्य की आकांक्षाओं का लक्ष्य ईश्वर से एकात्म स्थापित करना नहीं, वरन्, पुरुष को प्रकृति से पूर्णतः अलग करना है । ईश्वर की भक्ति मोक्ष प्राप्त करने के अनेक उपायों में से एक है । ईश्वर केवल एक पुरुष विशेष है, न कि ब्रह्माण्ड का स्रष्टा और संरक्षक ।"[2]

4.1.2.5 <u>मीमांसा - दर्शन</u> :- मीमांसा-दर्शन के प्रवर्त्तक महर्षि जैमिनि थे । डा० राधाकृष्णन के अनुसार महर्षि जैमिनि कृत "मीमांसासूत्र" का निर्माण लगभग ईसा से 400 वर्ष पूर्व हो चुका था ।[3] आचार्य शबरस्वामी का मीमांसा-सूत्र पर भाष्य बहुत प्रसिद्ध है । आचार्य कुमारिल भट्ट की "श्लोकवार्तिक", "तन्त्रवार्तिक", "टुप्टीका", "बृहट्टिका", "मध्यटीका", आचार्य मण्डन मिश्र की "भावना विवेक", "विधिविवेक", विभ्रमविवेक", "मीमांसानुक्रमणी", आचार्य प्रभाकर मिश्र की शबरभाष्य पर "बृहती" और

---

1. योगश्चित्तवृत्ति - निरोधः । , पतंजलि योग सूत्रः 1, 2.
2. डा० राधाकृष्णन : भारतीय दर्शन (भाग 2) पृ० 271.
3. वही पृ० 371.

"लघ्वी" दो टीकाएं, आचार्य शालिकनाथ मिश्र की "दीपशिखा" तथा "ऋजुविमलापञ्चिका", आचार्य पार्थसारथि मिश्र की "शास्त्रदीपिका", "न्यायरत्नमाला", "तन्त्ररत्न", मुरारि मिश्र की "मीमांसा सूत्र" पर बृहत टीका आदि रचनाएं प्रसिद्ध हैं।

मीमांसा दर्शन में सत्य के ज्ञान को प्रमा कहा गया है और प्रमा को प्राप्त करने के साधन को प्रमाण माना जाता है। प्रमाण तीन प्रकार के हैं — प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। महर्षि जैमिनि के बाद अन्य आचार्यों ने उपमान, अर्थापत्ति और अभाव को भी प्रमाण मान लिया और इस प्रकार प्रमाण के छः भेद हो गए। मीमांसा दर्शन के आचार्य मानते हैं कि प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति के मूल में एक अदृष्ट शक्ति विद्यमान रहती है। इस अदृष्ट शक्ति के कारण ही कार्य की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार मीमांसा-दर्शन के आचार्यों ने एक अदृष्ट शक्ति की कल्पना की, जिसे अपूर्व कहा गया। आत्मा को शरीर, प्राण, बुद्धि और इन्द्रियों से अलग नित्य तथा विभु पदार्थ माना गया है। आत्मा स्वयं-प्रकाश और चेतन है। इस दर्शन के आचार्य वेदों को मनुष्य द्वारा रचित नहीं मानते, अपितु इन्हें अपौरुषेय एवं नित्य माना गया है। वेद के विधान को ही धर्म माना गया है। विहित कर्मों का पालन तथा निषिद्ध कर्मों का त्याग ही धर्म माना गया है। वैदिक कर्म चार प्रकार के स्वीकार किए गए हैं —— काम्य, निषिद्ध, नित्य और नैमित्तिक। फल की कामना से किया गया कर्म -- यज्ञ इत्यादि काम्य कर्म कहलाते हैं। अनिष्ट फल की प्राप्ति के लिए किया गया कर्म — सुरापान, ब्रह्म हत्या इत्यादि निषिद्ध कर्म के अन्तर्गत है। नित्य कर्म के अन्तर्गत संध्या, वन्दन इत्यादि आते हैं। किसी निमित्त के उद्देश्य से किया गया वेदों में प्रतिपादित कर्म निमित्त कर्म माना गया। मीमांसा दर्शन के अनुसार वैदिक-कर्मों के द्वारा ही मोक्ष को प्राप्त किया जा सकता है। मीमांसा दर्शन के आचार्यों ने अनेक देवी-देवताओं की परिकल्पना की और देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए

यज्ञों में उनके नाम की आहुतियाँ देने का विधान स्वीकार किया । निष्कर्ष यह है कि मीमांसा दर्शन में वैदिक-कर्म काण्ड को अत्यंत महत्वपूर्ण स्वीकार किया गया ।

4.1.2.6 <u>वेदान्त - दर्शन</u> :- वेदान्त का शब्दार्थ है वेद का अन्त । वेदों का अन्तिम भाग होने के कारण उपनिषदों को वेदान्त कहा जाता है । वेदों में जो विचार प्राप्य हैं, उन्हीं का परिपक्व रूप उपनिषदों में मिलता है । वेदों में बिखरे हुए आध्यात्मिक विचारों का संकलन करने के उद्देश्य से महर्षि बादरायण ने "वेदान्त-सूत्र" अथवा "ब्रह्म-सूत्र" की रचना की । महर्षि बादरायण का "ब्रह्म-सूत्र" अत्यंत संक्षिप्त है, इसलिए अनेक आचार्यों ने इस पर अपने अपने भाष्यों की रचना की । इस प्रकार शंकर, रामानुज, वल्लभ, मध्व, भास्कर, कण्ठ, श्रीपति, निम्बार्क, विज्ञान भिक्षु इत्यादि अनेक आचार्यों ने "ब्रह्म-सूत्र" की व्याख्या अपने-अपने ढंग से की और इस प्रकार वेदान्त-दर्शन में अनेक अभिमतों ---- अद्वैतवाद {शंकराचार्य} , विशिष्टा द्वैतवाद {रामानुज} शुद्धाद्वैतवाद {वल्लभ}, द्वैतवाद {मध्व}, भेदाभेदवाद {भास्कर}, शैवविशिष्टा-द्वैतवाद {कण्ठ}, शक्तिविशिष्टाद्वैतवाद {श्री पति}, द्वैताद्वैतवाद {निम्बार्क}, अविभागाद्वैतवाद {विज्ञान भिक्षु} का जन्म हुआ । इन सब में शंकराचार्य {788 ई0 - 820 ई0} का अद्वैतवाद अधिक प्रतिष्ठित हुआ । कवि धर्म सिंह निर्मला की कृतियों पर भी शंकराचार्य के अद्वैत-दर्शन का अत्यधिक प्रभाव लक्षित होता है । "नैष्कर्म्यसिद्धि", "बृहदारण्यकोपनिषद् -- भाष्यवार्तिक", "तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्यवार्तिक", दक्षिणामूर्तिस्तोत्रवार्तिक", "पञ्चीकरणवार्तिक", आदि के कर्ता सुरेश्वराचार्य अथवा मण्डन मिश्र, "पञ्चपादिका", विज्ञानदीपिका, प्रपञ्चसारतन्त्र की टीका के कर्ता पद्मपादाचार्य अद्वैत-दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं । शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म सत् , अद्वितीय, शुद्ध, विज्ञानघन, निर्मल, शान्त आदि-अन्त -रहित,

अक्रिय और सदैव आनंदस्वरूप है ।[1] ब्रह्म इस जगत् का कर्त्ता, पालक तथा संहारक है ,[2] यह ब्रह्म के तटस्थ लक्षण अथवा गुण है । वह त्रिकाल (भूतकाल, वर्तमान काल, भविष्य काल) की सीमा से परे है' वह ही ब्रह्म है । अद्वैत-दर्शन के अन्तर्गत "ब्रह्म" के लिए प्रायः "सत्" शब्द प्रयुक्त हुआ है ।"असत्" के अन्तर्गत जगत् के अन्य सभी पदार्थ आते हैं । इन पदार्थों का आरोप ब्रह्म पर होता है । माया की विक्षेप-शक्ति के कारण जो सृष्टि होती है, वह भ्रमयुक्त है। अन्य शब्दों में तत्व में तत्वों का आभास ही विवर्त्त है ।

माया ब्रह्म की एक अद्भुत शक्ति है । माया अव्यक्त नामवाली त्रिगुणात्मिका अनादि अविद्या ब्रह्म की परा शक्ति है । इस परा शक्ति से ही यह जगत् उत्पन्न हुआ है । ब्रह्म के समान उसकी माया को भी वेदान्त-दर्शन में अनिर्वचनीय माना गया है ।[3] "माया" को प्रायः अज्ञान अथवा अविद्या भी कहा जाता है । माया की दो प्रमुख शक्तियाँ हैं - आवरण और विक्षेप। माया का नाश तत्वज्ञान से होता है ।

जीवात्मा भी ब्रह्म की भाँति स्वयं प्रकाश, अनंत, चैतन्य स्वरूप है, परन्तु माया के भ्रम में पड़कर यह सद्-मार्ग से भटक जाती है । शंकराचार्य ने " ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः" कहकर जीवात्मा और ब्रह्म को परस्पर अभिन्न माना है । जीवात्मा स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर से निर्मित है । इस संबंध में डा० सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय का मत द्रष्टव्य है ——

---

1. अतः परं ब्रह्म सदद्वितीयं, विशुद्धविज्ञानघनं निरंजनम् ।
प्रशान्तमाद्यन्तविहीनमक्रियं, निरन्तरानन्दरसस्वरूपम् ।। 239 ।।
शंकराचार्य : विवेक चूडामणि(अनुवादक मुनिलाल), गोरखपुर, गीता प्रेस, 1983 ई० पृ० 78.

2. शंकराचार्य : विवेक- चूडामणि, पृ० 85.

3. सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो, भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो,महाद्भुतानिर्वचनीयरूपा ।। 111
शंकराचार्य : विवेक - चूडामणि, पृ० 37-38.

"इन्द्रियों के द्वारा जो स्थूल शरीर दिखाई पड़ता है, उनके भीतर एक सूक्ष्म शरीर होता है जो अंतःकरण, प्राण और इन्द्रियों का समूह है । मृत्यु से स्थूल शरीर का नाश होता है, सूक्ष्म शरीर का नहीं । सूक्ष्म शरीर आत्मा के साथ दूसरे स्थूल शरीर में चला जाता है।"[1] स्थूल शरीर को आत्मा मानना, इन्द्रियों को आत्मा मानना अध्यास है ।

जगत् के जन्म का कारण ब्रह्म की माया है । सर्वप्रथम सूक्ष्म, फिर स्थूल और फिर स्थूलतर से स्थूलतम की ओर जगत् का विकास धीरे-धीरे हुआ । जिस प्रकार मिट्टी का कार्य होने पर भी घड़ा मिट्टी से अलग नहीं है, इसी भाँति यह जगत् भी ब्रह्म ही है, उसकी अपनी कोई सत्ता नहीं है । डा० उमेश मिश्र के अनुसार जगत् के विकास में सर्वप्रथम अति सूक्ष्म भूतों —— आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी का आविर्भाव हुआ । इन पाँच भूतों का पुनः पाँच प्रकार से संयोग हुआ, जिससे पाँच स्थूल भूतों का जन्म हुआ । अद्वैत दर्शन में यह प्रक्रिया "पंचीकरण" कहलाती है ।[2] उत्पन्न पाँच स्थूल भूतों में सत्व, रजस् और तमस् तीनों गुण क्रमशः धीरे-धीरे आ जाते हैं । पाँचों में जब सत्व की प्रधानता हुई, तो आकाश से श्रोत्र, वायु से त्वक्, तेजस (अग्नि) से चक्षु, जल से रसना और पृथ्वी से घ्राण की उत्पत्ति हुई । इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध का ज्ञान हुआ । सत्व गुण की बहुलता से ही बुद्धि और मनस् का जन्म हुआ । पाँचों स्थूल भूतों में रजस् गुण की प्रधानता के कारण आकाश से वाग् -इन्द्रिय, वायु से हाथ इन्द्रिय, अग्नि से पैर-इन्द्रिय, जल से पायु इन्द्रिय तथा पृथ्वी से उपस्थ इन्द्रिय का जन्म हुआ । इन पाँच कर्म-इन्द्रियों में प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान वायु का निवास हुआ । इस प्रकार 5 ज्ञानेन्द्रियों, 5 कर्मेन्द्रियों, 5 वायु, 1 मनस्, 1 बुद्धि के संयोग से इस जगत् में सूक्ष्म शरीर की उत्पत्ति हुई । स्थूल शरीरों की उत्पत्ति चार

---

1. डा० सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय : भारतीय-दर्शन पृ० 252.
2. डा० उमेश मिश्र : भारतीय - दर्शन, पृ० 365.

से हुई । जरायुज -- मनुष्य इत्यादि, जरायु से उत्पन्न हुए, अण्डज-- पक्षी, नाग आदि, अण्डों से उत्पन्न हुए, स्वेदज — मच्छर, जुंआ आदि, स्वेद से उत्पन्न हुए, उद्भिज्ज — वृक्ष, लताएँ आदि पृथ्वी फोड़कर उत्पन्न हुए । इस प्रकार धीरे-धीरे जगत् का विकास सूक्ष्म से स्थूलतर की ओर होता गया ।

आत्मज्ञान की चरम-सीमा ही मुक्ति अथवा ब्रह्मानुभूति है । मुक्ति के संबंध में डा० पारस नाथ द्विवेदी का मत द्रष्टव्य है ---"अखण्ड ब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर जब अज्ञान और उसके कार्य जगत् का नाश हो जाता है तो जगत् के अन्तर्गत रहने वाली अखण्डाकाराकारित चित्तवृत्ति भी नष्ट हो जाती है । उस समय केवल ब्रह्ममात्र ही शेष रहता है । जीव और ब्रह्म का तादात्म्य हो जाता है, इसे ही वेदान्त में मुक्ति कहते हैं ।"[1] मुक्ति दो प्रकार की होती है --- जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति । जब आत्म-ज्ञानी जीव जीवित रहते हुए समस्त जगत् के बंधनों से मुक्त हो जाता है, उसे जीवन्मुक्ति कहते हैं । शरीर के समाप्त होने के बाद ही जीवन्मुक्त जीव, विदेहमुक्ति को प्राप्त कर सकता है । आदि शंकराचार्य ने मुक्ति प्राप्त करने के लिए साधन-चतुष्टय का मार्ग अत्यंत महत्वपूर्ण माना है ।

साधन-चतुष्टय के अन्तर्गत नित्यानित्यवस्तु-विवेक, इहामुत्रार्थ भोग-विराग, शमदमादि-साधन-संपत तथा मुमुक्षुत्व चार साधन आते हैं ।[2] ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है, इस तथ्य का ज्ञान ही नित्यानित्यवस्तु-विवेक है । इहामुत्रार्थ भोग-विराग के अन्तर्गत लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार के भोगों का परित्याग करना पड़ता है । शमदमादि साधन-संपत् के अन्तर्गत शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरति, तितिक्षा छः साधनों से युक्त होना पड़ता है । मन का संयम, इन्द्रियों का निग्रह, शास्त्रों के प्रति श्रद्धा, चित्तवृत्ति को ज्ञान के साधन में लगाना, विक्षेपकारी

---

1. डा० पारस नाथ द्विवेदी : भारतीय-दर्शन पृ० 315.

2. आदौ नित्यानित्यवस्तुविवेकः परिगण्यते ।,
इहामुत्रफलभोगविरागस्तदनन्तरम् ।। 19।।,
शमादिषट्कसम्पत्तिर्मुमुक्षुत्वमिति स्फुटम् ।,
शंकराचार्य : विवेक चूडामणि, पृ० 12.

कार्यों से विरक्ति, शीत और उष्णता सहन करने का अभ्यास क्रमशः षट्-सम्पत्ति स्वीकार की जाती है। मुमुक्षुत्व साधन में मोक्ष-प्राप्ति के लिए साधक को दृढ़-संकल्प वाला होना पड़ता है।

साधन-चतुष्टय के अतिरिक्त साधक को ब्रह्म-ज्ञानी गुरु की भी आवश्यकता पड़ती है। ब्रह्म ज्ञानी गुरु के उपदेशों को सुनना श्रवण, उपदेशों पर युक्तिपूर्वक विचार करना मनन तथा उपदेशों में अभिव्यक्त सत्यों का अभ्यास निदिध्यासन कहलाता है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन के बिना मुक्ति बहुत कठिन है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि वेदान्त-दर्शन वेदों, उपनिषदों तथा गीता-आदि अन्य दार्शनिक ग्रंथों से अनुप्राणित है।

4.2 "हरि अष्टक सतसैया" में आगत दार्शनिक एवं धार्मिक विचार :-

4.2.1 परमात्मा :- भारतीय-दर्शनों में परमात्मा के दो स्वरूपों-निर्गुण तथा सगुण को स्वीकार किया गया है। आलोच्य कृति "हरि अष्टक सतसैया" में कवि ने प्रायः परमात्मा के निर्गुण स्वरूप को ही स्वीकार किया है, परन्तु कहीं कहीं सगुण स्वरूप का भी प्रतिपादन मिलता है। कवि ने अपने ध्येय निर्गुण ब्रह्म के लिए प्रायः "चिद" शब्द का प्रयोग किया है। "चिद" का अर्थ है "चैतन्य" अर्थात चैतन्य-स्वरूप-ब्रह्म। "चिद" का स्वरूप एक विवादास्पद विषय है। कोई चिद को एक मानता है तो कोई राव, कोई लघु आकार वाला मानता है तो कोई दीर्घ आकार वाला, कोई उसके सृष्टापालक-संहारक रूप को मानता है तो कोई स्थिर स्वरूप को मानता है। कवि चिद के चेतन स्वरूप को पाँच भूतों — जल, अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी से निर्मित प्रकृति के कण कण में विद्यमान मानता है यथा ——

"चिद बिन्दु ही की जोति जो, सब मो सोई लेख।
जल थल ससि रवि मो लखो, अनल अनिल मो पेख।।"[1]

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्टक सतसैया, छंद संख्या 17.

"चिद्" शब्द का प्रयोग कवि पर सांख्य वेदान्त-दर्शन के प्रभाव को सूचित करता है । सांख्य-दर्शन में "चिद" शब्द का प्रयोग चैतन्य स्वरूप पुरुष के अर्थ में हुआ है जैसा कि "चिदवसा नो भोग :"[1] जैसे सूत्र से प्रकट होता है । योग-दर्शन के अनुसार कैवल्य की स्थिति में पुरुष जिस अवस्था में वर्तमान रहता है, उसे "चिति" कहा जाता है ।[2] वेदान्त-दर्शन के अनुसार ब्रह्म का "चिद्" विशेषण उसकी ज्ञान एवं प्रकाशमयता का द्योतक है[3]। इसीलिए ब्रह्म को "बृहदारण्यकोपनिषद्" में "ज्योतिषां ज्योतिः"[4] कहा गया है । यहाँ प्रकट है कि कवि वेदान्त-दर्शन के अनुसार "चिद्" शब्द का प्रयोग कर रहा है ।

कवि के अनुसार "ध्याता-ध्यान-ध्येय" का कारण भी "चिद्" ही है —

"ध्याता ध्यान बखान चिद, पुना ध्येय चिद जोइ ।
या उपाधि के मेल से, भिन्न भिन्न चिद होइ ।। [5]

कवि द्वारा अभिव्यक्त ध्याता-ध्यान-ध्येय पर शंकराचार्य के अद्वैत-दर्शन का प्रभाव लक्षित होता है [6] श्री बलदेव उपाध्याय ने भी उपर्युक्त तथ्य का अनुमोदन किया है । [7]

---

1. रमाशंकर भट्टाचार्य (संपादक): सांख्यसूत्रम्, दिल्ली, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1977 ई0 पृ0 66.
2. डा0 राममूर्ति शर्मा : अद्वैत वेदान्त, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1973 ई0 पृ0 33.
3. डा0 राम मूर्ति शर्मा : अद्वैत-वेदान्त, पृ0 33.
4. बृहदारण्यकोपनिषद, 4-4-16.
5. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्टक सतसैया, छंद संख्या 20.
6. शंकराचार्य : विवेक चूडामणि, पृ0 79.
7. बलदेव उपाध्याय : श्री शंकराचार्य, इलाहाबाद, हिंदुस्तानी एकेडेमी, 1950 ई0, पृ0 244.

अनेक स्थलों पर कवि ने ब्रह्म के लिए "हरि" शब्द भी प्रयुक्त किया है यथा —

"आ पीरा वहि हरि हरैं, जिह पीरा नहि कोइ ।
तंति धारौं ताहि मन, दुर्जा परि नहि होइ ।।"

हरि चित विभु नभ सो लखो, लखो बेखा मै नांहि ।
या सम   याही है अखे, लखे अखे हुइ वाहि ।।
हरि अनंत तिह अंत नहि, भनत अनंत अनंत ।
मुनि जन भन श्रुति गन भनत, नहि पुनि इदं भनंत ।।"[1]

कवि द्वारा प्रयुक्त "हरि" शब्द भी ब्रह्म की ओर ही संकेत करता है । कवि वेदान्तियों की तरह ब्रह्म की अनन्तता, विभुता, अनिर्वचनीयता तथा "नेति नेति" के रूप में व्यक्त अनिर्वचनीयता में विश्वासी है । अद्वैत-दर्शन के अनुसार "वह [ब्रह्म] सत्य, ज्ञान और अनन्त है, वह समस्त उपाधियों से शून्य होने से अनिर्वचनीय और अज्ञेय है । वह अवाङ्मनसागोचर है । वह उपास्य-उपासक के भेद से परे है । उपनिषदों में ब्रह्म को "नेति नेति" शब्दों के द्वारा व्यवहार किया गया है ।"[2]

कवि के अनुसार भी ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्त है यथा —

"सत्यं ग्यान अनंत जो, पुन चिद आनद जोइ ।
सो तउ मो ते भिन्न नहि, कहो भिन्न किम होइ ।।"[3]

चूंकि सम्पूर्ण आलोच्य कृति स्फुट दोहों में मुक्तकीय शैली में लिखी गई है, इसलिए कवि ब्रह्म के स्वरूप को एक स्थान पर अभिव्यक्त नहीं कर सका है, कवि का मत उसकी एक अन्य कृति "सद्गुरुप्रकाश" में दृष्टव्य है----

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 1-2-3.
2. डा० पारसनाथ द्विवेदी : भारतीय - दर्शन, पृ० 307.
3. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 605.

"सत चित आनंद सुरूप सुप्रकास जाको,
सम सब ही के उर अंतर रहत है ।
अचल अखंड अज अक्रिय अनंत अत,
अदभुत अरूप इंद्री मन न गहतु है ।
निर विकार निरधार निरविकलप निराकार,
कूटवत निरगुन निरंतर लहितु है ।
ऐसे ब्रह्म को माने देह को अनित्त जाने,
पढंत स्यामे ग्यान याही को कहत है ।।"[1]

जैसा कि हमने पहले कहा है कहीं कहीं कवि ने परमात्मा के सगुण स्वरूप का भी विवरण दिया है । कवि अवतारवाद का समर्थक है परन्तु अवतारों का कारण, कवि निर्गुण परमात्मा अर्थात चिद् को ही स्वीकार करता है ---

"चिद ही लीला तनु धरे, धर धर धर जब होइ ।
जोगी धर नट्टादि धर, तिह अदभुत है कोइ ।।"[2]

"भगवद्गीता" में भी इसी अभिमत का अनुमोदन है ।[3] कवि कर्म सिंह निर्मला के अनुसार चिद् के कारण ही कूर्म अवतार हुआ,[4] धरती की रक्षा के लिए वाराह अवतार और प्रहलाद की रक्षा के लिए नरहरि अवतार हुआ,[5] वामन तथा परशुराम का अवतार हुआ,[6] रघुपति (राम) और यदुपति

---

1. कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, पृ0 16.
2. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्ट सवैया, छंद संख्या 6.
3. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
   अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
   डा0 राधाकृष्णन् (सम्पादक) श्री भगवद्गीता पृ0 156.
4. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्ट सवैया, छंद संख्या 7.
5. वही , छंद संख्या 8
6. वही , छंद संख्या 9

(कृष्ण) का अवतार हुआ ।[1] एक अन्य स्थल पर कवि द्वारा बड़े दीन-भाव से सगुण परमात्मा को "हरि" तथा "गोपाल" कहकर इस जगत् के बन्धन काटने का अनुरोध किया गया है यथा ---

"नाम तुमारो दयाल है, सुनियै है गोपाल ।
तारो अब तारे बने, नह झझकन को काल ।।
पतितन को पावन कहैं, टेरतहो दिन रात ।
मुझ हरि अब तारों, नही विसर गई वह बात ।।"[2]

अधिकांश निर्मल संतों ने परमात्मा के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों का चित्रांकन अपनी कृतियों में किया है, कवि कर्म सिंह निर्मला भी इस परम्परा से अछूता नहीं रहा है, यथा ---

"आदि से आदि सत्त है जोई । सच्चिदानंद पछानो सोई ।
सरब रूप सत ऐ ही जानो । निगुन सगुन नह भिन्न पछानो।।"[3]

उपर्युक्त कथन में कवि ने परमात्मा के निर्गुण और सगुण रूप को अभिन्न स्वीकार किया है । अद्वैत- वेदान्त के प्रवर्तक शंकराचार्य ने भी अपने भाष्य-ग्रंथों में ब्रह्म के निर्गुण तथा सगुण दोनों रूपों का प्रतिपादन किया है ।[4] डा० राममूर्ति शर्मा के अनुसार -- "शंकराचार्य ने निर्गुण और सगुण ब्रह्म के विरोध के समाधान के लिए समन्वयमूलक दर्शन की स्थापना की थी ।"[5] अतः कवि द्वारा प्रतिपादित परमात्मा के निर्गुण और सगुण रूपों की अभिन्नता, शंकराचार्य के समन्वयमूलक-दर्शन से प्रभावित प्रतीत होती है ।

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्ट सतैया, छंद संख्या 10.
2. वही , छंद संख्या 92-93.
3. कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, पृ० 69.
4. ब्रह्म सूत्र शांकर भाष्य, 4-3-14.
5. डा० राममूर्ति शर्मा : अद्वैत वेदान्त, पृ० 197.

4.2.2 जीवात्मा :- जीवात्मा एक नित्य चेतन प्राणी है, वह परम अविकार ब्रह्म है जो उपाधियों से आवृत होने पर जीव-रूप में लक्षित होता है। श्री बलदेव उपाध्याय के मतानुसार — "वह चैतन्य जो अन्तःकरण के द्वारा अवच्छिन्न होता है, "जीव" कहलाता है।"[1] डा० पारसनाथ द्विवेदी के अनुसार - "बुद्धि, अहंकार, मन, इन्द्रिय, शरीर की उपाधियों से परिच्छिन्न आत्मा ही जीव है।"[2] शंकराचार्य के अनुसार शरीर और इन्द्रियों का स्वामी कर्म फलों का भोक्ता आत्मा जीव है।[3] "तत्वमसि" तथा "अहं ब्रह्मास्मि" आदि वाक्य अद्वैत वेदान्त के सार हैं। इनसे जीव और ब्रह्म की एकरूपता का ज्ञान होता है। वेदान्त के इस सिद्धान्त से प्रभावित होकर कवि ने कहा है ——

"चिद तों चिद ही है लखो, जीहूं चिद है जान।
होइ न इनको एकता, को द्वै इक मे मान।।"[4]

अन्य शब्दों में जीव ही चिद् है और चिद् ही जीव है। अद्वैत वेदान्तियों के मतानुसार — "प्रत्येक जीव का मूल स्वरूप आत्मा ("अर्थात चिद्) है और यह आत्मा प्रत्येक जीव में ब्रह्म रूप है।"[5] इसीलिए कवि जीव और ईश अथवा ब्रह्म को अभिन्न मानता है ——

---

1. बलदेव उपाध्याय : शंकराचार्य, पृ० 252.
2. डा० पारसनाथ द्विवेदी : भारतीय - दर्शन, पृ० 308
3. "अस्ति आत्मा जीवाख्यः शरीरेन्द्रियपञ्जराध्यक्षः : कर्मफलसम्बन्धी च"
   ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य, 2-3-17.
4. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्टक सतसैया, छंद संख्या 5.
5. डा० राममूर्ति शर्मा : अद्वैत वेदान्त, पृ० 154-155.

"जीव ईस को भिन्न गन, नह चिद इक जो मान ।
वाह समझे ते लखो किम, होवै मन की हान ।।"[1]

एक अन्य स्थल पर कवि ने जीव और ईश को अभेद न मानने वाले जीव को आत्म-घात के पाप का भागी माना है ।[2]

अद्वैत दर्शन के अनुसार ईश्वर और जीव दोनों चैतन्य-रूप हैं, दोनों ही का कारण शरीर है, दोनों ही ब्रह्म का प्रतिबिंब हैं ।[3] कवि ने भी अद्वैत-दर्शन के इस प्रतिबिंबवाद का अनुमोदन किया है यथा --

"जीव ईस प्रतिबिंब जिह, सो चिद रवि सो जान ।
सोई इक तब होत है, जब उपाधि की हान ।"[4]

उपर्युक्त कवि के कथन के अनुसार जीव और चिद् तभी एकाकार होते हैं, जब उपाधि की हानि होती है । 'उपाधि अविद्या अथवा माया अथवा अज्ञान ही है । इस उपाधि के संबंध में शंकराचार्य का अभिमत है कि जीव और ब्रह्म का विरोध उपाधि के कारण और यह उपाधि कुछ वास्तविक नहीं है । ईश्वर की उपाधि कुछ महत्तत्वादि की कारण रूपा माया है तथा जीव की उपाधि कार्य रूप पंचकोश है ।[5] इसी संबंध में अद्वैत-वेदान्त के मत को स्पष्ट करते हुए डा० राममूर्ति शर्मा का कथन है -- 'जीव और आत्मा के एक होते हुए भी जीव को आत्मरूपता के बोध के न होने का कारण यह है कि वह अविद्याजन्य विभिन्न उपाधियों से आवृत है । अविद्या की निवृत्ति होने पर जीव-आत्मरूपता को ही प्राप्त होता है । आत्मरूपता की यह स्थिति ब्रह्मात्मता की

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 507.
2. वही , छंद संख्या 569.
3. पारस नाथ द्विवेदी : भारतीय-दर्शन, पृ० 309.
4. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 503.
5. तयोर्विरोधोऽयमुपाधिकल्पितो न वास्तवः कश्चिदुपाधिरेषः ।
ईशस्य माया महदादिकारणं जीवस्य कार्यं शृणु पञ्चकोशम् ।
शंकराचार्य : विवेक चूडामणि, पृ० 80.

स्थिति है।[1] कवि ने भी अपने एक दोहे[2] में इसी मत का अनुमोदन किया है कि (अविद्याजन्य) उपाधि की हानि से ही जीव ब्रह्म में एकाकार अर्थात् ब्रह्मात्मता की स्थिति को प्राप्त करता है।

अद्वैत-वेदान्त में जीवात्मा के दो पिंड- अथवा शरीर स्वीकार किए गए हैं -- स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर। श्री भगवद्गीता में भी जीवात्मा के यही दो शरीर माने गए हैं।[3] स्थूल शरीर चार प्रकार का होता है - जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज। यह मूलभूत पाँच महाभूतों -- आकाश, जल, वायु, अग्नि और पृथ्वी से निर्मित हैं। कवि कर्म सिंह निर्मला ने भी स्थूल शरीर के यही पाँच कारण स्वीकार किए हैं।[4] स्थूल शरीर का आविर्भाव और तिरोभाव होता है।[5] मोक्ष-प्राप्ति के बाद ही ये दोनों भाव समाप्त होते हैं। इसीलिए स्थूल शरीर के संबंध में कवि का कथन है-----

"काचे मठ सो तन लखो, पुन लख इन लघु नीव।
जो यामे मद रहयो वह, कहो कवन सो थीव।।"[6]

एक अन्य स्थल पर कवि राजा बलि, ऋषि दधीचि तथा राजा हरिश्चंद्र की भाँति इस स्थूल तन के प्रति मोह का परित्याग करने के पक्ष में है।[7]

---

1. डा० राममूर्ति शर्मा : अद्वैत वेदान्त, पृ० 155.
2. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 503.
3. देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
   तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।। 13 ।।
   डा० राधाकृष्णन् (सम्पादक) :भगवद्गीता, पृ० 110.
4. पंचभूत थूल कारन। पंचीकरन तिहं करो उचारन।
   सूखम तन को जो अभिमानी। थूल तन को सोई जानी।। 108 ।।
   कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, पृ० 30.
5. उद्धृत डा० पाल डायसन:वेदान्त-दर्शन (अनुवादक संगमलाल पाण्डेय) लखनऊ, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1971 ई०,पृ० 275.
6. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 261.
7. वही ,छंद संख्या 282

जिस प्रकार "भगवद्गीता" में पुनर्जन्म में विश्वास अभिव्यक्त किया गया है,[1] उसी प्रकार इस कृति में कवि ने भी बार बार शरीर धारण करने में अपना विश्वास प्रकट किया है यथा ---

"सद सद चिद जो इम सुने, सो किम धर पुन गात ।"[2]

अद्वैत-वेदान्त में सूक्ष्म शरीर 17 अंगों से निर्मित स्वीकार किया गया है । 17 अंगों के अन्तर्गत पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ - श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण, पाँच कर्मेन्द्रियाँ --- वाग् , हाथ, पैर, प्रजनन इन्द्रिय और गुदा, पाँच प्राण वायु --- ..., प्राण, अपान, व्यान, उदान तथा समान, एक मन और एक बुद्धि आते है । कवि ने भी अन्य वेदान्तियों की भाँति सूक्ष्म शरीर के इतने ही अंग स्वीकार किए हैं ।[3] कवि ने सूक्ष्म शरीर को लिंग शरीर भी कहा है ।[4] आलोच्य कृति में कवि ने इस प्रकार का कोई विस्तृत दार्शनिक विवेचन नहीं किया है, फिर भी एक स्थल पर मन अर्थात् सूक्ष्म शरीर और तन अर्थात् स्थूल शरीर की तुलना अवश्य की है ---

"कांचे मन है साच तनु, साचे मन हैं कांच ।
इनमें साचे कौन है, कर विचार मन साच ।।"[5]

"मनस्" को परिभाषित करते हुए डा० राममूर्ति शर्मा का कथन है --- "आन्तरिक भावनाओं की करणभूत इन्द्रिय अन्तःकरण में जब "मैं चिद्रूप हूँ, मैं देह हूँ" --- इस प्रकार की संकल्पयुक्त अथवा "मैं पढ़ूँ या न पढ़ूँ" --

---

1. बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ।। 5 ।।
डा० राधाकृष्णन् [सम्पादक] : भगवद्गीता, पृ०155.

2. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 474.

3. पंच प्राण इंद्रि दसं, मन बुधि पुनि मान ।
इन सत्रह को ग्रंथ जो, सो सूक्ष्म तन जान ।।
कर्म सिंह निर्मला: सद सुख प्रकाश , पृ0 27.

4. वही , पृ0 27.

5. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 264.

इस प्रकार की विकल्पात्मक वृत्ति उत्पन्न होती है तो उसे मन कहते हैं।"[1] इस प्रकार की विकल्पात्मक वृत्ति स्थूल शरीर के कारण ही है। कवि ने मन और तन के पारस्परिक संबंध को बहुत सुन्दर रूपक में अभिव्यक्त किया है यथा—

"या मन केहरि सो सखो, तन बन मो सुन मीत।
जो यांको नीके हने, सो विचरे निरभीत ।।"[2]

आलोच्य कृति में कवि ने "मनस्" का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया है, परन्तु मन का वैसा विवेचन "श्रम" के अन्तर्गत करना अधिक तर्क संगत होगा।

सारांश में हम यह कह सकते हैं कि कवि द्वारा अभिव्यक्त जीवात्मा संबंधी विचार शंकराचार्य के अद्वैत-वेदान्त से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित हैं। उसका यह चिन्तन भारतीय वेदान्त-चिन्तन की परम्परा के ही अनुरूप है।

4.2.3. <u>जगत्</u>

व्युत्पत्ति की दृष्टि से जगत् एक विशेषण शब्द है जो संस्कृत की "गम्" धातु से क्विप् प्रत्यय लगकर द्वित्व होकर निर्मित हुआ है।[3] जगत् का शब्दार्थ है गतिशील। जगत् के संबंध में विभिन्न दर्शनों में विभिन्न अभिमत प्रकट किए गए हैं। न्यायवैशेषिक आचार्यों ने इसे अचेतन परमाणुओं का संघात माना है; सांख्य-दर्शन के आचार्यों ने इसे त्रिगुणमयी मूलप्रकृति का विकार माना; विशिष्टाद्वैतवाद के आचार्यों ने इसे चेतन पदार्थ से आविर्भूत माना;

---

1. डा० राममूर्ति शर्मा : वेदान्तसार : पृ० 221.
2. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 340.
3. शिवरामवामन आप्टे : संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ० 393.

बौद्ध - विज्ञानवादियों ने इसे स्वप्न-सदृश माना । छान्दोग्य-उपनिषद् में "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"[1] कहकर सब कुछ अर्थात् जगत् को ब्रह्ममान लिया गया । जगत् की सभी वस्तुओं को कवि ने भी "चिद्" ही माना है यथा ---

"जो जो जग मो पेखिये, सो सो चिद ही जोइ ।
ता बिन जोइ पेखिये, सोइ नाही होइ ।।"[2]

शंकराचार्य के कथनानुसार मिट्टी का कार्य होने पर भी घड़ा उससे पृथक नहीं होता, क्योंकि सब ओर से मृत्तिका रूप होने के कारण घड़े का रूप मृत्तिका से पृथक नहीं है ।[3] कवि भी इस जगत् का आदि और अन्त चित्त अथवा "चिद्" को ही मानता है । इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए कवि ने भी घड़े और मिट्टी का ही एक दृष्टांत प्रस्तुत किया है यथा---

"चित ही चित चित जानिये, आदि अंत जग माहि ।
यामो पिखो द्रिस्टांत इक, जिउ घट मो मिट्र आहि ।।"[4]

उपर्युक्त अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि यह जगत् ब्रह्म का ही रूप है । चूंकि ब्रह्म सत् है, इसलिए जगत् भी सत् होना चाहिए । वास्तव में ऐसा नहीं है । शांकर वेदान्त के "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" अनुसार ब्रह्म सत् है और जगत् मिथ्या है । कवि ने इस जगत् को असत्य माना है यथा ---

"जो जग को साचो भने, भने साच किम वाह ।
जोइ वाह असाच भन, भन असाच किम ताहि ।।"[5]

---

1. छान्दोग्योपनिषद् , 3-14-1
2. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 594.
3. मृत्कार्यभूतोऽपि मृदो न भिन्न : कुम्भोऽस्ति सर्वत्र तु मृत्स्वरूपात्
   न कुम्भरूपं पृथगस्ति कुम्भः , कुतो मृषा कल्पितनाममात्र ।।"230 ।।
   शंकराचार्य : विवेक-चूडामणि, पृ0 75.
4. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 466.
5. वही , छंद संख्या 304.

शंकर वेदान्त में जगत ही नहीं, अपितु सभी पदार्थ "असत्" माने गए हैं।[1] इस तथ्य का कवि पर पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। कवि के मतानुसार जगत की सभी विषय-वस्तुएं "असत्" अथवा क्षण-भंगुर हैं, इसलिए कवि ने जगत् की तुलना कच्चे रंग से की है यथा --

"याह जगत के रंग की, जो लख फूले आप।
ताँहि आप सद किम रहे, रतबु रंग सहाब।।"[2]

कवि ने जगत् की तुलना जल की लहर से भी की है।[3] जगत् और उसकी अन्य विषय-वस्तुएं "असत्" होते हुए भी "सत्" प्रतीत होती है, ऐसा अध्यास के कारण है। वस्तु में अविद्यमान वस्तु का आरोप करना ही अध्यास है। सीपी में रजत का आभास होना अध्यास के कारण ही है।[4] कवि ने भी जगत्-प्रतीति के लिए सीपी और रजत का सहारा लिया है यथा --

"जगत रजत कलधत लखो, चित सुकती सत जान।
याह लख जो उलट लख, सुधी ताँहि किम मान।।"[5]

जगत-प्रतीति प्रत्यक्षीकरण को स्पष्ट करने के लिए वेदान्तियों ने 'मरुस्थल में मृग-तृष्णा' का सहारा भी लिया है।[6] कवि का इस संबंध में कथन है------

"जगनिध की जो लहर गन, म्रिग जल लहर समान।
कोई याँको गह्यो चद, सो म्रिग सो सुख जान।।"[7]

---

1. उमेश मिश्र : भारतीय-दर्शन, पृ0 355.
2. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 299.
3. वही , छंद संख्या 292.
4. डा0 पारसनाथ द्विवेदी : भारतीय दर्शन, पृ0 300.
5. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 322.
6. डा0एस0एन0दासगुप्ता:भारतीय-दर्शन का इतिहास भाग-2(अनुवादक एम0पी0 व्यास), जयपुर, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, 1973 ई0 पृ0 4.
7. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 295.

इसी प्रकार का कवि का कथन एक अन्य स्थल पर भी दृष्टव्य है यथा--

"हरन ताल के जल समा, पेख ही जब पेख ।
पुन पेखन पेखन समा, देखत ही सुख देख ।।"[1]

माया की विक्षेप-शक्ति के कारण जो सृष्टि होती है वह भ्रान्ति है । ब्रह्म को अधिष्ठान मान कर जितने कार्य जगत् में होते हैं, वे ही नहीं, अपितु समस्त जगत् ही ब्रह्म का "विवर्त" है ।[2] कवि पर भी "विवर्त" का पर्याप्त प्रभाव देखा जा सकता है यथा ---

"निज अधिस्टान अग्यान ते, हुइ नाना आकार ।
ए विवरत परणम भ्रम, जाहु हरे सुख सार।।"[3]

शंकराचार्य के मतानुसार समस्त जगत् का अधिष्ठान ब्रह्म ही है । ब्रह्म ही माया शक्ति के कारण प्रपंच रूप जगत् का कारण है ।[4] माया शक्ति से युक्त ब्रह्म ईश्वर है । कवि कर्म सिंह निर्मला ने भी इस जगत् का कारण ईश्वर को ही स्वीकार किया है ----

"याहु जगत को हेतु है, उरन नाभि सो ईस ।
याह हेतु सो हेतु जो, बिपुल बुध्धि कर दीस ।।"[5]

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 305.
2. डा० उमेश मिश्र : भारतीय-दर्शन, पृ० 355.
3. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 428.
4. ब्रह्म सूत्र शांकर भाष्य, 1-3-19.
5. कर्म सिंह निर्मला:-हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 502.

मुण्डकोपनिषद् के मतानुसार ब्रह्म ऊर्णनाभ की भाँति अपने भीतर से ही सृष्टि करता है और इच्छा करने पर उसे पुनः स्वयं अपने भीतर समेट भी लेता है।[1] कवि का उपर्युक्त कथन सम्भवतः इसी अभिमत से प्रभावित लगता है। एक अन्य स्थल पर कवि का कथन है कि चिद् जलाशय की भाँति है और जग कमल की भाँति ——

"चिदसु जलासे बिन सुनो, जग कमलं कि किम होइ।"[2]

इस स्थल पर जगत् का कारण चिद् अर्थात ब्रह्म को माना गया है क्योंकि मायाविष्ट ईश्वर "चिद्" के कारण ही है। शांकर दर्शन में ईश्वर को जगत् का स्रष्टा कहा गया है। श्रुति में भी "एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय" आदि वाक्यों में परमेश्वर के अनेक रूपों में उत्पन्न होने की इच्छा का उल्लेख किया गया है। जिस प्रकार एक राजा अथवा महापुरुष जिसे अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुएँ सुलभ हैं, बिना प्रयोजन के किसी कर्म को करने में केवल लीला के लिए प्रवृत्त होता है या जैसे उच्छ्वास और प्रश्वास किसी बाह्य प्रयोजन के बिना ही स्वभावतः संभव है, उसी प्रकार परमात्मा ने अपने स्वभाव से और किसी प्रयोजन के बिना ही केवल लीला के लिए जगत् की सृष्टि की।[3] इसी अभिमत का समर्थन कवि ने किया है। इस सृष्टि की उत्पत्ति का प्रयोजन चिद्-प्रमादि अथवा चिद्विलास ही स्वीकार किया गया है ——

"आदि अंत मधि जगत के, जिह चिद बिन नह कोइ।
जगहुँ वाँहि प्रमादि से, सो तूं ही निज जोइ।"[4]

जहाँ तक जगत् की उत्पत्ति के क्रम का प्रश्न है कवि ने भी वेदान्त दर्शन की पंचीकरण-प्रक्रिया[5] के सिद्धान्त का अनुमोदन किया है यथा——

---

1. मुण्डकोपनिषद, खण्ड 1-मंत्र 7.
2. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 470.
3. डा० पाल डायसन : वेदान्त-दर्शन, पृ० 214.
4. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 560.
5. डा० राममूर्ति शर्मा : वेदान्त सार:, पृ० 58.

"ईस सकति से तत्त भय, भय सोइ पच्चीस ।
सीति भय को भय भयो, बिन सकति किम दीस ।।"[1]

यहाँ ईश-शक्ति से कवि का अभिप्राय: माया-शक्ति है । डा० रमाकान्त आँगिरस ने भी यही निष्कर्ष निकाला है कि "यह मायावी ईश्वर एक ऐन्द्रजालिक की तरह है जो अपनी माया शक्ति से जगत् का निर्माण करता है ।"[2] एक अन्य स्थल पर भी कवि ने पंचीकरण-प्रक्रिया की ओर संकेत किया है यथा --

"जाह सकति ते नभ भयो, तीति भय पुन चार ।
पुन पंच पंच्चीस भय, ताही को स्वद् धार।।"[3]

वेदान्त दर्शन के आचार्यों द्वारा प्रतिपादित पंचीकरण क्रिया के संबंध में डा० राममूर्ति शर्मा का कथन है ---- "एक एक को दो बराबर भागों में विभक्त करके फिर पहले अर्धांशों को चार चार भागों में बाँट कर तथा पंचभूतों के अर्धांश में अपने को छोडकर द्वितीयार्धांशों के चतुर्थांश को मिलाकर देने से पंचभूत पंच हो जाते हैं ।"[4] इस प्रकार पाँच स्थूल महाभूत बनते हैं । इन पाँच स्थूल महाभूतों से बीस मूल तत्त्व बनते हैं । इन बीस मूल तत्त्वों में पहले पाँच सूक्ष्म भूत मिलकर पच्चीस तत्व निर्मित होते हैं और यही पंचीकरण प्रक्रिया है । कवि ने एक अन्य कृति में पंचीकरण प्रक्रिया -संबंधी "अपना मत" विस्तृत रूप में अभी व्यक्त किया है जोकि वेदान्त-दर्शन में प्रतिपादित पंचीकरण प्रक्रिया से

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 501
2. डा० रमाकान्त आँगिरस : शांकर वेदान्त, एक अनुशीलन, दिल्ली, नटराज पब्लिशिंग हाउस, 1982 ई0,पृ0 137.
3. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 602.
4. डा० राममूर्ति शर्मा: वेदान्तसार , पृ0 59.

प्रभावित,प्रतीत होता है । कवि का कथन है --------

"प्रथमे पाँचो तत्त है जोई । एक एक के दो दो होई ।
याते दस ही भये तुबीने । मुख्य पाँच तब भिन्न कर कीने ।
रहे पाँच ताकि करि कीना । चार चार करि के प्रवीना ।
पाँचो मुख्य मे बीत मिलाए । पंचीकरण इम भाए सुहाए ।"[1]

सारांश में कहा जा सकता है कि जगत् और सृष्टि संबंधी कवि की मान्यताएँ वेदान्ती परम्परासे पर्याप्त प्रभावित हैं । इनमें अभिव्यक्ति-गत अन्तर तो हो सकता है, अनुभूति गत अन्तर बिलकुल नहीं है ।

4.2.4 माया

अद्वैत-दर्शन में "माया" अत्यंत महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में प्रतिपादित है। मायावाद के सिद्धान्त के बिना अद्वैत-वेदान्त की कल्पना भी नहीं की जा सकती, क्योंकि शंकराचार्य के अनुसार इसी माया के कारण ही ईश, जीव और जगत् का आविर्भाव हुआ है । ऋग्वेद में माया को इन्द्र अर्थात ब्रह्म की अलौकिक शक्ति माना गया है और इसी के द्वारा ब्रह्म अनेक रूपों के धारण कर्ता के रूप में माना गया है ।[2] श्वेताश्वतरोपनिषद् में प्रकृति को माया और परमेश्वर को मायी कहा गया है ।[3] यह प्रकृति सांख्य-दर्शन की प्रकृति से सर्वथा भिन्न मानी गई है । श्रीमद्भगवद्गीता में माया को बहुत शक्तिशाली माना गया और इसे जीत पाना बहुत कठिन स्वीकार किया गया है ।[4] डा० राममूर्ति शर्मा का माया के संबंध में कथन है— "ईश्वर की शक्ति का नाम माया है । माया सत् और असत् से विलक्षण होने के कारण अनिर्वचनीय है ।"[5] अविद्या, माया, अव्यक्त, प्रकृति, अज्ञान, आकाश एवं उपाधि,

---

1. कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, पृ० 31.
2. ऋग्वेद, 6-47-18.
3. श्वेताश्वतरोपनिषद, 4-9-10.
4. दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया । मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्तिते ।।
   डा० राधाकृष्णन् (सम्पादक) भगवद्गीता, पृ० 216.
5. डा० राममूर्ति शर्मा: वेदान्तसार, पृ० 222.

अज्ञान के पर्यायवाची शब्द हैं । कवि ने भी अपनी एक अन्य कृति में माया, अज्ञान और अविद्या को पर्यायवाची माना है ।[1] आलोच्य कृति में कवि ने माया के लिए प्रायः अज्ञान, अविद्या, अध्यास, उपाधि शब्दों का प्रयोग किया है । डा० सतीशचंद्र चेटर्जी का माया के संबंध में कथन है --- "इट इज़ ए पावर ऑफ गॉड, ऐण्ड एबसोल्यूटली डीपेन्डेंट ऑन इट ।"[2] कवि ने भी माया को स्वयं में कुछ न मानते हुए इसे चिद् पर आश्रित बतलाया है ।[3]

शंकराचार्य के मतानुसार जो अव्यक्त नामवाली त्रिगुणात्मिका अनादि अविद्या परमेश्वर की पराशक्ति है, वही माया है ।[4] कवि ने भी त्रिगुणात्मक -- सत् , रज, तम्, अज्ञान को ही छलमय माया माना है ।[5]

अद्वैतवेदान्तियों के अनुसार माया के प्रभाव या आवरण के कारण ब्रह्म पहले ईश्वर, उसके बाद जीव तथा अन्त में जगत् के रूप में भासित होता है ।[6] इसी अभिमत का प्रभाव कवि की आलोच्य कृति पर भी देखा जा सकता है यथा ---

---

1. कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, पृ० 22.
2. डा० सतीशचंद्र चटर्जी : एन इन्ट्रोडक्शन टू इंडियन फिलासफी, कलकत्ता, कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1984 ई० , पृ० 373.
3. माया आपते कछु नहि, चिद आस्रत ही आहि । या पर
   अद्भुत को कही, इक ते करू बहु चिद सोइ ।।

   कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, पृ० 22.
4. अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्ति- रनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा ।
   कार्यानुमेया सुधियैव माया- यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते ।। ।।0 ।।

   शंकराचार्य : विवेक चूडामणि, पृ० 37.
5. त्रिगुणातमक अग्यान जो, छलमय माया सोइ ।
   ब्रह्म आतम इक ग्यान ते, सह कारज हत होइ ।। 6 ।।

   कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, पृ० 21-22.
6. डा० हरवंश लाल शर्मा : भारतीय दर्शन-परम्परा और आदि ग्रन्थ, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1972 ई०, पृ०275.

"जीव ईस जिम शुध्ध भ्रम, तिम मै करौं बरवान ।
बुध्दि माइ जल भास पर , नभ भास जिउ मान।।"[1]

वेदान्तियों के अनुसार माया ईश्वर की सर्जक शक्ति है और जगत् का कारण है ।[2] कवि ने भी माया अथवा अज्ञान को ही जगत् का कारण माना है यथा --

"भ्रम को भ्रम को ईस ते, नह अध्यास बिन ईस ।
जऊ वाह ते है भयो, तऊन ता बिन दीस ।।"[3]

इसी प्रकार का अभिमत कवि ने इस आलोच्य कृति में अन्यत्र भी प्रकट किया ---

"बिन अध्यास किम जीव भ्रम, बिन अध्यास किम ईस ।
जाँह बिनाँ ए नाँह भ्रम, तिह बिन किम भ्रम दीस ।।"[4]

माया की दार्शनिक पृष्ठभूमि में "अध्यास" शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण है । वेदान्त में "अध्यास" का अर्थ है भ्रम ज्ञान । "जो वस्तु जिसमें नहीं है, उसको उस वस्तु में देखना अध्यास है । अध्यास अविद्यारूप है । शुक्ति में रजत एवं रज्जु में सर्प का भ्रम अध्यास रूप ही है ।"[5] माया के पर्यायवाची शब्द "अध्यास" के संबंध में कवि का कथन है------

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अकुष्ट सतसैया, छंद संख्या 556.
2. डा० पारसनाथ द्विवेदी : भारतीय- दर्शन, पृ० 298.
3. कर्म सिंह निर्मला: हरि अकुष्ट सतसैया, छंद संख्या 500.
4. वही , छंद संख्या 506.
5. डा० राममूर्ति शर्मा : वेदान्तसार: , पृ० 210.

"भ्रम अग्यान ते इम भयो, जिम रजु मो अहि आहि ।
जाँ अग्याँन ते है भयो, तिह समुझो मन माहि ।।"[1]

अविद्या निवृत्ति होने पर ही जीव मुक्ति लाभ करते हैं । जिन जीवों की अविद्या-निवृत्ति नहीं होती, वे मुक्ति-लाभ नहीं करते ।[2] कवि की भी यही मान्यता है कि अविद्या-माया को दूर करने के बाद ही जीव ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है -----

"माइ अविद्या भेद करि, ईस जीव भ्रम जोइ ।
पेख पेख तिह हार्यो, निज बिन पिख्यो न कोइ ।।"[3]

एक अन्य स्थल पर कवि ने वेदों के माध्यम से इसी मत का समर्थन किया है -----

"अविद्यादिक को हाँनि कर, जाँहि जानवो जाँन ।
सो तउ मो ते भिन्न नहि, बेद बेद यउ गाँन ।।"[4]

सारांश में कवि ने आलोच्य कृति में "माया" का विस्तृत - विवेचन नहीं किया है । छुट-पुट रूप में माया का उल्लेख जहाँ कहीं भी कवि ने किया है, उस पर वेदान्त-दर्शन द्वारा प्रतिपादित माया की छाप अवश्य देखी जा सकती है ।

4.2.5 मोक्ष

"मोक्ष" का पर्यायवाची शब्द "मुक्ति" है । संस्कृत में "मुच्" धातु से क्तिन् प्रत्यय लगाकर मुक्ति शब्द निर्मित होता है ।[5] मुक्ति

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदुष्ट सतसैया, छंद संख्या 494.
2. डा० राममूर्ति शर्मा : अद्वैत - वेदान्त, पृ० 156.
3. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदुष्ट सतसैया, छंद संख्या 601.
4. वही , छंद संख्या 597.
5. वामन शिवराम आप्टे : संस्कृत हिन्दी कोश, पृ० 804.

का अर्थ है – छुटकारा पाना । अन्य शब्दों में आवागमन के चक्र से छुटकारा पाना ही मुक्ति है । डा0 राममूर्ति शर्मा के मतानुसार व्युत्पत्ति के आधार पर आत्मबोध होने पर अज्ञानजन्य मिथ्या बंधन से छुटकारा पाने का नाम मुक्ति है ।[1] कैवल्य, निर्वाण, श्रेय, अपवर्ग आदि मोक्ष के पर्यायवाची शब्द हैं ।

वेदान्त-दर्शन के अनुसार अखण्ड ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान होने पर अखण्ड ब्रह्मविषयक अज्ञान का बाध होता है और फलस्वरूप अखण्ड ब्रह्म का साक्षात्कार होता है ।[2] मुक्ति के संबंध में शंकराचार्य का अभिमत है कि मुक्ति को पारमार्थिक, कूटस्थ, नित्य, आकाश के समान सर्वव्यापी, समस्तविक्रियाओं से रहित, नित्य तृप्त, निरवयव, स्वयंज्योतिस्वभाव कहा है । मोक्ष की स्थिति में धर्म और अधर्म अपने कार्य सुख-दुःख के साथ तीनों कालों में भी संबंध नहीं रखते । इस प्रकार रहित स्थिति को शंकराचार्य ने मोक्ष कहा है ।[3] एक अन्य स्थल पर शंकराचार्य का कथन है कि मोक्ष न योग से सिद्ध होता है, न सांख्य से, न कर्म से और न विद्या से । वह केवल ब्रह्मात्मैक्य (ब्रह्म और आत्मा की एकता के ज्ञान) से ही होता है, और किसी प्रकार नहीं ।[4] "तत्वमसि"[5] से अखण्ड ब्रह्मतत्व की चेतनता का बोध होता है । इसी प्रकार के मत का अनुमोदन कवि ने किया है कि "तत्वमसि" के ज्ञान के अभ्यास से ही मुक्ति प्राप्त की जा सकती है ।[6] डा0 पारसनाथ द्विवेदी के अनुसार जीव और ब्रह्म का तादात्म्य ही वेदान्त के अनुसार मुक्ति

---

1. डा0 राममूर्ति शर्मा : अद्वैत-वेदान्त, पृष्ठ 228.
2. डा0 राममूर्ति शर्मा : वेदान्तसारः, पृ0 126.
3. ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य, 1-1-4.
4. न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया ।
   ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिध्यति नान्यथा ।। 58 ।।
   शंकराचार्य : विवेक चूडामणि, पृ0 22.
5. छान्दोग्योपनिषद् , 6-8-7.
6. ततवमसि निज जान इम, जबै सु ग्यानी होइ ।
   परंपरा अभ्यास करि, जीवन मुक्ती सोई ।। 71 ।।
   कर्म सिंह निर्मला : सद गुरु प्रकाश, पृ0 68.

है ।[1] इस आलोच्य कृति में मुक्ति के संबंध में कवि का मत है कि जीव की चेतनता का ब्रह्म की चेतनता से तादात्म्य ही मुक्ति है यथा —

"चिद् में चिद् जो हो बनो, इही मुकति सुठ जोइ ।
जिम किम करके याह बह , जानो मेघी सोइ ।।"[2]

ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने पर जीव के हृदय की ग्रंथि खुल जाती है , सारे संशय दूर हो जाते है ।[3] इसी अभिमत का समर्थन कवि ने आलोच्य कृति में किया है यथा —

"बंध मोख तिह मो नही, पुन नह संसा कोइ ।
इइ जांको सख्यात चिद, सो सउ चिद ही जोइ ।"[4]

शंकराचार्य के मतानुसार असत् से निवृत्ति होने पर जीवात्मा को ब्रह्म की स्पष्ट प्रतीति अर्थात तत्त्व-ज्ञान अथवा आत्म-ज्ञान हो जाता है ।[5] अज्ञान की निवृत्ति से ब्रह्म के स्वरूप की प्राप्ति होती है और यही मुक्ति है, ऐसा कवि का विश्वास है ।[6] आलोच्य कृति में भी अनेक दोहो[7] में कवि ने इसी

---

1. डा० परस नाथ द्विवेदी : भारतीय - दर्शन पृ० 315.
2. कर्म सिंह निर्मला : हरि अकूट सतसैया, छंद संख्या 694.
3. भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
   क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।
   मुण्डकोपनिषद् , 2-2-8.
4. कर्म सिंह निर्मला : हरि अकूट सतसैया, छंद संख्या 619.
5. असन्निवृत्तौ तु सदात्मना स्फुटं , प्रतीतिरेतस्य भवेत्प्रतीचः
   ततो निरासः करणीय एवा - सदात्मनः साध्वहमादिवस्तुनः ।। 207 ।
   शंकराचार्य : विवेक चूडामणि, पृ० 68.
6. सस्व प्रापति एही गुनो, अग्यान निव्रिति जु होइ ।
   सस्व प्रापति मुकति गुन, अवर मुकति नह कोइ 22
   कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, पृ० 69.
7. कर्म सिंह निर्मला : हरि अकूट सतसैया, छंद संख्या 597, 601,662.

मत का समर्थन किया है । वेदान्त दर्शन का एक महत्वपूर्ण सूत्र है —
"अहं ब्रह्मास्मि," [1] जिसका अर्थ है मैं ही ब्रह्म हूं । जब जीव स्वयं में स्थित चैतन्य स्वरूप ब्रह्म को पहचान लेता है, कवि इसी को ब्रह्म की प्राप्ति मानता है । [2] उपर्युक्त अभिमत का समर्थन कवि ने आलोच्य कृति में भी किया है ——

"जो चिद तउ चिद होइगो, जउ चिद को हुइ ग्यान ।"[3]

यहाँ "ज्ञान" से कवि का अभिप्राय आत्म-ज्ञान से है । मोक्ष से संबंधित उपर्युक्त अध्ययन से हम इस परिणाम तक पहुँचते हैं कि मुक्ति के लिए आत्म-ज्ञान अनिवार्य है । आत्म-बोध, ब्रह्मानुभूति, तत्व-ज्ञान, चिद-ज्ञान आदि आत्म-ज्ञान के ही पर्यायवाची हैं ।

"आत्म- ज्ञान" से आत्म-आनंद की अनुभूति होती है और वैसे भी वेदान्त दर्शन में अभिव्यक्त मुक्ति आनंद रूप है । वह सांख्य-दर्शन की तरह शुष्क नहीं है । [4] इसीलिए कवि ने "आत्म-आनंद" के पर्यायवाची शब्द "निजानंद" को अपनी इस काव्य-कृति में महत्वपूर्ण स्वीकार किया है । कवि के अनुसार जो जीव निजानंद की ओर ध्यान नहीं देता उसका जीवन व्यर्थ है ——

"अहो चित्त गति ईस की, नर तन हूं को पाइ ।
निजानंद को नह लखे, लख्यो तांहि वृथा आइ ।।"[5]

---

1. बृहदारण्यकोपनिषद, 1-4-10.
2. भ्रम अग्यान को दूर करि, निज को ब्रह्म पछान ।
   एह ब्रह्म की प्रापती, उपनिषदों मैं मान ।। 72 ।।
   कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, पृ0 68.
3. कर्म सिंह निर्मला- हरि अद्भुट सतसैया, छंद संख्या 424.
4. डा0 राममूर्ति शर्मा : अद्वैत-वेदान्त, पृ0 229.
5. कर्म सिंह निर्मला : हरि अद्भुट सतसैया, छंद संख्या 486.

अपने निजी स्वार्थों को दूर करके निजानंद के स्वरूप को देखा जा सकता है । जो जीव ऐसा नहीं करता, उसका अस्तित्व इस जगत् में व्यर्थ ही है ---

"निजानंद को रूप लख, निज को करके दूर ।
जो नह ताँको लखोगे, तो भ्रम मो भ्रम भूर ।।"[1]

निजानंद के मनन के बिना काल अर्थात् मृत्यु जीव को नष्ट कर देता है--

"गुनी मुनी गनयौ भनैं, भनैं वेद पुन चार ।
निजानंद के मनन बिन, हनन करे जम धार ।।"[2]

जिस जीव को निजानंद का ज्ञान है, वह अद्भुत है । जिस जीव को निजानंद का ज्ञान नहीं है, उसको कुछ भी कहना कवि के अनुसार व्यर्थ है ---

"निजानंद को जाँनि जो, ताँको कहिये काह ।
जो ताँको नहि जानि है, ताँको कहिये काहि ।।"[3]

जिस प्रकार सोए हुए जीव के दुःख स्वप्न में दूर नहीं हो सकते, उसी प्रकार निजानंद के ज्ञान के बिना मुक्ति को प्राप्त नहीं किया जा सकता यथा ---

निजानंद के ध्यान बिन, कहो मुक्ति किम होइ ।
जिम किमहूँ जाग्रत बिनाँ, सुपन दुख्ख कट कोइ ।।"[4]

वेदान्त - दर्शन में मुक्ति के दो भेद स्वीकार किए गए हैं--- जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति ।

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 487.
2. वही , छंद संख्या 543.
3. वही , छंद संख्या .574.
4. वही , छंद संख्या 644.

जब जीव को शरीर रहते हुए ही ब्रह्मःतत्व अर्थात आत्म-तत्व का ज्ञान हो जाता है, तो उस अवस्था को जीवन्मुक्ति कहा गया है।[1] जब जीवन्मुक्त जीव का शरीरपात हो जाता है तो वह स्थिति विदेहमुक्ति है।[2] "सद सुख प्रकाश" में कवि ने भी मुक्ति के दो भेद स्वीकार किए हैं।[3] आलोच्य कृति में भी कवि ने जीवन्मुक्ति के स्वरूप को विवेचित किया है यथा---

"जिवन मुकति को रूप इम, मित नित जानो चीत ।
सोइ रह्यो वह जगत ते, चित मैं जागत नीत ।।"[4]

इसी संदर्भ में आगे चलकर कवि ने विदेहमुक्ति के संबंध में भी संकेत किया है यथा---

"जब ही त्यागे देह को, जह कह तग सुन मीत ।
हुइ विदमै तब ही, सुनो भने बेद ए गीत ।।"[5]

"सदसुख प्रकाश" में कवि" विदेहमुक्ति"को अधिक स्पष्ट करने में सफल हुआ है।[6] विदेहमुक्ति संबंधित कवि का मत वेदांत-दर्शन के अभिमत से पूर्णतः मेल खाता है। वेदान्त-दर्शन के अनुसार "जब जीवन्मुक्त प्राणी का प्रारब्ध कर्मों का भोग समाप्त हो जाता है, तो उसका देह नष्ट हो जाता है और वह "विदेहकैवल्य की उपलब्धि करता है"।[7]

---

1. डा० राममूर्ति शर्मा : वेदान्तसार : , पृ० 216.
2. डा० पारस नाथ द्विवेदी :भारतीय -दर्शन, पृ० 315.
3. मुकती द्वैहो जानिये, जिवनमुकति मै मान ।
   बिदेह केवल होइ, सो देह छोर कै जान ।। 73 ।।
   कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, पृ० 68.
4. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 690.
5. वही , छंद संख्या 698.
6. परारब्ध को भोग करि, बिदेह केवल जोइ ।
   जह कहं तज के देह को, सो ब्रह्म ब्रह्म होइ ।। 74 ।।
   कर्म सिंह निर्मला; सद सुख प्रकाश, पृ० 69.
7. डा० राममूर्ति शर्मा : अद्वैत वेदान्त, पृ० 233.

"मुमुक्षु" का अर्थ है मोक्ष की इच्छा रखने वाला साधक। मानवीय वृत्तियों के आधार पर साधकों के चार भेद[1] स्वीकार किए गए हैं —— सात्त्विक साधक, राजसी साधक, तामसी साधक और निर्गुण साधक / भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने चार प्रकार[2] के भक्तों अर्थात मुमुक्षुओं का उल्लेख किया है —— अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और निष्कामी। कवि ने आलोच्य कृति में मुमुक्षुओं के तीन ही भेद स्वीकार किए हैं —— मंद मुमुक्षु[3], मध्यम मुमुक्षु[4] और उत्तम मुमुक्षु[5]।

मंद मुमुक्षु अपने अभीष्ट अर्थात मुक्ति के लिए कर्म मार्ग स्वीकार करता है, मध्यम मुमुक्षु को उपासना मार्ग स्वीकार्य है तथा उत्तम मुमुक्षु ज्ञान मार्ग को मान्यता देता है। वैदिक साहित्य में यह वेद त्रयी नाम से प्रसिद्ध है जो कि कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों मार्गों की ओर संकेत करती है, साधक इन्हीं तीन मार्गों पर चलकर अपने अभीष्ट को प्राप्त करता है।[6]

---

1. श्रीमद्भागवत "तृतीय सर्कंद", 29-7-14.
2. डा० राधाकृष्णन् (सम्पादक) : भगवद्गीता, पृ० 217.
3. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, पृ० 6.
4. वही , पृ० 7.
5. वही , पृ० 18.
6. डा० मुंशी राम : भक्ति का विकास, वाराणसी, चौखम्भा विद्या भवन, 1958 ई०, पृ० 111.

वैदिक काल से वेदान्त अर्थात औपनिषादिक काल तक आते आते ज्ञान-मार्ग को अत्यधिक महत्व दिया जाने लगा था । छान्दोग्योपनिषद् में नारद के "माध्यम से ब्रह्म-ज्ञान अर्थात् ज्ञान मार्ग की श्रेष्ठता एवं वरेण्यता पर पूरा बल दिया गया है[1]। शंकराचार्य ने भी कर्म मार्ग और उपासना मार्ग की अपेक्षा ज्ञान मार्ग को प्रतिष्ठित किया[2]। "वेदान्त-दर्शन" में डा० पाल डायसन ने मोक्ष के मार्ग से संबंधित निम्नलिखित निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं[3]———

(क) कर्म से मुक्ति असंभव है

(ख) नैतिक सुधार द्वारा मोक्ष असंभव है

(ग) कर्म रहित ज्ञान मुक्ति दाता है

(घ) कर्म ज्ञान का साधन है

(ङ.) उपासना ज्ञान का साधन है ।

सारांश में ज्ञान-मार्ग उत्तम है । सिख-धर्म की गुरमति साधना में कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों मार्गों का समन्वय सा हो गया है । कर्म-मार्ग के अन्तर्गत षट्-कर्म तथा द्विगुणित कर्म दोनों का प्रतिपादन आदि-ग्रंथ में अनेक स्थलों पर देखा जा सकता है[4]। उपासना-मार्ग के अन्तर्गत भक्ति के नौ स्वरूपों का उल्लेख गुरु अर्जुन देव जी की वाणी में भी हुआ है[5]। ज्ञान-मार्ग के अन्तर्गत आने वाला ब्रह्म-ज्ञान वेदों-उपनिषदों में प्रतिष्ठित हुआ है और गुरमति-साधना में वेदों-उपनिषदों की महिमा का गुण-गान मुक्त कंठ से

---

1. छान्दोग्योपनिषद् • 7-1-2.
2. वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान्, कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवता : । आत्मैक्यबोधेन विना विमुक्ति- र्न सिध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि ॥ 6 ॥
   शंकराचार्य : विवेक चूडामणि, पृ० 9
3. डा० पाल डायसन : वेदान्त -दर्शन, पृ० 373 - 383.
4. शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब• पृ० 70, 1119, 1297.
5. वही , पृ० 71.

किया गया है। "आदि-ग्रंथ" में वेदों के महत्व को अनेक स्थलों पर स्वीकार किया गया है।[1] कवि ने भी आलोच्य कृति में सिक्ख-धर्म की गुरमति-साधना के अनुरूप मुक्ति के तीनों मार्गों का प्रतिपादन किया है, परन्तु इसके साथ ही वेदान्त -दर्शन के अनुरूप तीनों मार्गों में से ज्ञान-मार्ग के प्रति कवि की विशेष निष्ठा है। कवि के अनुसार कर्म मार्ग निम्न कोटि के मंद मुमुक्षु, उपासना मार्ग मध्यम कोटि के मध्यम मुमुक्षु तथा ज्ञान-मार्ग उत्तम कोटि के उत्तम मुमुक्षु के लिए है। अब हम तीनो मार्गों का क्रमशः अध्ययन करेंगे।

4.2.5.1 कर्म -मार्ग

प्रायः सभी भारतीय -दर्शनों में कर्म -मार्ग के महत्व को मान्यता प्राप्त है। वैदिक-काल में कर्म और यज्ञ बहुत महत्वपूर्ण था।[2] अद्वैत-वेदान्त में ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के लिए कर्मानुष्ठान विधान स्वीकार किया गया।[3] गुरमति-साधना में भी षट कर्म {अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ करना, यज्ञ करवाना, दान देना, दान लेना} और द्विगुणित कर्म {स्नान, जप, हवन, देव पूजा, तीर्थ यात्रा और तप को प्रतिष्ठित किया गया।[4]

कर्मों की आग में जलकर ही तन कुंदन बनता है, यह कहकर कवि ने कर्म की महत्ता को स्वीकार किया है ---

"करम अनल ते ताइ कर, तन कुंदन जिह होइ।
बिन ताही अति सोभ लहि, हरि भूषा न रचइ होइ।।"[5]

वेदान्त-दर्शन में कर्म दो प्रकार के माने जाते हैं --- शुभ कर्म और अशुभ कर्म।[6] शुभ कर्मों के संबंध में कवि ने भी अपने विचार अभिव्यक्त किए है,

---

1. शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 408, 470, 791, 919, 995, 1350.
2. डा0 राम नारायण पाण्डेय : भक्ति-काव्य में रहस्यवाद, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1966 ई0 पृ0 23.
3. डा0 पारसनाथ द्विवेदी: भारतीय -दर्शन, पृ0 310.
4. खटु करमा ते दुगुणे, पूजा करता नाइ।
रंगु न लागी पारब्रहम, ता सरपर नरके जाइ।।
शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 70.
5. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 31.
6. डा0 पारस नाथ द्विवेदी : भारतीय दर्शन पृ0 310.

यथा ——

"तारें मारें करम गन, बिना करम नहि कोइ ।
याते शुभ को नहि करे, किम सुधारो सो होइ ।।"[1]

कवि के अनुसार निर्मल कर्म वृत्ति से मन में ज्योति हो सकती है——

"करम वृत्त है निरमलो, कर निरमल उर सोइ ।
पुनि तिह सैंधर सो, लखो मन मुकर कर सोइ ।"[2]

षट-कर्मों और त्रिगुणित कर्मों के प्रतिपादन पर कवि ने अधिक बल नहीं दिया । छुट-पुट रूप से इन अष्ट कर्मों का उल्लेख मात्र ही मिलता है[3] जैसे कवि ने यज्ञ का उल्लेख जाप के साथ एक दोहे में किया है । कवि ने आलोच्य कृति में कर्म-मार्ग के प्रतिपादन पर अधिक बल नहीं दिया, क्योंकि उसने इस मार्ग को निम्न कोटि के मुमुक्षुओं के लिए माना है ।

4.2.5.2 <u>उपासना -मार्ग</u> :-

"उपासना" का शाब्दिक अर्थ है - पास बैठना । साधारण अर्थों में ईश्वर के पास बैठना अथवा ईश्वर का सामीप्य ही उपासना है। "उपासना" भक्ति का पर्यायवाची शब्द है । भगवान् में हेतु रहित,[4] निष्काम, एवं निष्ठायुक्त अनवरत प्रेम का नाम ही भक्ति है ।

"उपासना का फल चित्त की एकाग्रता है । सगुण ब्रह्म की उपासना चित्त की एकाग्रता के द्वारा निर्विशेष ब्रह्म के साक्षात्कार में हेतु है,* इस कथन का समर्थन करते हुए कल्पतरुकार अमलानन्द ने कहा है कि

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अद्भुत सतसैया, छंद संख्या 35.
2. वही , छंद संख्या 32.
3. वही , छंद संख्या 36.
4. भागवत पुराण, 1-2-6.

निर्विशेष परब्रह्म के साक्षात्कार करने में जो अल्पबुद्धि वाले लोग असमर्थ हैं, उन पर दया करते हुए ही आचार्यों ने सगुण ब्रह्म का निरूपण किया है।[1] चूंकि ज्ञान-मार्ग कठिन था, इसीलिए कवि ने भी आलोच्य कृति में मध्यम कोटि के मुमुक्षुओं के लिए उपासना मार्ग का प्रतिपादन किया है।[2] "श्रीमद्भागवत" में भक्ति के नौ भेद दिए गए हैं[3] —— श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्म निवेदन इन्हीं नौ भेदों के आधार पर हम आलोच्य कृति का अध्ययन करेंगे ——

4.2.5.2.1 <u>श्रवण :-</u>

ध्येय के यश को सुनना श्रवण कहलाता है। "गुरमति साधना" में श्रवण भक्ति महत्वपूर्ण है। हरि के गुणों का श्रवण करने से मन निर्मल होता है और मन निर्मल होने से काल का भय दूर हो जाता है।[4] कवि के मतानुसार इस जगत् के सागर से पार उतरने के लिए श्रवण महत्वपूर्ण है यथा ——

"भव ते तारन तार्यो, हरि को नाउ सुनाउ।
जाहि सुने ही ते सुनो, भवनिधि पार पराउ।।"[5]

4.2.5.2.2 <u>स्मरण :-</u>

ध्येय के नाम का स्मरण करना ही स्मरण है। गुरमति-साधना में -"नाम-दान-स्नान" का सिद्धान्त प्रचलित है। आदि-ग्रंथ में

---

1. डा० राममूर्ति शर्मा : अद्वैत वेदान्त, पृ० 225.
2. कर्म सिंह निर्मला: हरि अष्टक सतैया, पृ० 7.
3. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
   अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।
   श्रीमद्भागवत, 7-5-23.
4. शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ० 780.
5. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्टक सतैया, छंद संख्या 37.

अनेक स्थलों पर " नाम-सुमिरन" संबंधित विचारों की अभिव्यक्ति हुई है ।[1]

कवि ने भी आलोच्य कृति में नाम-सुमिरन के महत्व को माना है।कवि का कथन है---

"कहूं कुलकुलो नर सुनो, जपे कि हरि को नाम ।
का कोकिल इक ठौर नहि, हुइ तिह को किम काम ।।
कौन कौन ए कौन हम, नाह आन जप दाम ।
हरी नाम सो नाम हरि, बार बार मम धार ।।"[2]

अनेक साधक माला के मनकों की सहायता से नाम ॥ जपते हैं । उनके संबंध में कबीर की तरह ही कवि का कथन है ----

"कर को मनका ॥ दूर कर, मन को मनका फेर ।
कर के मनके फेर है, मन के फेर न फेर ।।"[3]

सारांश में यदि मन से ध्येय के नाम का स्मरण किया जाए, तो जीव आवागमन के चक्र से छुट जाता है ।

4.2.5.2.3 <u>कीर्त्तन :-</u>

ध्येय के गुणों का गान करना ही कीर्त्तन है । शब्द", भजन, रीट इत्यादि कीर्तन के अन्तर्गत आते हैं । "श्रीमद्भागवत" में भक्ति की कीर्त्तन पद्धति को महत्वपूर्ण माना गया है ।[4] "आदि ग्रंथ" के शब्दों को संगीत की सुरीली लय से गाए जाने की प्रथा आज भी प्रचलित है । कीर्त्तन करने वाले के महत्व को गुरु अर्जुन देव जी ने भी स्वीकार किया है ।[5]

---

1. शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 262, 971, 1376.
2. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्टक सतसैया, छंद संख्या 39-40.
3. वही , छंद संख्या 48.
4. श्रीमद्भागवत, 2-2.
5. ओंकारि एक धुनि एके, एके राम अलापै । एका देसी एकु दिखावै, एको रहिआ बिआपै । एका सुरति एक ही सेवा, एको गुर ते जापै । भलो भलो रे कीरतनीआ ।

शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 885.

भजन कीर्तन का ही अंग है । हरि के भजन से संबंधित कवि का मत द्रष्टव्य है ——

"जो हरि सीते सीत कर, तिह भव सीते सीत ।
जो जाको नह इम भेंघे, सीत काल सो सीत ।।"[1]

एक अन्य स्थल पर कवि के कथनानुसार वह जीव काल के चक्र से बच सकता है जो श्रद्धा सहित हरि के गुणों का गान करता है ——

"ताँहि काल की अनिल को, काल चक्र सी जाँन ।
सरदा सच हरि गाइ जो, ताते बच सो माँन ।।"[2]

4.2.5.2.4 <u>बन्दन</u>

श्रद्धापूर्वक नत मस्तक होना बन्दन कहलाता है । भक्ति की बन्दन पद्धति के अनेक उदाहरण गुरमति साधना में प्राप्य हैं । आदि-ग्रंथ में एक स्थल पर साधक द्वारा अपने ध्येय के सम्मुख दंडवत् नत-मस्तक होने का उल्लेख हुआ है ।[3] आलोच्य कृति में भी कवि द्वारा एक स्थल पर हरि और अपने गुरु के सम्मुख नत मस्तक होने का उल्लेख हुआ है यथा——

"हरि गुरत्त गन को नमो, जनक जननि को मान ।
इन गन की अनुकंप बिन, को कर भव की हांन ।।"[4]

4.2.5.2.5 <u>दास्य</u> :-

अपने ध्येय के प्रति सेवा-भाव, दास्य पद्धति की भक्ति है । आदि-ग्रंथ में अनेक स्थलों पर दास्य-भाव से भक्ति का प्रतिपादन हुआ है ।[5] आलोच्य कृति में एक स्थल पर कवि ने स्वयं को अनाथ तथा

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्टुट सतसैया, छंद संख्या 71.
2. वही , छंद संख्या 77.
3. प्रभु जी तूं मेरे प्रान अधारै ।
   नमस्कार डंडउति बंदना अनिक बार जाउ बारै ।।
   शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ० 525.
4. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्टुट सतसैया, छंद संख्या 700.
5. शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब , पृ० 132, 145, 969, 1312.

अपने ध्येय को नाथ माना है ---

"मोसउ नाँहि अनाथ को, तुम सो नाथ अनाथ ।
नह अनाथ को नाथ हरि, जो नहि गहमो हाथ ।।"[1]

एक अन्य स्थल पर भी कवि ने स्वयं को दास स्वीकार किया है यथा ---

"क्रम कर क्रम जो होइयो, सो गुर बुति कर नास ।
नम तउ स्वइ परकास सद, करम सिंघ क्म दास ।।"[2]

4.2.5.2.6 सख्य :-

ध्येय को सखा मान कर की गई भक्ति "सख्य" कहलाती है । "श्रीमद्भागवत" में उद्धव की श्री कृष्ण के प्रति साधना सख्य पद्धति की भक्ति कही जा सकती है । "आदि ग्रंथ" में अनेक स्थलों पर ध्येय को सखा मानकर अपने श्रद्धा भाव को अभिव्यक्त किया गया है ।[3] आलोच्य कृति में कवि ने "सख्य भाव" की भक्ति का प्रतिपादन नहीं किया है । इसके विपरीत वे भक्ति में क्रौंच और कूर्म की अपने बच्चों में आसक्ति के सदृश भक्ति की तीव्रता का प्रतिपादन किया है गया है ----

"कूंच सु कमठी बच्च मो, जिम चित राखे नीत ।
जउ चित चित मो इम रहै, तउ तूं मोरो मीत ।।"[4]

4.2.5.2.7 आत्मनिवेदन :-

आत्मनिवेदन भक्ति के अन्तर्गत प्रायः उपासक ईश्वर से

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 94.
2. वही , छंद संख्या 664.
3. शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 181, 784, 1426.
4. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 579.

मुक्ति के लिए प्रार्थना करता है । इस संबंध में कवि का कथन है ---

"नाम तुम्हारो दयाल है, सुनिये है गोपाल ।
तारो अब तारे बने, नह झझन को काल ।।"[1]

पादसेवन और अर्चन मूर्ति-पूजा से सम्बद्ध होने के कारण कवि को स्वीकार्य नहीं जान पड़ते हैं, इसलिए इनका प्रतिपादन आलोच्य कृति में नहीं मिलता ।

4.2.5.3 ज्ञान-मार्ग :-

वेदान्त -दर्शन में अविद्यानिवृत्ति का फल आत्म-ज्ञान अथवा मुक्ति है । मुक्ति विशुद्ध आत्म-स्वरूप या ब्रह्मस्वरूप है । मुक्ति प्राप्त करने के लिए शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्मात्मैक्य-बोध अर्थात् ब्रह्म और आत्मा की एकता का ज्ञान अनिवार्य है ।[2] ब्रह्मात्मैक्य-बोध ही आत्म-ज्ञान है । वेदान्त आचार मीमांसा में महावाक्य बहुत महत्वपूर्ण है । "प्रज्ञानं ब्रह्म"[3] "अहं ब्रह्मास्मि"[4] "तत्वमसि"[5] तथा "अयमात्मा ब्रह्म"[6] चारों महावाक्य अद्वैत-वेदान्त का सार हैं । इन चारों महावाक्यों से जीव और ब्रह्म की एकरूपता का ज्ञान होता है । और यही आत्म-ज्ञान है जिससे मुक्ति प्राप्त

---

1. कर्म सिंह निर्मला: हरि अद्भुत सतसैया, छंद संख्या 92.
2. शंकराचार्य : विवेक चूड़ामणि, पृ0 58.
3 ऐतरेयोपनिषद्, 5-3
4. बृहदारण्यकोपनिषद् , 1-4-10.
5. छान्दोग्योपनिषद्, 6-8-7.
6. बृहदारण्यकोपनिषद्, 2-5-19.

होती है । "श्रीमद्भगवद्गीता" के अनुसार आत्म-ज्ञान द्वारा अन्तःकरण[1] के अज्ञान का नाश होता है और वह मुक्ति को प्राप्त करता है । आत्म-ज्ञान द्वारा मुक्ति प्राप्त करने की साधना ज्ञान-मार्ग है ।

ज्ञान-मार्ग, कर्म-मार्ग तथा उपासना-मार्ग की तुलना में बहुत कठिन है । इसीलिए कवि ने ज्ञान-मार्ग का प्रतिपादन उत्तम कोटि के मुमुक्षुओं के लिए किया है ।[2] आलोच्य कृति के एक बड़े भाग में कवि ने वेदान्त-दर्शन से प्रभावित "ज्ञान-मार्ग" का ही विस्तृत विवेचन किया है जो इस तथ्य का परिचायक है कि कवि ज्ञान-मार्ग का अटूट विश्वासी था । ज्ञान-मार्ग के अन्तर्गत मोक्ष प्राप्ति के दो साधनों का उल्लेख मिलता है --- बहिरंग और अन्तरंग ।[3] बहिरंग साधनों के अन्तर्गत नित्यानित्य वस्तु विवेक, वैराग्य, शमादि षट् संपत्ति तथा मुमुक्षुत्व चार साधन आते हैं जिनकी सहायता से जीवात्मा में ब्रह्म प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होती है । शंकराचार्य ने भी साधन-चतुष्टय में अपना विश्वास प्रकट किया है ।[4] डा० डायसन का ज्ञान-प्राप्ति के सहकारी साधनों के संबंध में कथन है-----
"धार्मिक अनुष्ठान में कुछ साधन जाने जाते हैं जिनसे आत्म-ज्ञान की प्राप्ति त्वरित हो जाती है । इस प्रकार ज्ञान के अधिकारियों की अपेक्षाएँ हैं वेद

---

1. ज्ञानेन तु तद् ज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
   तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ।।
   डा० राधाकृष्णन् (सम्पादक) भगवद्गीता, पृ० 180.
2. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, पृ० 18.
3. डा० पारसनाथ द्विवेदी : भारतीय-दर्शन, पृ० 314.
4. साधनान्यत्र चत्वारि कथितानि मनीषिभिः ।
   येषु सत्स्वेव सन्निष्ठा यदभावे न सिद्ध्यति ।। 18 ।।
   शंकराचार्य : विवेक चूडामणि, पृ० 12.

का स्वाध्याय तथा चार साधन साधन-चतुष्टय हैं।"[1] कवि का भी इन बहिरंग चार साधनों में पूर्ण विश्वास है[2] और उसने इसी कृति में इन चारों का विस्तृत विवेचन भी किया है। अन्तरंग साधनों के अन्तर्गत श्रवण, मनन, निदिध्यासन और समाधि आते हैं।

कवि ने अपनी एक दूसरी कृति[3] में स्पष्ट शब्दों में इन आठों साधनों में अपनी आस्था प्रकट की है। सिख गुरुओं ने "विवेक, वैराग्य, श्रद्धा, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, अहंकार-त्याग, परमात्मा एवं गुरु की कृपा"[4] को ज्ञान-प्राप्ति के साधन माना है। बहिरंग तथा अन्तरंग साधनों के विवेचन से पूर्व कवि ने आलोच्य कृति में उत्तम मुमुक्षु के मार्ग में बाधक दोषों का भी विस्तृत विवेचन किया है। लोभ, मोह, अहं, निंदा, तृष्णा, चोरी, झूठ, क्रोध, हिंसा, पाप, द्वेष, कलह, मद, कपट, धोखा, कृतघ्नता, कुसंग, आलस्य, ठगी आदि दोषों से उत्तम मुमुक्षु को बचना चाहिए। इन सब दोषों का विस्तृत अध्ययन हम अगले अध्याय में नैतिक-विचारों के अन्तर्गत करेंगे।

---

1. डा० राम डायसन : वेदान्त-दर्शन, पृ० 440-41.
2. जग सुख नाना चाहि करि, इसी तरह ते जान।
   साधन चार सु चाह ते, नीके होवै मान ।। 32 ।।
   कर्म सिंह निर्मला-सद सुख प्रकाश, पृ० 5.
3. विराग विवेक आदि जो, श्रवन मनन निदध्यास।
   तत्वं पद सो धन लखो, अठ साधन मन वास ।। 112 ।।
   कर्म सिंह निर्मला : सद सुख प्रकाश, पृ० 13.
4. डा० जय राम मिश्र : श्री गुरु ग्रंथ-दर्शन, इलाहाबाद, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, 1960 ई० , पृ० 226.

4.2.5.3.1 बहिरंग साधन

4.2.5.3.1.1 नित्यानित्यवस्तु विवेक :-

नित्य (ब्रह्म) और अनित्य (जगत्) के वास्तविक रूप का ज्ञान नित्यानित्यवस्तु विवेक है ।[1] इस संबंध में शंकराचार्य का मत है कि ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है, ऐसा निश्चय ही नित्यानित्य वस्तु विवेक कहलाता है ।[2] कवि ने भी सत्य और असत्य के ज्ञान को ही विवेक माना है यथा ——

"साचे को साचो लखो, काचे को लख काच ।
साचे को जो साच लाख, तो काचे किम राच ।।"[3]

आचार्य शंकर की भाँति कवि ने भी इस जगत् को मिथ्या और ब्रह्म को सत्य माना है । कवि ने ब्रह्म स्वरूप आतम सत्ता की गंगा से और जगत् की साधारण नदी से तुलना की है यथा ——

जग सत्ता अगा गनो, आतम सत्ता गंग ।
यामि जोई नाइगो, कहु किम हुइ सो भंग ।।"[4]

डा० जयराम मिश्र के अनुसार सिख धर्म में "विवेक" संबंधी कुछ ऐसा ही अभिमत प्राप्य है । उनका कथन है —— "परमात्मा के अविनाशी रूप में निष्ठा हो जाती तथा सांसारिक विषयों की क्षणभंगुरता की अनुभूति ही विवेक है ।"[5]

---

1. पारस नाथ द्विवेदी : भारतीय -दर्शन, पृ० 314.
2. ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येवंरूपो विनिश्चयः ।। 20 ।।
सोऽयं नित्यानित्यवस्तु विवेकः समुदाहृतः ।
शंकराचार्य : विवेक – चूडामणि , पृ० 12.
3. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतैया, छंद संख्या 310.
4. वही, छंद संख्या 325.
5. डा० जयराम मिश्र : श्री गुरु ग्रंथ -दर्शन, पृ० 267.

संसार और सांसारिक-विषयों की क्षण-भंगुरता के संबंध में कवि का कथन है ----

"छिन मै होवै और कछु, छुइ छुन और कु और ।
यां ते गने असार जग, यां मै बुधि है छोर ।।"[1]

विवेकी जीव की तुलना कवि ने मराल से की है ----

"सारो सारो छीर सो, कारो नीर सु छोर ।
जोइ सार को सार गह, सो मराल सो धीर ।।"[2]

कवि का विवेक-संबंधी अभिमत शंकराचार्य के वेदान्त दर्शन तथा सिख-गुरुओं के दर्शन दोनों से प्रभावित प्रतीत होता है ।

4.2.5.3.1.2 वैराग्य :-

ऐहिक और पारलौकिक भोज्य पदार्थों का त्याग ही वैराग्य है । आचार्य शंकर का इस संबंध में कथन है कि दर्शन और श्रवणादि के द्वारा देह से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त सम्पूर्ण अनित्य भोज्य-पदार्थों में जो घृणाबुद्धि है, वही "वैराग्य" है ।[3] जीव शुभ कर्म इस आशा से करता है कि उसे मनुष्य लोक में सुन्दर और मधुर-भाषिणी पत्नी, सुयोग्य पुत्र, आज्ञाकारी सेवक, शुभचिन्तक मित्र, भव्य महल, बाग-बगीचे, वाहन, तरुण देह इत्यादि सुख-साधन मिलें और वह इनका भोग करे । इसी प्रकार परलोक में भी मनुष्य विभिन्न आमोद-प्रमोदों की कामना करता है । इन सब विषयों का त्याग ही वैराग्य है ।

"श्री गुरु ग्रंथ साहिब" में कहा गया है कि सांसारिक-विषयों के भोग से वास्तविक तृप्ति नहीं मिलती जैसे आग ईंधन से तृप्त नहीं हो सकती ।[4]

---

1. कर्म सिंह निर्मला, हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 331.
2. वही ,छंद संख्या 311.
3. तद्वैराग्यं जुगुप्सा या दर्शनश्रवणादिभिः ।। 21 ।।
देहादिब्रह्मपर्यन्ते ह्यनित्ये भोगवस्तुनि ।
शंकराचार्य : विवेक-चूडामणि, पृ0 12.
4. विखिआ महि किनही त्रिपति न पाई
जिउ पावकु ईधनि नहीं ध्रापै ।। 2 ।। 6 ।।
शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 672.

सांसारिक भोग्य-पदार्थों के संबंध में कवि का मत भी कुछ ऐसा ही है यथा ---

"जग रस के रस राच जो, कहुँ किम घटु है सोइ ।
यो नह वा रस मो रसे, वाह अघटु किम होइ ।।"[1]

कवि ने अनित्य भोग्य-विषयों के कारण इस जगत् की तुलना जल-अर्म,[2] अनलज धन,[3] मृग जल[4] से की है ।

इस शरीर के सौन्दर्य से आकर्षित होकर जीव अनेक पाप-कर्म करता है, इसके प्रति वैराग्य की भावना भी बहुत अनिवार्य है । देह के संबंध में गुरु अर्जुन देव जी का मत है कि यह शरीर, विष्ठा, अस्थि, रक्त का ढेर है जो चमड़े से परिवेष्टित् है, इसलिए इस देह का अभिमान नहीं करना चाहिए।[5]

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अकुष्ट सतसैया, छंद संख्या 305.

2. जल-अरम सो जग लखो, लखो नाउँ सो आउ ।
सधाव सधाव भन ताह को, जोन लखे ए भाउ ।।
कर्म सिंह निर्मला: हरि अकुष्ट सतसैया, छंद संख्या 292.

3. अनलज धन सो जग लखो, नह जामे सुख संचार ।
जामि सो पिक हुइ गहो, वह सो देख दिखात ।।
कर्म सिंह निर्मला: हरि अकुष्ट सतसैया छंद संख्या 293.

4. जगनिध को जो लहर मन, म्रिग जल लहर समान ।
जोई यां को कह्यो यह, सो म्रिग सो सुख जान ।।
कर्म सिंह निर्मला: हरि अकुष्ट सतसैया छंद संख्या 295.

5. बिसटा असत रकतु परेटे चाम ।
इस ऊपरि ले राखिओ गुमान ।।3 ।। 14 ।।
शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 374.

देह के संबंध में कवि का कथन है कि जिस प्रकार एक अतिथि रात भर ठहरने के लिए दूसरे के घर को समझता है,[1] उसी भाँति अपने शरीर के प्रति जीव में अनुराग नहीं होना चाहिए । जिस प्रकार राजा बलि, ऋषि दधीच तथा राजा हरिश्चंद्र ने अपने शरीर के प्रति वैराग्य की भावना रखी, वैसे ही विवेकी जीव को अपने तन के प्रति वैराग्य की भावना रखनी चाहिए ।[2]

4.2.5.3.1.3 <u>शमादि षट् संपत्ति</u> :-

वेदांत-दर्शन में शम, दम, [illegible] तितिक्षा, उपरति, समाधान और श्रद्धा को शमादि षट् संपत्ति कहा गया है । शमादि षट् संपत्ति के संबंध में कवि का कथन है कि मिथ्या सुख और वासनाएँ समाप्त होना शम है, सांसारिक विषयों का दमन दम है, अनित्य सुखों की ओर प्रवृत्त न होना उपरति है, दुखों आदि को सहने की क्षमता तितिक्षा है, गुरु और वेदों में विश्वास होना[3] श्रद्धा है, चित्त को रोककर अनुकूल वृत्ति में स्थिर रखना समाधान है ।

4.2.5.3.1.3.1 <u>शम</u> :-

शंकराचार्य के अनुसार चित्त अथवा मन को अभ्यास द्वारा अपने लक्ष्य में स्थिर करना शम कहलाता है[4] । श्री सदानंद के अनुसार——

---

1. रागहीन है जो नरा, निज तन को इम जानि ।
   जिम अतिथि बस छपा मै, अन के गृह को मानि ।।
   कर्म सिंह निर्मला:हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 280.

2. बल दधीच हरिचंद सम, निज तन को जो जानि ।
   पुन भट सति के सम लखै, ताहि राग को मानि ।।
   कर्म सिंह निर्मला:हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 282.

3. सुमन जो मिथ सुख वासन को सम सोई
   सोई दम होई विषै वृति को दमन जो ।
   अनित सुख विचारे धारै ना उपरति होई, होई तितिक्षा दुखादिक
   सहेग मन जो । सरधा ऐसे धारे सारे मोह गर ओविद, मन गहे
   ना ऐसो सिख बिन कमन जो । समाधान चित करो कन चित मे
   रोक चित अनहदि जो कहेगो ता ही को समन जो ।।68 ।।
   ~~xxxx~~ कर्म सिंह निर्मला:सद सुख प्रकाश,पृ0 9.

4. विरज्य विषव्रातादोषदृष्टया मुहुर्मुहुः ।।22।।
   स्वलक्ष्ये नियतावस्था मनसः शमे उच्यते ।।
   शंकराचार्य : विवेक-चूडामणि, पृ0 13.

"शम का अर्थ है आत्मचिन्तक श्रवण आदि से भिन्न सभी विषयों से मन का निग्रह । आशय यह है कि जब मनुष्य का मन ऐहिक , आमुष्मिक सभी विषयों से विरक्त हो जाता है तब वह उन विषयों से दूर होने लगता है, क्योंकि उन विषयों की ओर उसे आकृष्ट करने वाला राग समाप्त हो गया रहता है । इस प्रकार बाह्य विषयों से मन के हट जाने को ही शम कहा जाता है "[1] शम के संबंध में कवि का कथन है ——

"कर विवेक जउ मन गहो, तउ हुइ सुख मान ।
चिउ त्रिय मंत्री कर को, नाह कर हुइ सुख जान ।।"[2]

एक अन्य स्थल पर कवि ने मन पर नियंत्रण को ही शम माना है, यथा ——

"नर मे नर सोई गनो, जोई मन जो बाध ।
सो ही जग को धवेगो, इमे तांहि जम धाय ।।"[3]

जब चित्त चैतन्य स्वरूप चिति अर्थात् ब्रह्म में स्थिर होना आरम्भ हो जाता है तो इस जगत् के सभी विषय दास हो जाते हैं यथा ——

"जग वासन दासनि हुइ, चित की चिति जब वास ।
तबै सुखम भ्रम सुखे लहे, करम सिंह मन दास ।।"[4]

4.2.5.3.1.3.2 दम

शंकराचार्य के अनुसार कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दोनों को उनके विषयों से खींचकर अपने अपने गोलकों में स्थित करना दम कहलाता है ।[5] साधारण शब्दों में मन में स्थित विषयों को दमित करने को ही दम कहा जा सकता है । आचार्य शंकर के अभिमत से कवि के विचार मेल खाते हैं यथा ——

---

1. श्री सदानंद :वेदान्तसार: [व्याख्याकार-आचार्य बदरीनाथ शुक्ल], दिल्ली, मोती लाल बनारसी दास, 1979 ई0 पृ062.
2. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 335.
3. वही , छंद संख्या 345.
4. वही , छंद संख्या 351.
5. विषयेभ्यः परावर्त्य स्थापनं स्वस्वगोलके ।। 23 ।।
उभयेषामिन्द्रियाणां स दमः परिकीर्तितः ।
शंकराचार्य : विवेक-चूडामणि पृ0 13.

"तन न्यारो मो तुम लखो, पंच करम गन मानि ।
जउ वह भिन भिन गन चलें, तउ किम तत वह जानि ।"[1]

बाह्य इन्द्रियों अर्थात कर्मेन्द्रियों का दमन करना भी "दम" के लिए आवश्यक है यथा —

"बाह्य करन को दमन जो, दमक हिये है सोइ ।
ऐसे ताको दम करो, नह रह दम ता मोइ ।।"[2]

मन पर नियंत्रण के लिए कवि ने हठ-योग का भी समर्थन किया है, यथा —

"राजयोग हठयोग कर, मन को रोधौ बीर ।
जाँ रोधे बिन सुख नही, भने मुनी यउ धीर ।।"[3]

जिस प्रकार पतंगा रूप के लिए[4], मनुष्य स्त्री भ्रमर कमल स्त्री स्त्री के लिए[5], मृग नाद[6] के लिए अपना जीवन खो देता है, उसी प्रकार

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्टुट सतसिया, छंद संख्या 371.
2. वही , छंद संख्या 353.
3. वही , छंद संख्या 585.
4. जिम पतंग पच रूप मो, नह इम पच है जोइ ।
   सुठ मैना तोह लखो, लखो और नहि कोइ ।।
   वही, छंद संख्या 357.
5. नर अलि जोइ बास हित, कमला कमल चाह ।
   जउ तामे वह फसे अति, जम सतंग हत ताहि ।।
   वही , छंद संख्या 358.
6. अहि म्रिग जिउ जब नाद को, जो जो चाहे मीत ।
   तोइ तोइ ही मरेगो, इही नीत मो नीत ।।
   वही, छंद संख्या 360.

जो जीव सांसारिक विषय-वस्तुओं के भोग के लिए मन का दमन नहीं करता, वह अपना जीवन व्यर्थ ही खो देता है ।

4.2.5.3.1.3.3. उपरति

उपरति से अभिप्रायः है बाह्य विषयों की ओर उन्मुख न होना । मन चंचल होने के कारण बाह्य विषयों की ओर आकर्षित होता है , उसे ऐसा करने में रोकना दम है और उसका बाह्य विषयों से सम्पर्क ही तोड़ देना उपरति है । बाह्य विषयों के प्रति उदास रहना ही उपरति है, ऐसा कवि का मत है यथा —

"पातक कातक मो सुनो, विष रस ते सु उदास ।
जो जग ते सद श्रम रहे, करम सिंघ तिह दास ।।"[1]

शंकराचार्य के अनुसार वृत्ति का बाह्य विषयों का आश्रय न लेना ही उपरति है ।[2] कवि ने अनेक उदाहरण देकर उपरामी जीव को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है यथा ——

"जैसे चारो घास को, केहरि के मन नाँहि ।
वामे होइ उपरत्त सुन , है जग तैसे ताँहि ।।"[3]

4.2.5.3.1.3.4 तितिक्षा

शीतलता, उष्णता आदि से उत्पन्न सुख-दुख आदि को सहन करने की क्षमता "तितिक्षा" कहलाती है । तितिक्षा की आवश्यकता पर श्रीमद्भगवद्गीता में भी बल दिया गया है ।[4] कवि का इस संबंध में अभिमत है यथा —

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अकुष्ट सतैया , छंद संख्या 376.
2. बाह्यानालम्बनं वृत्तेरेषोपरतिरुत्तमा ।।
   शंकराचार्यः विवेक चूडामणि, पृ० 13.
3. कर्म सिंह निर्मला : हरि अकुष्ट सतैया, छंद संख्या 377.
4. यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
   समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।
   राधाकृष्णन् (सम्पादक): भगवद्गीता, पृ० 111.

"तितख तितिक्ष्या हम करो, जिम पावक कर पाँन ।
सुख दुख अन को यह सहैं, कर सुख अन को मान ।।"[1]

तितिक्षा के संबंध में आचार्य शंकर का मत है कि चिन्ता और शोक से रहित होकर बिना कोई प्रतिकार किये सब प्रकार के कष्टों का सहन करना "तितिक्षा" है ।[2] तितिक्षा रहित, सुख में दुःखी और सुख में प्रसन्न होने वाला जीव कवि के ही अनुसार प्रायः दुखी ही रहता है-+ यथा—

"कर जो हा हा दुख मे, जो सह जग सुख चीत ।
तिह पावको मे दाह कर, सो दुख पावै नीत ।।"[3]

4.2.5.3.1.3.5 **श्रद्धा**

श्रद्धा से अभिप्राय है- गुरु-वचनों तथा शास्त्र-वचनों में दृढ़ विश्वास । शंकराचार्य के अनुसार शास्त्र और गुरु-वाक्यों में सत्यत्व बुद्धि करना ही श्रद्धा है ।[4] ऐसा ही अभिमत कवि का है यथा —

"सो सरधा मो सरधा कर, सो सह सरधा टोर ।
सो सरधा गुर बेद को, सोई चिद मे जोर ।।"[5]

"भगवद्गीता" में भी स्वीकार किया गया है कि शमादि की सहायता से इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के बाद ज्ञान-प्राप्ति के लिए श्रद्धा अनिवार्य है ।[6] "श्री गुरु ग्रंथ साहिब" में भी श्रद्धा को महत्वपूर्ण

---

1. कर्म सिंह निर्मला: हरि अद्भुट सतसैया, छंद संख्या 388.
2. सहनं सर्वदुःखानामप्रतीकारपूर्वकम् ।
   चिन्ताविलापरहितं सा तितिक्षा निगद्यते ।। 25 ।।
   शंकराचार्य : विवेक- चूडामणि, पृ0 13.
3. कर्म सिंह निर्मला, हरि अद्भुट सतसैया, छंद संख्या 392.
4. शास्त्रस्य गुरुवाक्यस्य सत्यबुद्ध्यवधारणम् ।
   सा श्रद्धा कथिता सद्भिर्यया वस्तूपलभ्यते ।। 26 ।।
   शंकराचार्य : विवेक चूडामणि, पृ0 13.
5. कर्म सिंह निर्मला:हरि अद्भुट सतसैया, छंद संख्या 388.
6. श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
   ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।।
   डा0 राधाकृष्णन् [सम्पादक] :भगवद्गीता, पृ0 173.

स्वीकार किया गया है । इसी विषय पर डा० जय राम मिश्र का कथन दृष्टव्य है —— "श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में श्रद्धा, विश्वास और भक्ति की जो त्रिवेणी प्रवाहित हुई है, वह बहुत कम ग्रंथों में पाई जाती है । यह श्रद्धा संतों के प्रति, गुरु के प्रति और परमात्मा के प्रति है ।"[1] कवि ने आलोच्य कृति में श्रद्धा की अभिव्यक्ति प्रायः गुरु, परमात्मा और वेदों के लिए ही की है । कवि का कथन है ——

"हुइ सरधालू सेव कर, करो प्रवन जिम मांन ।
गुर सु बेद सभ से अधिक, करिये तांकी जांन ।।"[2]

श्री सदानंद के अनुसार श्रद्धा रहित जिज्ञासु गुरु और शास्त्र के बताए मार्ग पर न चलकर इधर-उधर भटकता रहेगा और अन्ततः उसके हाथ कुछ न लगेगा ।[3] श्रद्धा रहित नर के संबंध में कवि भी इसी मत का विश्वासी है यथा् ——

"भटके अटके कहूँ नहि, बिन सरधा नर जोइ ।
जिम न भ्रंटक घट बंध्र सो, अरध उरध भैसोइ ।।"[4]

एक अन्य स्थल पर कवि ने श्रद्धा रहित नर की तुलना सर्दी से प्रभावित वृक्ष से की है ——

"सरधा मधु रुत सी लखो, नरु तरु को कर फैल ।
बिन सरधा नर सिसर सर, बहु बिम हुइ सो छैल ।।"[5]

---

1. डा० जयराम मिश्र: श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, पृ० 270.
2. कर्म सिंह निर्मला, हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 403.
3. श्री सदानंद : वेदान्तसार, पृ० 69.
4. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 399.
5. वही , छंद संख्या 402.

4.2.5.3.1.3.6 <u>समाधान</u>

"समाधान" के संबंध में शंकराचार्य का मत है कि "अपनी बुद्धि को सब प्रकार शुद्ध ब्रह्म में ही सदा स्थिर रखना इसी को समाधान कहा है। चित्त की इच्छापूर्ति का नाम समाधान नहीं है।"[1] गुरु और श्रुति के वचनों को सदैव चित्त में धारण करना ही समाधान है यथा—

"बैठत उठत चालता, गुरु श्रुति वाक सुधार।
जा धारे ते धार मन, समधारा ते पार।।"[2]

श्री सदानंद का कथन है कि — "आत्मसाक्षात्कार के लिए समाधान— आत्मज्ञान के साधनों में चित्त की स्थिरता अत्यावश्यक है।"[3] इसी मत का समर्थन कवि ने आलोच्य कृति में किया है —

"निज चिद ही को जानबो, जाँहि बचन ते होइ।
जोई वाको गहेगो, सावधान सम सोइ।।"[4]

4.2.5.3.1.4 <u>मुमुक्षुत्व</u>

"मुमुक्षुत्व" का अर्थ है मोक्ष की इच्छा। शंकराचार्य के अनुसार — "अहंकार से लेकर देह पर्यन्त जितने अज्ञान-कल्पित बंधन हैं, उनको अपने स्वरूप के ज्ञान द्वारा त्यागने की इच्छा "मुमुक्षुता" है"।[5] कवि ने

---

1. सर्वदा स्थापनं बुद्धेः शुद्धे ब्रह्मणि सर्वथा।
   तत्समाधानमित्युक्तं न तु चित्तस्य लालनम्।। 27।।
   शंकराचार्य : विवेक - चूडामणि, पृ0 14.
2. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्टक सतैया, छंद संख्या 412.
3. श्री सदानंद : वेदान्त सार, पृ0 68.
4. कर्म सिंह निर्मला: हरि अष्टक सतैया, छंद संख्या 419.
5. अहङ्कारादिदेहान्तान्बन्धानज्ञानकल्पितान्।
   स्वस्वरूपावबोधेन मोक्तुमिच्छा मुमुक्षुता।। 28।।
   शंकराचार्य : विवेक चूडामणि, पृ0 14.

आलोच्य कृति में "मुक्ति इच्छा बरनन" के अन्तर्गत मुक्ति की दृढ़ इच्छा को ही मुमुक्षुत्व माना है ——

"तत्त्व की जो एकता, वही मुक्ति मुक्ति ।
जिह वांकी द्रिढ़ इच्छ मन, सोउर बरन मुमुक्षि ।।"[1]

डा० सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय[2] तथा डा० पारसनाथ द्विवेदी[3] ने भी मुमुक्षुत्व संबंधी ऐसे ही विचार अभिव्यक्त किए हैं । आलोच्य कृति में कवि ने सांख्य-दर्शन के विपरीत मुमुक्षुत्व के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है ।[4] आचार्य शंकराचार्य ने मुमुक्षुत्व तीन प्रकार का माना है — मंद, मध्यम और तीव्र ।[5] ऐसा प्रतीत होता है इसी मत से प्रभावित होकर कवि ने मुमुक्षुओं की इच्छा की गति को देखते हुए उन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया है । मुमुक्षुत्व महत्वपूर्ण इसलिए है कि मोक्ष की इच्छा की अनुपस्थिति में जीव आत्म-अन्वेषण की ओर अग्रसर ही नहीं होता । मोक्ष-प्राप्ति के लिए मोक्ष की इच्छा में दृढ़ता अनिवार्य है, इस संबंध में कवि का कथन है ——

"जो चिद तउ चिद होइगो, जउ चिद को हुइ ग्यान ।
होइ सोइ प्रिय इच्छ ते, ताते तिहं द्रिढ़ ठान ।।"[6]

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्टक सतसैया, छंद संख्या 422.
2. डा० सतीशचंद्र चट्टोपाध्याय : भारतीय -दर्शन पृ० 258.
3. डा० पारसनाथ द्विवेदी : भारतीय -दर्शन, पृ० 314.
4. सांख्य आदि की मुक्ति से, बहु विध होइ मुक्ति ।
जो जो वाकी इच्छ कर, सो सो कुछ मुक्ति ।।
कर्म सिंह निर्मला, हरि अष्टक सतसैया, छंद संख्या 423.
5. आचार्य शंकराचार्य : विवेक -चूडामणि, पृ० 14.
6. कर्म सिंह निर्मला: हरि अष्टक सतसैया , छंद संख्या 424.

जगत् के लौकिक-विषयों के परित्याग के बाद ही जीव मुक्ति की इच्छा कर सकता है । कवि के मतानुसार इस जगत् के प्रति मोह रखने वाला जीव मुमुक्षुत्व को प्राप्त नही कर सकता , यथा —

"मेघ अपात रमणीत जो, जो लख तिह रमणीक ।
ताहि इच्छ किम मुकति की, लख अनीक तउ ठीक ।।"[1]

विवेक की सहायता से सत् और असत् के भेद का ज्ञान होता है, वैराग्य से इस लोक तथा अन्य -लोकों के प्रति मोह का नाश होता है, शमादि षट् संपत्ति से चित्त तथा अन्य सभी प्रकार की इन्द्रियों पर नियंत्रण हो जाता है और मुमुक्षुत्व से मोक्ष की तीव्र इच्छा जाग्रत होती है । इन बाह्य-साधनों की सहायता से मोक्षार्थी वेदों के ज्ञान का अधिकारी बन जाता है और फिर अन्तरंग साधनों की सहायता से मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए वह वेदार्थ के पूर्ण वेत्ता ब्रह्म-ज्ञानी गुरु के पास जा सकता है ।

4.2.5.3.2 <u>अन्तरंग साधन</u> :

अन्तरंग साधनों के संबंध में श्री सदानंद जी का कथन है कि प्रत्यगात्मा अभिन्न, परमानंद, चिद्रूप के साक्षात्कार होने तक श्रवण , मनन, निदिध्यासन और समाधि का अनुष्ठान अपेक्षित है ।[2]

4.2.5.3.2.1 <u>श्रवण</u>

ब्रह्म संबंधी वेद-वचनों तथा गुरु-वचनों को सुनना ही प्रायः "श्रवण" कहलाता है । श्री सदानंद के अनुसार—— "छः प्रकार के लिंगों द्वारा समस्त वेदान्तों का अद्वितीय वस्तु में तात्पर्य का निश्चय करना श्रवण है । उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति ये छः

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अद्भुत सतसैया, छंद संख्या 426.
2. श्री सदानंद : वेदान्तसार , पृ0 236.

लिंग हैं ।"[1] इन्हीं छः लिंगों को कवि ने स्पष्ट रूप से "सदगुरुप्रकाश" में स्वीकार किया है ।[2] डा0 पारसनाथ द्विवेदी के कथनानुसार — "समस्त वेदवाक्यों का अद्वितीयवस्तु ब्रह्म में तात्पर्य निश्चय करना "श्रवण" है ।"[3] डा0 द्विवेदी जी का अभिमत श्री सदानंद जी से पूर्णतः मेल खाता है । "श्रवण" के महत्व पर प्रकाश डालते हुए डा0 जयराम मिश्र ने कहा है ——— "ज्ञान के लिए श्रवण परमावश्यक साधन है । किसी वस्तु की जानकारी के पूर्व उसका श्रवण आवश्यक है।श्रवण की अपूर्व महत्ता है ।"[4]

सिख -धर्म में भी "श्रवण" को बहुत महत्वपूर्ण माना गया है ।[5] आलोच्य कृति में कवि ने छः लिंगों को पारिभाषित नहीं किया, केवल उनका उल्लेख भर किया है ———

"आन स्रवन की हान करि, कर चिद को उपदेस ।
इही स्रवन षट चिन्नयुत , नहीं आन को लेस ।"[6]

श्रवण के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कवि ने कहा है ———

"ऐसे चिद को जो सुने, सह सोई होलास । जिम सुरमाईन सेके सुन, होवे सुख को तास होइ ।
ऐसे चिद को जो सुने, दुइ ताको भ्रम लोइ । जैसे सुत बिन को नरा, सुत को भ्रम सुन 2
सद सद चिद जो क्रम सुने, सो किम दुख दुख गात ।जैसे मुदता मुदत हुइ, सुन के पी की बात।
कोई चिद को ऐम सुनि, किम सह सह सो छेम । क्षुधा त्रिखा तर जौन नर, अन जल को सुन क्षेम।
ऐसे चिद को जो सुने, सोई होइ निहाल। जैसे अहि मृग सबद को, सुनकर होइ सुमाम ।।[7]

---

1. श्री सदानंद: वेदान्तसार, पृ0 236.
2. कर्म सिंह निर्मला: सदगुरुप्रकाश, पृ0 10.
3. डा0 पारसनाथ द्विवेदी: भारतीय दर्शन ,पृ0 314
4. डा. जयराम मिश्र: श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, पृ0 271.
5. शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 2.
6. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 465.
7. वही ,छंद संख्या 472 से 476.

कवि का उपर्युक्त कथन "श्री गुरु ग्रंथ साहिब" की विचारधारा[1] से मिलता-जुलता है ।

4.2.5.3.2.2 मनन

"मनन" का शाब्दिक अर्थ है "वेदांतशास्त्र के अनुसार सुने हुए वाक्यों पर बार बार विचार करना तथा शंका-समाधान द्वारा उसका निश्चय करना ।"[2] डा० पारसनाथ द्विवेदी के अनुसार—— "जिसका श्रवण किया गया है, उस अद्वितीय वस्तु का वेदान्तानुकूल तर्कों द्वारा चिन्तन करना मनन है ।"[3] डा० जयराम मिश्र के मतानुसार —— "श्रवण के आगे की स्थिति का नाम मनन है । अद्वितीय ब्रह्म का तदाकार भाव से चिन्तन ही मनन है ।"[4] कवि ने अपनी अन्य कृति "सदसुख प्रकाश"[5]

---

1. सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु ।। सुणिऐ अठसठि का इसनानु ।।
   सुणिऐ पड़ि पड़ि पावहि मानु ।। सुणिऐ लागै सहजि धिआनु ।।
   नानक भगता सदा विगासु ।। सुणिऐ दूख पाप का नासु ।। 10 ।।
   शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ० 3.
2. नवल जी: नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ० 1056.
3. डा० पारसनाथ द्विवेदी :भारतीय -दर्शन, पृ० 314.
4. डा० जयराम मिश्र : श्री गुरु ग्रंथ-दर्शन पृ० 272.
5. अद्वैत एक को मनन के मनोरथ सम हनन के,
   चित ही मे चित को लगाइये ।
   सूम मन दा मन मे कामन मे कामी को है जैसे
   जैसे कूंज कूंज बच मे बसाइये ।
   जैसे भूखा नाज मे लावै लावै जती जत सती सत
   पतब्रता पति मे लुभाइये ।
   भ्रम हरि जैसे सूरा रण मे लिखी धन मे तैसे
   मन चिद मे धन ही ठहिराइये ।
   कर्म सिंह निर्मला : सदसुख प्रकाश, पृ० 12.

में मनन की अनेक उदाहरणों सहित विस्तृत परिभाषा कही है जो उपर्युक्त अभिमतों का अनुमोदन ही है ।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम "मनन" की दो अवस्थाएँ मान सकते हैं । पहली अवस्था में जीव अपनी चित-वृत्ति द्वारा अद्वैत ब्रह्म संबंधी विचारों का तर्कपूर्वक चिन्तन करता है और दूसरी अवस्था में चिन्तन के मार्ग में बाधक भ्रमों का नाश करता है । प्रथम अवस्था के संबंध में कवि का कथन है ---

"चित को चित इम चित रखों, जिम चित को रख सूर्म ।
पुनि ताँही मो इम रहों, जिम तिह चित सह झूम ।।"[1]

दूसरी अवस्था के संबंध में कवि का मत है ----

"निज चिद्तु ते प्रकास कर, मानतु कर भ्रम हानि ।[2]
जउ वह मम द्रिड़ होइगो, तउ मै किम दुख खान ।।"

मनन-योग्य अद्वैत ब्रह्म के स्वरूप के संबंध में कवि का कथन है---

"सम सत्य चैतन्न जो, नह दोखी पुन जोइ ।[3]
स्वइ ते भिन किम होइ सो, सोहि मनन जउ होइ ।।"

4.2.5.3.2.3 निदिध्यासन

"निदिध्यासन" शब्द नि + उपसर्ग - "ध्यै" धातु से "सन्" प्रत्यय तथा भाव में "ल्युट्" करने पर बनता है । डा० पारसनाथ द्विवेदी के अनुसार ---- "विजातीय शरीर आदि प्रत्ययों से रहित होकर अद्वितीयवस्तु ब्रह्म के सजातीय प्रत्ययों को प्रवाहित करना निदिध्यासन है ।"[4] सभी अनात्म-पदार्थ विजातीय है । सजातीय-पदार्थ आत्मा

---

1. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट ससैया, छंद संख्या 577.
2. वही ,छंद संख्या 581.
3. वही ,छंद संख्या 586.
4. डा० पारसनाथ द्विवेदी :भारतीय-दर्शन, पृ० 314.

विधायक है। कवि ने 'सदगुरुप्रकाश' में निदिध्यासन की बहुत विस्तृत परिभाषा की है।[1] इसी प्रकार का मत कवि ने आलोच्य कृति में कहा है—

"जाहि जोत ते जाग जग, जाहि जोत जग जाग।
ताहि जोत की जोत सो, चित को अब लग लाग।"[2]

एक अन्य स्थल पर कवि ने अनात्म-पदार्थों से वृत्ति को हटाकर आत्मविषयक-पदार्थों में लगाने को निदिध्यासन माना है —

"अनसो वृति अजोर हुइ, हु, चिद सो तिह जोर।
किल निदध्यासक सम ए, भने मुनीयो ओर।।"[3]

---

1. सत चिद आनंद बिभु अकास सो बास दे
आकाश को प्रकास सो लखो सो परमातमा।
स्वप्रकास कुटस्थ रिदस्थ अहै अज साखी
आतम को आतम चित कहै आतमा।
तत्त लख्ख प्रमातमा त्वं लख आतमा नाह
इन माह भेद कोऊ याते तजो भातमा।
क्रम हरि लख्ख लखो आप जयो जाप हनो ताप
दुवैत ए हो भनो दव निदध्यासमा।
कर्म सिंह निर्मला : सदसख्प्रकाश, पृ0 12.

2 कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 590.

3. वही छंद संख्या 589.

श्री सदानंद का निदिध्यासन के संबंध में अभिमत है ----"श्रवण और मनन के द्वारा जब आत्मा का स्वरूप निश्चित हो जाता है, उसमें किसी प्रकार का संशय नहीं रह जाता, तब चित्त को उस आत्मस्वरूप में लगाकर उसको एकतान -एकाकार जो वृत्ति अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित की जाती है, उस प्रवाहमान आत्मविषयक चित्तवृत्ति को ही निदिध्यासन कहा जाता है ।"[1] आलोच्य कृति में भी वृत्ति को स्वयं में लगाने पर ही बल दिया गया है यथा ---

अनिल बिना जिम दीप सिख, पुन दिब चित्ती जानि ।
वृत्ति जब निज मो खची इम, कची वृत्ति तब आनि ।।"[2]

4.2.5.3.2.4 समाधि

साधारणतया जीव की उस अवस्था, जिसमें उसकी संज्ञा तथा चेतना नष्ट हो जाती है और वे किसी भी शारीरिक-क्रिया में असमर्थ हो जाते हैं, को समाधि कहा जाता है । श्री सदानंद के अनुसार--"व्युत्थान संस्कार का अभिभव तथा निरोध संस्कार का प्रादुर्भाव होने पर जो चित्त का एकाग्रता-एकनिष्ठता रूप परिणाम होता है, उसे समाधि कहा जाता है ।"[3] समाधि के महत्व के संबंध में शंकराचार्य[4] का मत है कि वेदान्त के श्रवण मात्र से उसका मनन करना सौ गुना अच्छा है और मनन से भी लाख गुणा अच्छा निदिध्यासन है तथा निदिध्यासन से भी अनन्त गुना निर्विकल्प-समाधि का महत्व है ।

---

1. श्री सदानंद : वेदान्तसार, पृ0 246.
2. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्ट सतसैया, छंद संख्या 609.
3. श्री सदानंद : वेदान्तसार, पृ0 246.
4. श्रुतेः शतगुणं विद्यान्मननं मननादपि ।

निदिध्यासं लक्षगुणमनन्तं निर्विकल्पकम् ।। 365 ।।

शंकराचार्य : विवेक चूडामणि, पृ0 119.

आलोच्य कृति में कवि ने "समाधि" के संबंध में अधिक नहीं कहा है क्योंकि कवि यह मानता है कि निदिध्यासन की परिपक्वता ही समाधि है ।[1]

उपर्युक्त विवेचन से दो बातें स्पष्ट होती है । कवि कर्मसिंह निर्मला ने अपनी इस रचना में वेदान्त के प्रभाव को अत्यधिक आत्मसात् किया है । उन्होंने न केवल वेदान्त से पारिभाषिक लिए हैं, अपितु उनकी परिभाषिकता भी वेदान्त से ली है । दूसरे, वे सिख धर्म की परम्परा में दीक्षित होने के कारण उन बिन्दुओं पर उपासना पद्धति से प्रस्थान-- भेद प्रकट करते हैं, जिनका प्रकट संबंध कर्मकांड या विग्रह-उपासना से है, जैसे अर्चन या पादवन्दन । ध्यातव्य है कि सिखधर्म में मूर्तिपूजा का विधान नहीं है । इस कवि का लक्ष्य न तो दर्शन-ग्रंथ की रचना करना था और न ही दर्शन की बारीकियों पर विचार करना, इसलिए उसके अनुचिन्तन में दार्शनिक गहराई और विस्तार नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का लक्ष्य अपने चतुर्दिक के समाज में वेदान्त और सिख धर्म की समन्वित जानकारी का प्रचार-प्रसार करना रहा है ।

---

1. निदध्यासन की प्रपकताइ ही, समाधइ ही समाध विचार ।
 यामे कोई भेद है, आगे करो सुधार ।।
 कर्म सिंह निर्मला : सदगुरु प्रकाश, पृ० 13.

:-:-

अध्याय - 5

"हरि अष्टछाप सतसैया" में आगत नैतिक-मूल्य

अध्याय – 5

हरि अदुष्ट सतसैया में आगत

नैतिक मूल्य

"हरि अदुष्ट सतसैया" में अभिव्यक्त नैतिक-मूल्यों का विवेचन करने से पूर्व (क) "नीति" और (ख) "मूल्य" पर विचार कर लेना अपेक्षित है । "नीति" शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की "नी" धातु (नी + क्तिन्) से हुई है, जिसका साधारण अर्थ है – ले जाना । अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि जीवन को लक्ष्य की ओर ले जाने वाली व्यवहार-रीति जिससे अपना हित हो तथा अन्यों का अहित अथवा हानि न हो, ही नीति है । धर्म, आचार, कर्तव्य आदि भी "नीति" के ही पर्यायवाची शब्द हैं ।[1]

(क) "नीति" की अवधारणा :-

"नीति" की चर्चा जिस शास्त्र में व्यापक रूप से होती है, उसे "नीतिशास्त्र" (एथिक्स) कहा जाता है । डा० आत्रेय के अनुसार—"नीति शब्द का अर्थ है ले जाने का तरीका अर्थात् जीवन को लक्ष्य की ओर किन-किन नियमों के पालन करने से ले जाया जा सकता है । संस्कृत के "नी" धातु से जिसका अर्थ ले चलना है, यह शब्द बना है । "धर्म" शब्द संस्कृत के "धृ" धातु से बना है । जिसका अर्थ धारण करना है । धारण का अर्थ है कायम रखना, नष्ट न होने देना, बर्बाद न होने देना । अर्थात् धर्म वे नियम हैं जिनसे जीवन व्यर्थ न जाय, बर्बाद न हो, भली भाँति कायम रहे, चलता रहे। "आचार" शब्द का अर्थ है जीवन का नियमित व्यवहार, नियन्त्रित जीवन; कर्तव्य का अर्थ है वे कर्म जो मनुष्य को अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिए अथवा जीवन को ठीक चलाने के लिए

---

1. वामन शिवराम आप्टे : संस्कृत -हिन्दी कोश , दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 1984 ई० पृ० 550.

करने चाहिए ।[1] "शास्त्र" शब्द संस्कृत में शिष्यतेऽनेन (शास् + ष्ट्रन्) से निर्मित है जिसका अर्थ है आज्ञा, समादेश, नियम, विधि, संचित भण्डार आदि, जैसे तर्कशास्त्र, वेदान्त शास्त्र, न्यायशास्त्र, अलंकार शास्त्र आदि ।[2] अत: साधारण शब्दों में दूसरों का अहित किए बिना अपना हित करने वाली व्यवहार रीतियों का संग्रह ही नीतिशास्त्र है । नीतिशास्त्र के संबंध में अनेक विद्वानों ने अपने विचार अभिव्यक्त किए है । व्युत्पत्ति के आधार पर जॉन एस० मेकेंजी ने नीतिशास्त्र के संबंध में कहा है —— "नीतिशास्त्र के लिए अंग्रेजी में "एथिक्स" (Ethics) और मॉरल फिलॉसफी (Moral Philosophy) नाम प्रचलित है । "एथिक्स "शब्द यूनानी नाम "टा एथिका" से लिया गयाहै । इस नाम का भी मूल शब्द"एथॉस"है जिसका अर्थ हैचरित्र, और यह मूल शब्द "ईथॉस" से संबंध रखता है जिसका अर्थ है रूढ़ि या आदत । "मॉरल" शब्द लेटिन के "मोरीज़" (Mores) से निकला है, जिसका अर्थ है आदतें या रूढ़ियाँ । इस प्रकार व्युत्पत्ति के आधार पर कहा जा सकता है कि नीतिशास्त्र मनुष्यों की आदतों और रूढ़ियों का अथवा, दूसरे शब्दों में उनके चरित्रों का, अर्थात् जिन सिद्धान्तों के अनुसार काम करते रहने की उनकी आदतें बन जाती हैं, उनका विवेचन करता है तथा यह विचार करता है कि कौन-सी बातें हैं जो उन सिद्धान्तों को उचित या अनुचित बनाती है, जो उन आदतों को अच्छी-बुरी या शुभ-अशुभ बनाती है ।"[3] संक्षेप में प्रचलित रीति-रिवाजों तथा सामाजिक परम्पराओं का नीतिशास्त्र से बहुत गहरा संबंध है । "प्रिंसिप्या एथिका" के लेखक जी०ई०मूर का कथन है —— "शुभ क्या है ? और अशुभ क्या है ?, और इन प्रश्नों की विवेचना का नाम मैं नीतिशास्त्र देता हूँ, चूंकि हर हालत में यह उस शास्त्र के अन्तर्गत होगा ।[4]

---

1. डा० भीखनलाल आत्रेय: भारतीय नीति-शास्त्र का इतिहास, लखनऊ हिन्दी समिति (सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश)।1964 ई० पृ० 8.
2. वामन शिवराम आप्टे : संस्कृत हिन्दी कोश, पृ० 1014.
3. जे०एस०मेकेंज़ी:नीति- प्रवेशिका (अनुवादक डा० गोवर्द्धन भट्ट आदि) दिल्ली, राजकमल, 1964 ई० पृ० 13.
4. जार्ज एडवर्ड मूर: नीतिशास्त्र मीमांसा (अनुवादक-डा०अशोक कुमार वर्मा) पटना, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, 1973 ई, पृ० 3.

नीतिशास्त्र के संबंध में डा० आत्रेय का अभिमत है ----- "नीतिशास्त्र धर्मशास्त्र, आचार-शास्त्र या कर्तव्य-शास्त्र जीवन-कला-विज्ञान है जो हमको जीवन का उचित निर्माण (Proper Planning) सिखाता है ।"[1] डा० वेद प्रकाश वर्मा के अनुसार--- "नीतिशास्त्र वह मानवीय अथवा आदर्शमूलक विज्ञान है जो सामाजिक जीवन व्यतीत करने वाले सामान्य मनुष्यों के आचरण या ऐच्छिक कर्मों पर निष्पक्ष एवं व्यवस्थित रूप से विचार करके उनके संबंध में उचित, अनुचित अथवा शुभ, अशुभ का निर्णय देने के लिए मापदण्ड प्रस्तुत करता है और इस निर्णय के आधार के लिए कुछ मूल सिद्धान्तों अथवा मानकों या आदर्शों की स्थापना करता है ।"[2] डा० मिश्र और डा० अवस्थी का कथन है ------- "नीतिशास्त्र मानव-आचरण की वह व्यवस्थित खोज है जिसका प्रयोजन उस नियम या उन नियमों को ढूंढ निकालना है जिन्हें मानव-कार्य को नियन्त्रित करना चाहिए, और उस शुभ या उन शुभों को ढूंढ लेना है जो मानव-जीवन में ढूंढने योग्य है ।"[3] श्री कृष्ण कुमार का इस संबंध में मत है ---"नीतिशास्त्र प्राकृतिक विज्ञानों से परे एक नियामक अध्ययन है । यह वास्तविक तथ्यों का अध्ययन नहीं, वरन् मूल्यों का अध्ययन है । इस प्रकार से हम तथ्यों के विज्ञान को मूल्यों के विज्ञान से विलक्षण समझते हैं । कुछ विज्ञान वर्णात्मक है और अन्य

---

1. डा० भीखनलाल आत्रेय : भारतीय नीति-शास्त्र का इतिहास, पृ09.
2. डा० वेद प्रकाश वर्मा : नीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्त, बम्बई, अलाईड पब्लिशर्स, 1977 ई0 पृ0 3.
3. डा० हृदय नारायण मिश्र तथा डा० जमुना प्रसाद अवस्थी : नीतिशास्त्र की भूमिका, चण्डीगढ़, हरियाणा साहित्य अकादमी, 1983 ई0, पृ07.

का विषय अधिमूल्यन है । पहले प्रकार के विज्ञान वास्तविकता का अध्ययन करते हैं, दूसरे आदर्शों का ।" यहाँ "नीतिशास्त्र" की चर्चा हमें प्रसंगवश इसलिए करनी पड़ी है कि नीतिशास्त्र की इन परिभाषाओं में प्रायः "नीति" ही परिभाषित होती रही है, जो हमारा ध्यातव्य अभीष्ट है ।

नीति और नैतिकता :-

"नीति" और "नैतिकता" में पारस्परिक संबंध होते हुए भी पर्याप्त अन्तर है "नीति" जीवन को सुख के साथ विकसित करने का साधन हो सकती है, उदाहरणार्थ — राजनीति, अर्थनीति इत्यादि । इस अर्थ में "नीति" अपने हित से जुड़ी रहने वाली धारणा है, इसके विपरीत "नैतिकता" में लाभ या हानि का उद्देश्य नहीं जुड़ा रहता, अपितु सही और गलत की भावना जुड़ी रहती है । इस प्रकार "नैतिकता" मनुष्य के आचरण को नियमबद्ध करती है , जबकि "नीति" अपने कार्य की सफलता के लिए किसी भी प्रकार का साधन तलाश कर सकती है । पश्चिम में इसलिए "नीति" के लिए "एथिक्स" और "नैतिकता" के लिए "मॉरेलिटी" जैसे शब्दों का प्रयोग होता है ।

नैतिकता और धर्म :-

प्रायः भ्रमवश "नैतिकता" और "धर्म" को एक मान लिया जाता है, जबकि इन दोनों में पर्याप्त अन्तर है । धर्म का संबंध दो बातों से होता है — (1) ईश्वर पर आस्था और (2) ईश्वर के भय से दूसरों के प्रति कर्तव्य का पालन । इसलिए "धर्म" अपनी श्रेष्ठतम दशा में मनुष्य को नैतिक बना सकता है । यहीं पर धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र एकाकार हो जाते हैं । सामान्य दशा में "नैतिकता" और "धर्म" अलग अलग ही चल सकते हैं । धर्म का विकृत रूप भी "धर्म" ही कहलाता है, जबकि वह "नैतिकता" से बहुत दूर हो जाता है । तलवार के बल पर जब "धर्म" का प्रचार और प्रसार किया जाता है तो वह "नैतिकता" से कोसों दूर होता है, लेकिन जब सत्य, शम, दम, इन्द्रिय-निग्रह,

---

1. कृष्ण कुमार: नीतिशास्त्र (भाग 1), प्रयाग, गर्ग ब्रदर्स, 1953 ई0, पृ0 8.

परोपकार जैसे सद्गुणों का आधार लेकर "धर्म" चलता है, तो वहाँ प्रकारांतर से "नैतिकता" को ही प्रकट करता है। "नैतिकता" का संबंध समाज, धर्म, राजनीति, मानवता इत्यादि से जुड़कर इसके अनेक रूप हो जाते हैं जिन्हें मुख्य रूप से वैयक्तिक नैतिकता, सामाजिक नैतिकता, राजनैतिक नैतिकता, आर्थिक नैतिकता, धार्मिक नैतिकता, सार्वभौमिक नैतिकता कहा जा सकता है। कवि कर्म सिंह निर्मल ने प्रायः वैयक्तिक, धार्मिक, सामाजिक नैतिकता का ही विवरण दिया है।

(ख) <u>मूल्य की अवधारणा</u> -

साधारण अर्थों में किसी वस्तु को खरीदने के बदले में दिया जाने वाला धन अथवा वह गुण या तत्व जिसके कारण किसी वस्तु का महत्व या मान हो, मूल्य कहलाता है।[1] डा० वेद प्रकाश वर्मा के मतानुसार---- "मूल्य शब्द किसी भौतिक वस्तु अथवा मानसिक अवस्था के उस गुण का बोध कराता है, जिसके द्वारा मनुष्य की किसी आवश्यकता या इच्छा की तृप्ति होती है।"[2]

मूल्य कोई मूर्त्त पदार्थ नहीं है जिसे हम देख सकें, बल्कि यह एक धारणा है, जिसे हम अनुभव कर सकते हैं। कोई पदार्थ किसी व्यक्ति के लिए मूल्यवान हो सकता है और वही पदार्थ किसी अन्य व्यक्ति के लिए मूल्य-रहित भी हो सकता है। "मूल्य" का संबंध व्यक्ति की इच्छाओं की पूर्ति से है। "मूल्य" शब्द अंग्रेज़ी के वैल्यू (Value) शब्द का अनुवाद है। इस शब्द की व्याख्या अत्यंत व्यापक एवं अनेक दृष्टिकोणों से की गई है। इसे सर्वप्रथम अर्थशास्त्र ने मूल्य (कास्ट) के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता रहा और धीरे धीरे

---

1. नवल जी : नालन्दा विशाल शब्द-सागर, पृ० 1118.
2. डा० वेद प्रकाश वर्मा : नीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्त, बम्बई, अलाईड पब्लिशर्स, 1977 ई० पृ० 12.

इसका प्रचलन भिन्न अर्थों में होने लगा । कालान्तर में व्यक्तिवादी, सामाजिक, भोगवादी, आर्थिक, राजनीतिक आदि सभी दृष्टिकोणों से मूल्य का प्रयोग होने लगा, अतः इसे किसी सीमा में नहीं रखा जा सकता । "मूल्य" शब्द को मानव या जीवन के साथ भी जोड़ा जाने लगा है और इसकी भी अनेक पक्षों में चर्चा होने लगी है । विशेष कर मानव-मूल्यों की विवेचना दर्शन के आधार पर की जाती है । अनेक विद्वानों ने "मूल्य" को मानविकी ( ) से जोड़ा है । डा०कुमार विमल के अनुसार मानविकी ( ) के संदर्भ में मूल्य का अर्थ है जीवन-दृष्टि या स्थापित वैचारिक इकाई, जिसे हम सक्रिय "नार्म" भी कह सकते हैं ।[1] डा० गिरिजा कुमार माथुर के मतानुसार मानव-मूल्य हमेशा आदर्श होते हैं' यथार्थ में उन्हें कभी ग्रहण नहीं किया जाता है ।"[2] श्री लक्ष्मी कान्त वर्मा का "मूल्य" के संबंध में कथन है कि अनुभूति और जीने की अधिकार-वांछा को कलाकार (या साधारण जन) किसी भी कर्म-शृंखला के माध्यम से व्यक्त करने की चेष्टा करता है, तो वहीं वह मानव-मूल्यों की स्थापना करता है ।[3]

मानवीय-मूल्यों का नीतिशास्त्र अथवा नैतिकता से बहुत गहरा संबंध है । इन दोनों के आपसी संबंधों के बारे में शशि सहगल का मत है-- "मूल्य अपने-आप में क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए यह न भूलना होगा कि जब"मूल्यों" की बात करते हैं तो सहज ही नीतिशास्त्र (Ethics) की सीमाओं में प्रवेश कर जाते हैं ।"[4] मेयर और रॉस के अनुसार नीतिशास्त्र प्राथमिक रूप से मूल्यों का ही अध्ययन है ।[5] मानवीय मूल्य का सिद्धान्त ही

---

1. डा० कुमार विमल: आलोचना (अक्तूबर-दिसम्बर) 1967 ई०, पृ० 64.
2. डा० गिरिजा कुमार माथुर: लहर (सितम्बर, 1960ई०), पृ० 43.
3. लक्ष्मीकान्त वर्मा: लहर (सितम्बर, 1960 ई) ,पृ० 44.
4. शशि सहगल :नयी कविता में मूल्य बोध, दिल्ली, अभिनव प्रकाशन, 1976 ई०, पृ 0 13.
5. उद्धृत डा० हृदय नारायण मिश्र और डा०जमुना प्रसाद अवस्थी : नीतिशास्त्र की भूमिका, पृ० 168.

समस्त नैतिकता का सिद्धान्त है, यही मानकर हेनरी स्टुअर्ट ने भी मानवीय-मूल्यों को नैतिकता से जोड़ दिया है ।

इन परिभाषाओं से उपलब्ध निष्कर्ष में हम यह कह सकते हैं कि मानवीय-मूल्य ही नैतिक मूल्य है । समाज में नैतिक-मूल्यों के गुण दोष का जितना अधिक विवेचन होता है समाज उतनी ही तीव्र गति से प्रगति के मार्ग पर अग्रसर होता है । भारतीय-दर्शन में नैतिक मूल्यों को गुण, शुभ, पुण्य, धर्म आदि भी कहा गया है । आलोच्य कृति "हरि अदृष्ट सतसैया" में नैतिक मूल्यों का विवेचन सुनियोजित ढंग से नहीं हुआ है, इसके विपरीत कहीं-कहीं नैतिक-मूल्यों का उल्लेख भर हुआ है । कवि ने किसी भी स्थल पर नैतिक-मूल्यों का विस्तृत विवेचन नहीं किया है । कहा गया है कि निर्भयता, मन की शुद्धता ज्ञान और योग का बुद्धिमत्तापूर्ण विभाग, दान, आत्म संयम और यज्ञ, शास्त्रों का अध्ययन, तप और ईमानदारी,[1] अहिंसा, सत्य , क्रोध रहितता त्याग, शान्ति, दूसरों के दोष ढूँढने से विरक्ति, प्राणियों पर दया, लोभ रहितता, मृदुता, लज्जा, अचंचलता,[2] तेज, क्षमा, धैर्य , पवित्रता, द्वेषहीनता, अत्यंत अभिमानी न होना[3] दैवीय स्वभाव वाले पुरुषों के नैतिक मूल्य हैं । सुविधा के लिए हमने 'हरि अदृष्ट सतसैया' में आगत् नैतिक-मूल्यों को दो वर्गों

---

1. अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।।
डा० राधाकृष्णन् (सम्पादक):भगवद्गीता, पृ० 325.

2. अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रिरचापलम् ।।
डा० राधाकृष्णन् (सम्पादक):भगवद्गीता, पृ० 325.

3. तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ।।
डा० राधाकृष्णन् (सम्पादक): भगवद्गीता, पृ०326.

में विभाजित किया है --

5.1 विधि-परक नैतिक-मूल्य

5.2 निषेध-परक नैतिक -मूल्य

5.1 विधि परक नैतिक-मूल्य

विधि परक नैतिक मूल्यों के लिए चरम-मूल्य, श्रेय तथा सद्गुण जैसे शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। चरम-मूल्य के संबंध में डा० देवराज का मत है ----- "चरम मूल्य या श्रेय स्वयं जीवन का नाम है, वह उस जीवन की विशेषता है जो वांछनीय समझा जाता है। संवेदनशील मनस्वी व्यक्ति निरादरपूर्ण जीवन की अपेक्षा मृत्यु को ज्यादा पसन्द करता है, इसी प्रकार एक ऐसा जीवन जिसमें अनवरत भयंकर शारीरिक कष्ट रहता है, वांछनीय नहीं समझा जाता। इसलिए नैतिक कर्म वह नहीं है जो जीवन की मात्रा को बढ़ाता है, नैतिक अथवा धार्मिक व्यापार वह है जो पहले से मौजूद जीवन को सुखी और श्रेष्ठतर बनाने में मदद करता है।[1] डा० दिवाकर पाठक ने अन्य विद्वानों के अभिमत उद्धृत करते हुए "सद्गुण" के संबंध में कहा है -----"सद्गुण चरित्र की उत्कृष्टता है। प्रो० पॉल जैनेट का कहना है कि इच्छापूर्वक आंतरिक उत्कर्ष की वृद्धि का नाम सद्गुण है। काण्ट की राय में जितना ही अधिक इच्छाओं एवं स्वार्थों पर हम विजय प्राप्त करते हैं, उतना ही अधिक सद्गुण हम अर्जित करते हैं। सद्गुण आत्मा के नैतिक विकास का सूचक है। चरित्र का जितना ही अधिक नैतिक विकास होता है उतना ही अधिक सद्गुणों की मात्रा बढ़ती है। इस अर्थ में सद्गुण को चरित्र का आभूषण कहा जा सकता है"।[2] हम विधिपरक नैतिक-मूल्यों के अन्तर्गत सत्य, विवेक, साहस और धैर्य, संयम, सन्तोष, श्रद्धा, नम्रता का अध्ययन करेंगे।

---

1. डा० देवराज : संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, वाराणसी, प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग (उत्तर प्रदेश) 1957 ई०, पृ० 295.

2. डा० दिवाकर पाठक: भारतीय नीतिशास्त्र, पटना, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, 1974 ई० पृ० 113.

5.1.1 सत्य

सत्य के दो अर्थ होते हैं । पहला अर्थ है परम तत्व का ज्ञान तथा दूसरा अर्थ है जो तथ्य जिस रूप में . . देखा , सुना अथवा अनुभव किया गया, उसे उसी रूप में बिना कोई परिवर्तन किए प्रस्तुत करना सत्य का आचरण अथवा व्यवहार है । अन्य शब्दों में मन, वचन, और कर्म से सत्य का अनुसरण ही सत्य का आचरण है । "सत्य" के पहले अर्थ का विवेचन हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं । यहाँ नैतिक मूल्यों के अन्तर्गत दूसरे अर्थ सत्य के व्यवहार का विवेचन किया जाएगा । "मनु स्मृति" के अन्तर्गत सत्य के आचरण को महत्वपूर्ण मानते हुए "सत्यं शिवं सुन्दरम्" के सिद्धान्त का अनुमोदन किया गया है ----

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात सत्यम प्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ।।"[1]

"भगवद्गीता" में भी सत्य के आचरण को दैवी सम्पत्ति माना गया है ।[2] गुरु नानक देव जी ने सत्य के आचरण को सत्य अर्थात् परम तत्व के ज्ञान से भी अधिक महत्वपूर्ण स्वीकार किया है ।[3]

कवि कर्म सिंह निर्मला ने भी असत्य की तुलना निशाचर से करते हुए सत्य के आचरण को महत्वपूर्ण माना है ----

"झूठ निसाचर सो सुनो, झूठ निसाचर आहि ।
जप तपादि गन जगत् को, वाही भक्ष है चाहि ।।"[4]

---

1. डा० रामजी उपाध्याय : संस्कृत सूक्ति रत्नाकर, इलाहाबाद, लोक भारती प्रकाशन, 1967 ई०, पृ० 41.

2. "अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रिरचापलम् ।।"
डा० राधाकृष्णन् (सम्पादक): भगवद्गीता, पृ० 125.

3. मन हठ बुधी केतीया केते बेद बीचार ।।
केते बंधन जीय के गुरमुखि मोख दुआर ।।
सचहु उरै सभु को उपरि सचु आचारु ।।
शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ० 62.

4. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 173.

एक अन्य स्थल पर कवि का सत्य आचरण के संबंध में कथन है-

"चिद ते जोई भिन्न कर, द्विज को साच दिखाइ ।
साची कहनो साच तउ, नां तर झूठ सुगाइ ।।"[1]

आलोच्य कृति में सत्य-असत्य आचरण का इससे अधिक उल्लेख नहीं किया है ।

5.1.2 विवेक

साधारण अर्थों में विवेक उस शक्ति का नाम है जो भले-बुरे का ज्ञान करवाती है । बुद्धि, विवेक-बुद्धि, मति,पटुता, सयानापन, ज्ञान, प्रवीणता, प्रज्ञा आदि विवेक के पर्यायवाची शब्द हैं । आलोच्य कृति में कवि ने विवेक के महत्व को अनेक स्थलों पर स्वीकार किया है, उदाहरण दृष्टव्य है --

"कर विवेक जउ मन गहो, तउ हुइ सुख महांन ।
निउ नृप मंत्री कूर को, गह कर हुइ सुख खान ।।"[2]

तथा

"जउ विवेक मन को गहे, तउ निज छत्र झुलाइ ।
सेना जो गन साह की, तउ अनुकूल सुहाइ ।।"[3]

आलोच्य कृति में कवि ने विवेक के लिए बुद्धि[4],मति[5] तथा विवेकी के लिए सयाना[6], मेधी[7], पटु[8], प्रवीण[9] आदि शब्दों का प्रयोग किया है ।

---

1. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 471.
2. वही, छंद संख्या 335.
3. वही, छंद संख्या 337.
4. वही, छंद संख्या 409.
5. वही, छंद संख्या 381
6. वही, छंद संख्या 306 तथा 440.
7. वही, छंद संख्या 694
8. वही, छंद संख्या 317, 375, 484.
9. वही, छंद संख्या 342, 686.

वेदान्त -दर्शन में "विवेक" के लिए श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन आवश्यक माना गया है। सिख धर्म में भी विवेक के लिए इन्हीं तीनों को महत्वपूर्ण माना है।[1] पिछले अध्याय में दार्शनिक विचारों के अन्तर्गत हम विवेक के दार्शनिक पक्ष का विवेचन कर चुके हैं।

5.1.3 साहस और धैर्य

डा० अवतार सिंह के अनुसार" साहस सिख नैतिकता का एक केंद्रीय सद्गुण है। अत्यंत सरलता से यह कहा जा सकता है कि साहस से रहित मनुष्य विश्वसनीय मनुष्य नहीं होता है।[2] साहस, धैर्य और उत्साह के संबंध में डा० रामचंद्र शुक्ल का कथन है —— "बिना बेहोश हुए भारी फोड़ा चिराने को तैयार होना साहस कहा जाएगा, पर उत्साह नहीं। इसी प्रकार चुपचाप, बिना हाथ पैर हिलाए, घोर प्रहार सहने के लिए तैयार रहना साहस और कठिन से कठिन प्रहार सहकर भी जगह से न हटना धीरता कही जाएगी। ऐसे साहस और धीरता को उत्साह के अन्तर्गत तभी ले सकते हैं जब कि साहसी या धीर उस काम को आनंद के साथ करता चला जाएगा जिसके कारण उसे इतने प्रहार सहने पड़ते हैं।"[3] निकोलाइ हार्टमन ने भी साहस को सर्वोत्तम सद्गुण माना है।[4]

---

1. अवतार सिंह : एथिक्स ऑफ द सिख्स, पटियाला, पंजाबी विश्वविद्यालय, 1970 ई, पृ० 86.
2. वही , पृ० 109.
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : प्रतिनिधि निबंध {संपादक सुधाकर पाडेय}, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1979 ई० ,पृ० 15.
4. निकोलाइ हार्टमन : एथिक्स {भाग II} ,लंदन, जार्ज एलन एन्ड उनविन, 1951 ई०, पृ० 435.

सिख धर्म में साहस और धैर्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं। गुरु अर्जुन देव "सूरबीर बचन के बली"[1] ने अपने वचन को निभाने के लिए हंसते हंसते अपने प्राण दे दिए। गुरु तेग बहादुर जी ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राण दिए। अन्तिम गुरु गोबिंद सिंह जी ने अपने चारों पुत्रों का बलिदान कर दिया। साहस और धैर्य के लिए आदि ग्रंथ में प्रायः निडर[2], निरभै,[3] सूरा[4], सूरबीर[5] इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

---

1. शबदार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 392.

2. मूए कउ कहु मारे कउनु ।। निडरे कउ कैसा डरु कवनु ।।
सबदि पछाने तीने भउनु ।।

वही, पृ0 221.

3. पुत्र प्रहिलाद सिउ कहिआ माइ ।। परविरति न पड़हु रही समझाइ ।।
निरभउ दाता हरि जीउ मेरै नालि ।। जे हरि छोडउ तउ कुलि लागै ग्रगालि ।।

वही, पृ0 1154.

4. गगन दमामा बाजिओ परिओ नीसानै घाउ ।।
खेतु जु मांडिओ सूरमा अब जूझन को दाउ ।।
सूरा सो पहिचानीऐ जु लरै दीन के हेत ।।
पुरजा पुरजा कटि मरै कबहू न छाडै खेतु ।।

वही, पृ0 1105.

5. कोटि कोटि अघा काटनहारा ।।
दुख दूरि करन जीअ के दातारा ।।
सूरबीर बचन के बली ।।
कउला बपुरी संती छली ।।

वही, पृ0 392.

सिख-धर्म से प्रभावित कवि का "सूरा" के संबंध में कथन है ---

"इम सच ते बेमुख हुइ, जो ही सो पछुताइ ।
जिम रण ते सूरा भजो, सो उपरासी गाइ ।।"[1]

एक स्थल पर कवि ने "निरभीत" शब्द का भी प्रयोग किया है--

"या मन केहरि सो लखो, तन बन मो सुन मीत ।
जो याँको नीके हने, सो विचरे निरभीत ।।"[2]

एक अन्य स्थल पर कवि ने धीर और धीर पुरुष के संबंध में कहा है -

"वही बीर मे बीर भव, वही धीर मे धीर ।
वही सभी मे सभी भव, नह जिह वास न पीर ।।"[3]

कवि ने इस आलोच्य कृति में अनेक दोहों[4] में साहस और धैर्य के महत्व को स्वीकार किया है ।

5.1.4 संयम

"संयम" का अर्थ है मन और इन्द्रियों को वश में करना । इसे इन्द्रिय-निग्रह भी कहा जाता है जो कि योग-साधना में प्राथमिक सोपान है । संयम अथवा आत्म-नियंत्रण के संबंध में "भगवद्गीता" में कहा गया है कि---- "कुछ लोग श्रवण इत्यादि इन्द्रियों को, संयम की अग्नि में आहुति दे देते हैं, अन्य लोग शब्द इत्यादि इन्द्रियों के विषयों की आहुति इन्द्रियों की आग में देते हैं ।"[5]

---

1. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 385.
2. वही ,छंद संख्या 340
3. वही ,छंद संख्या 349.
4. वही , छंद संख्या 311, 315,318,405,408, 461,611.
5. श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ।।
डा० राधाकृष्णन् (सम्पादक):भगवद्गीता,पृ० 168.

इससे अगले श्लोक में कहा गया है कि — "फिर कुछ लोग अपने इन्द्रियों के सब कर्मों को और प्राणशक्ति के सब कर्मों को आत्मसंयम-रूपी योग की अग्नि में समर्पित कर देते हैं, जो [अग्नि] ज्ञान द्वारा जलाई जाती है ।"[1]

कवि ने भी आलोच्य कृति में मन की वृत्तियों के निग्रह पर बल दिया है ---

"मन चोरी छित्ति जो, है बहरी वह चीन ।
कैसे तासि जीव बच, बचे तु परम प्रबीन ।।"[2]

जीव इन्द्रियों से सांसारिक विषय-वासनाओं का भोग करता है, उन पर नियंत्रण करने की ओर भी कवि ने संकेत किया है यथा---

"जग वासन को गहो इम, जिम योगी गह चीन ।
जो सम ऐसी नह करे, किम नह तिह जग गैन।।"[3]

सिख-धर्म में संयम को एक साधन के रूप में माना गया है । डा० अवतार सिंह के अनुसार सिख-धर्म की नैतिकता में भी संयम अथवा आत्म -नियंत्रण सद्गुण के रूप में माना गया है ।[4] सिख-धर्म में संयम को सहज रूप में स्वीकार किया गया है । डा० अवतार सिंह के अनुसार गुरु नानक देव जी ने अनेक स्थलों पर संन्यासियों द्वारा प्रचलित सख्त आत्म-नियंत्रण का विरोध

---

1. सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयम योगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ।।
डा० राधाकृष्णन् [सम्पादक]:भगवद्गीता, पृ० 169.
2. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 342.
3. वही ,छंद संख्या 346.
4. डा० अवतार सिंह : एथिक्स ऑफ द सिक्खज़, पृ० 104.

किया है । "हठि निग्रहि नही पाईऐ"[1] कह कर गुरु नानक देव जी ने हठ-योग का विरोध किया है । परन्तु इसके विपरीत कवि ने एक स्थल पर हठ-योग का समर्थन किया है ——

"राजयोग हठयोग कर, मन को रोधो बीर ।
जो रोधे बिन सुख नही, भने मुनी पड धीर ।।
हठ योग अठ अंग युत, जो यामों है भेद ।
हुइ प्रबीन तिह गहे जो, हमेंगो सोई छेद ।।[2]

कवि के अनुसार इस संसार से पार उतरने अर्थात् मुक्ति के लिए योगी को सख्ती से संयम करना पड़ता है यथा --

"भवधारा ते पार हुइ, जोगी कर के जोर ।
सो ही सिख को पार कर, हर भोगन के भोग ।।"[3]

कवि सिख-धर्म की नैतिकता के अनुरूप संयम को महत्त्वपूर्ण मानता है, अन्तर केवल इतना है कि कवि द्वारा वर्णित संयम वेदान्त-दर्शन की नैतिकता से अधिक प्रभावित है ।

5.1.5 संतोष --

संतोष का अर्थ है परितुष्टि । किसी प्रकार की कामना का न होना ही परितुष्टि है । परितुष्टि का अर्थ निष्कर्मण्य होना कदापि नहीं है । फल की इच्छा से किए गए कार्य से परितुष्टि नहीं होती, अपितु बिना सफलता-असफलता को सोचे किया गया कार्य परितुष्टि प्रदान करता है ।

---

1. शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी: पृ० 436.
2. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्ट सतसैया, छंद संख्या 685-686
3. वही , छंद संख्या 689

सिख-धर्म की नैतिकता में संतोष एक महत्वपूर्ण सद्गुण है ।[1] डा० सुरेन्द्र सिंह विलखू के अनुसार संतोष आदि ग्रंथ की भक्ति के तीन मुख्य अंगों में से एक है ।[2] आदि ग्रंथ में अनेक स्थलों पर यथा -- "सतु संतोखु संजम है नालि",[3] "सत संतोखि रहहु जन भाई"[4] तथा "थाल विचि तिनि वसतू पईओ सतु संतोखु वीचारो"[5] कह कर संतोष के महत्व को स्वीकार किया गया है ।

कवि के अनुसार लोभ, तृष्णा आदि को दूर करने के लिए संतोष बहुत आवश्यक है ---

"रीतो नित्य सो पेट जिह, लोभ सकति लख सोइ ।
किमहूँ पूरन होइ नहि, बिन सतोख वह जोइ ।।
त्रिसना क्रिस्ना नागनी, गई जगत को खाइ ।
पंन्गारि संतोख बिन, याति कोइ बचाइ ।।"[6]

एक अन्य स्थल पर कवि का कथन है कि संतोष के बिना "तोख अर्थात् प्रसन्नता को प्राप्त नहीं किया जा सकता ---

"देख्यो लेख्यो पुना पुन, बिन संतोख न तोख ।
लाह बिना लख तोख जो, लख तासो लख धोखा।।"[7]

---

1. डा० अवतार सिंह : एथिक्स ऑफ सिख्स, पृ० 119.
2. डा० सुरेन्द्र सिंह विलखू: आदि ग्रंथ के परम्परागत तत्वों का अध्ययन पटियाला, भाषा विभाग (पंजाब) , 1978 ई०, पृ० 140.
3. शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ० 939.
4. वही ,पृ० 1030.
5. वही , पृ० 1429.
6. कर्म सिंह निर्मला:हरि अद्भुट सतसैया छंद संख्या 144-145.
7. वही , छंद संख्या 151.

5.1.6 श्रद्धा

किसी के गुण अथवा शक्ति आदि से प्रभावित होकर उस पर किया जाने वाला विश्वास, आस्था, निष्ठा ही श्रद्धा है। आचार्य शुक्ल के अनुसार---- "किसी मनुष्य में जनसाधारण से विशेष गुण या शक्ति का विकास देख उसके संबंध में जो एक स्थाई आनंद पद्धति हृदय में स्थापित हो जाती है उसे श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा महत् की आनंदपूर्ण स्वीकृति के साथ साथ पूज्य बुद्धि का संचार है।"[1] "भगवद्गीता" में श्रद्धा के संबंध में कहा गया है कि जिस व्यक्ति में श्रद्धा है जो इस ज्ञान को पाने में तत्पर है और जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है, वह ज्ञान को प्राप्त करता है और ज्ञान को प्राप्त करके वह शीघ्र ही सर्वोच्च शान्ति को प्राप्त करता है।[2]

आलोच्य कृति में कवि श्रद्धारहित जीव को अपूर्ण मानता है, --

"किम ऊरो पूरो लखो, सरधायुत नर जोइ।
किम पूरो ऊरो लखो, बिन सरधा नर जोइ।।"[3]

वेद वाक्य और ब्रह्म-ज्ञानी गुरू के प्रति श्रद्धा भाव कवि ने अनेक स्थलों पर अभिव्यक्त किया है उदाहरण दृष्टव्य है ------

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : प्रतिनिधि निबंध (श्रद्धा भक्ति) पृ० 30.
2. श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।
डा० राधाकृष्णन् (सम्पादक) भगवद्गीता, पृ० 173.
3. कर्म सिंह निर्मला: हरि अष्ट सतसैया, छंद संख्या 404.

"इह सरधालू सेव कर, करी स्रवन जिम मान ।
गुर सु बेद सम ते अधिक , करिये ताकी जान।।"[1]

5.1.7 नम्रता

विनीत अथवा झुका हुआ होने का भाव नम्रता है । स्वयं के प्रति दीन-हीन होने के दृष्टिकोण को भी नम्रता का भाव कहा जा सकता है । श्री गुरु ग्रंथ साहिब" में नम्रता के सद्गुण को विशेष महत्व दिया गया है । गरीब, नीच, निमाना इत्यादि कह कर इस भाव को गुरु वाणी में अभिव्यक्त किया गया है । श्री गुरु ग्रंथ साहिब में कहा गया है ----

"नीचु अनाथु अजानु मै निरगुनु गुणहीन ।।
नानक कउ किरपा भई दास अपना कीनु ।।"[2]

आलोच्य कृति में भी कवि ने स्वयं को अनाथ कहते हुए नम्रता के महत्व को स्वीकार किया है ---

"मम अनाथ को हाथ गहि, श्री गुर तुम गन नाथ ।
और भेख गन मे पिखे, तुम सी नह उन गाथ ।।"[3.]

अन्य स्थल पर "श्री गुरु ग्रंथ साहिब" में कहा गया है ---

"होइ निमाणी ढहि पवा पूरे सतिगुर पासि ।।
निमाणिआ गुरु माणु है गुरु सतिगुरु करे साबासि ।।"[4]

इसी प्रकार का भाव कवि ने इस आलोच्य कृति में अभिव्यक्त किया है --

"नाथ नाथ के आन दर, तुमरे दर पर आइ ।
किरना कर किरना करो, पुन वह दर न दिखाइ ।।"[5]

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 403
2. शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 815.
3. कर्म सिंह निर्मला:हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 448.
4. शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब , पृ0 51.
5. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 452.

इन विधि-परक नैतिक मूल्यों के विवरण से यह आभासित होता है कि कवि की दृष्टि सद्‌गुणों के प्रचार और प्रसार पर केन्द्रित थी । ये गुण सार्वभौमिक महत्व के तो हैं ही, भारतीय परिप्रेक्ष्य में धर्म को दृढ़ आधार भी प्रदान करने वाले हैं । कर्मसिंह निर्मला केवल कवि न थे, धर्म में आस्थावान व्यक्ति भी थे। इसीलिए इन गुणों के प्रति उन्होंने आसक्ति प्रदर्शित की है । ये भारत के परम्परागत आदर्शों और आदर्श मनुष्यों की ओर भी संकेत करते हैं ।

5.2 निषेध-परक नैतिक मूल्य

निषेध परक नैतिक मूल्यों के लिए अधर्म, अशुभ, दुर्गुण आदि शब्दों का प्रयोग होता है । दुर्गुण, सद्‌गुण का विलोम होता है । अनुचित कार्यों को बार-बार करते रहने से हम दुर्गुणों को अर्जित कर लेते हैं ।[1] "श्रीगुरुग्रंथसाहिब" में दुर्गुणों की तुलना मनुष्य के गले में पड़ी हुई जंजीरों से की गई है ।[2] अधर्म के संबंध में "मनुस्मृति" में कहा गया है कि अधर्म से कुछ समय तक मनुष्य बढ़ता है, फिर कल्याण का अनुभव करता है, शत्रुओं को जीत भी लेता है किन्तु अन्त में समूल नष्ट हो जाता है ।[3] निषेध परक नैतिक, मूल्यों के अन्तर्गत काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, निंदा, तृष्णा आदि अवरोधक शक्तियों का अध्ययन किया जाएगा ।

---

1. डा० दिवाकर पाठक: भारतीय नीतिशास्त्र, पृ० 113.
2. नानक अउगुण जेतड़े तेते गली जंजीर ।।
   शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ० 595.
3. अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
   ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति ।।
   डा० राम जी उपाध्याय: संस्कृत सूक्ति रत्नाकर पृ०41.

5.2.1 काम

काम का साधारण अर्थ है कामना अर्थात् इच्छा करना । परन्तु प्रायः स्त्री-पुरुष के पारस्परिक शारीरिक संबंधों को काम के अर्थ के रूप में माना जाता है । वासना काम का पर्यायवाची शब्द है । आदि शंकराचार्य ने वासना तीन प्रकार की मानी है यथा - लोक वासना , देह वासना और शास्त्र वासना[1] । लोक वासना के संबंध में कवि का कथन है ----

"जग वासन को गहो इम, जिम योगी गह पौन ।
जो सम ऐसी नह करे, किम नह तिह जग गैन ।।
पिहत सु घट को अनल को, नह जिम फैले धूंड़ ।
जो जग वासन चाहे इम, ताँही सुध सम हुइ ।।"[2]

भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए काम को बहुत शक्तिशाली स्वीकार किया है ।[3] कवि भी काम को बहुत बलशाली मानता है यथाः --

"मुनी गुनी गन गनी पिख, पुन गन पेखें सूर ।
इन गन को गन सीस पर, काम बजावै तूर ।।
मम अनाथ किम गनति मो, गनी गनी गन जौन
काम गनी गन तौन को, गने गौन ते गौन ।।"[4]

सिख-धर्म के नैतिक मूल्यों में काम का पूर्ण रूप से विरोध नहीं किया गया है । अधिकांश गुरुओं ने वैवाहिक जीवन व्यतीत किया है, इसलिए

---

1. लोकानुवर्तन त्यक्त्वा त्यक्त्वा देहानुवर्तनम् ।
शास्त्रानुवर्तनं त्यक्त्वा स्वाध्यासापनयं कुरु ।। 271 ।।
आचार्य शंकराचार्य : विवेक -चूडामणि पृ० 89.

2. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 346, 347.

3. इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ।।
डा० राधाकृष्णन् [सम्पादक]:भगवद्गीता पृ० 152.

4. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 132-133.

कहा जा सकता है कि सिख धर्म की नैतिकता में पति-पत्नी संबंधों की सीमा तक काम को मान्यता प्राप्त है । पति- पत्नी के संबंधों को छोड़कर प्रायः देह-वासना का विरोध किया गया है ।[1] सिख धर्म के नैतिक मूल्यों के विपरीत कवि ने देह वासना के कारण स्त्री की तुलना बाज से और पुरुष की तुलना पक्षी से की है यथा—

"सो संयानी से सुनो, मरद पखिस जो बाच ।।
स्याबा स्याबा ताहि को, वही मरद है साच ।।"[2]

इसी स्थल पर कवि ने नारी की तुलना डायन से भी की है —

---

1. भ्रिंग पतंगु कुंचरु अरु मीना ।
मिरगु मरै सहि अपुना कीना ।।
त्रिसना राचि ततु नही बीना ।।
कामु चितै कामणि हितकारी ।।
क्रोधु बिनासै सगल विकारी ।
पति मति खोवहि नामु विसारी ।।
पर घरि चीतु मनमुखि डोलाइ ।।
गलि जेवरी धंधै लपटाइ ।।
गुरमुखि छूटसि हरि गुण गाइ ।।
शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 225-226.

2. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 136.

"नारी डाइन सी लखी, जिह नर को कट सार ।
किसहूँ नाही सो बचे, बच जो ईस क्रिपार ।।[1]"

कवि के मतानुसार स्त्री की काम-चेष्टाओं से वीर पुरुष ही बच सकता है ---

"भौंह-चाप को चाप जब, सी कटाख हन तीर ।
बिन बिचार तब बचे को, जो बच सोइ बीर ।।"[2]

भगवद्गीता" में भी भगवान कृष्ण ने शक्तिशाली अर्जुन को उपदेश दिया है कि इसे अर्थात् काम को समझकर मार डालो ।[3]

कवि ने आलोच्य कृति में काम का प्रबल विरोध किया है ।

5.2.2 क्रोध

क्रोध नामक मनोविकार,जिसमें बढ़ता है और जिसकी ओर बढ़ता है, दोनों के ही विनाश का कारण बनता है । डा० राम चन्द्र शुक्ल के अनुसार---"क्रोध दुःख के चेतन कारण के साक्षात्कार या अनुमान से उत्पन्न होता है । साक्षात्कार के समय दुःख और उसके कारण के संबंध का परिज्ञान आवश्यक है ।[4]" "रामायण" में कहा गया है कि कुपित मनुष्य नहीं जानता कि क्या कथनीय है और क्या अकथनीय । क्रोधी के लिए

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदुष्ट सतसैया, छंद संख्या 137.
2. वही , छंद संख्या 134.
3. एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
   जहि शत्रु महाबाहो काम रूपं दुरासदम् ।।
   डा० राधाकृष्णन् (सम्पादक): भगवद्गीता, पृ० 152.
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल:प्रतिनिधि निबंध (क्रोध) पृ० 23.

कुछ अकार्य नहीं और न कुछ अकथनीय ही है ।[1]

भारतीय दर्शन शास्त्र में क्रोध का आदि संबंध ताण्डव नृत्य के कारण भगवान शिव से माना जाता है । इसीलिए कवि ने क्रोध के संबंध में अपने विचार प्रकट करने के लिए शिव-महिषासुर प्रसंग का उल्लेख किया है । यथा---

"रोष लखो महिषासुरं, करे धरम को रोध ।
याह बेग के रोध बिनु, हंसु रलाहि किम बोध ।।"[2]

"भगवद्गीता " में भी क्रोध को आसुरी सम्पदा माना गया है ।[3] इस मनोविकार को दूर करने के लिए क्षमा-महत्वपूर्ण है ---

"छिमा सकति सी है लखो, रोष सकति को मार ।
तां बिन तांको हत्यो वह, किम जरसो तिह आर ।।"[4]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने क्षमा के द्वारा क्रोध शान्त करने की ओर संकेत किया है --- "क्रोध की उग्र चेष्टाओं का लक्ष्य हानि या पीड़ा पहुँचाने के पहले आलंबन में भय का संचार करना रहता है । जिस पर क्रोध प्रकट किया जाता है वह यदि डर जाता है और नम्र होकर पश्चात्ताप करता है तो क्षमा का अवसर सामने आता है ।[5] धर्म, नीति और शिष्टाचार तीनों में क्रोध के निरोध का उपदेश पाया जाता है ।[6] आलोच्य कृति में कवि ने भी क्रोध के निग्रह

---

1. वाच्यावाच्यं प्रकुपितो न विजानाति कर्हिचित् ।
   नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते क्वचित् ।।
   डा० रामजी उपाध्याय: संस्कृत सूक्ति रत्नाकर, पृ033.
2. कर्म सिंह निर्मल; हरि अष्टुष्ट सतसैया, छंद संख्या 179.
3. दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
   अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ।।
   डा० राधाकृष्णन्: भगवद्गीता, पृ0 326.
4. कर्म सिंह निर्मल, हरि अष्टुष्ट सतसैया, छंद संख्या 180.
5. डा० रामचन्द्र शुक्ल: प्रतिनिधि निबंध (क्रोध) , पृ0 25.
6. वही , पृ0 26.

पर बल दिया है ।

5.2.3 लोभ

लोभ का अर्थ है लालच, लोलुपता, कृपणता, कंजूसी, आशा, उत्कण्ठा, अति तृष्णा, परिग्रह आदि । भाई कान्ह सिंह नाभा के अनुसार दूसरे का पदार्थ लेने की इच्छा लोभ है ।[1] जैन-दर्शन के अनुसार वह मोहनीय कर्म जिसके कारण मनुष्य किसी पदार्थ को त्याग नहीं सकता ।[2] "भगवद्गीता" में कहा गया है कि रजोगुण में वृद्धि होने से लोभ के सभी कार्य-कलाप उत्पन्न होते हैं ।[3]

मनुष्य के पास जीवन-यापन करने के लिए जिन पदार्थों अथवा धन की आवश्यकता है उससे अधिक एकत्रित करना ही परिग्रह अथवा लोभ है । एकत्रित करना ही कवि के अनुसार लोभ है -----

"कुंभकरन सो लोभ लख, अर्थ न होवै भाख ।
पुन उभमै मै है लखी, अधक बरन की साख ।।
लोभ खोभ मै जो गइयो, सो वह लाखों लाख ।
जाह लोभ ते लछ्छ लख, सो किम तिह रस चाख । ।"[4]

1. चिंता :-

"कठोपनिषद् में कहा गया है कि धन से मनुष्य की तृप्ति नहीं होती ।[5] "श्री गुरु ग्रंथ साहिब" में भी कहा गया है कि लालची

---

1. भाई कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ0 1074.
2. नवल जी : नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ0 1223.
3. लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
   रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ।।
   डा0 राधाकृष्णन् {सम्पादक}: भगवद्गीता, पृ0 312.
4. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्ट सतसैया, छंद संख्या 139-140.
5. न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः
   डा0राम जी उपाध्याय : संस्कृत सूक्ति रत्नाकर, पृ014.

जीव को शान्ति नहीं मिलती । ऐसा ही मत कवि का है । कवि का मत है कि लोभ एक ऐसा राक्षस है जो शान्ति, तृप्ति की अपेक्षा चिंता को उत्पन्न करता है ---

"लोभ तु निसचर से सुनो, चिंता चिता जगाइ ।
जो नर ताँको कर चरै, ताँको ताँ सो नाई ।।"[2]

5.2.3.2 तृष्णा

तृष्णा का लोभ से बहुत गहरा संबंध है । कवि ने तृष्णा को लोभ की पत्नी माना है यथा --

"जग भख लख जो राखसी, बिन त्रिसना नहि आन ।
बाम अंक पुन लोभ के, को बच ताते जान ।।"[3]

कवि ने तृष्णा का अर्थ स्पष्ट करने के लिए उसकी तुलना नागिन,[4] डाइन,[5] अग्नियुक्त पेड़[6] से की है ।

5.2.3.3 आशा

किसी अन्य जीव से किसी पदार्थ की आशा अथवा लालसा करना भी लोभ ही है । कवि के अनुसार आशा रहित मनुष्य इस संसार में

---

1. कबहू जीअडा ऊभि चडतु है कबहू जाइ पइआले ।।
   लोभी जीअडा थिरु न रहतु है चारे कुंटा भाले ।।
   शबदार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 876.
2. कर्म सिंह निर्मला:हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 158.
3. वही ,छंद संख्या 143.
4. वही ,छंद संख्या 145.
5. वही , छंद संख्या 146.
6. वही छंद संख्या 148.

बहुत कम मिलते हैं --

"अत ही दुस्तर बात ए , बिन आसा नरु होइ ।
भांति भांति के लोक पिख, सभ ही मै वह जोइ ।।"[1]

लालसाओं के संबंध में "भगवद्गीता" में कहा गया है कि अपनी आशाओं की पूर्ति के लिए अनेक अन्यायपूर्ण कार्य करने पड़ते हैं ।[2]

आशा, तृष्णा और लोभ के योग से उत्पन्न स्थिति के संबंध में कवि का कथन है ---

"आसा त्रिसना अधन बिब, लोभ लगायो तिह सीस ।
ऐसी चसमा धरे जो, लघ्रा तां को बड़ दीस ।।"[3]

5.2.3.4 स्तेय

भारतीय नीतिशास्त्र में अस्तेय व्रत के पालन पर आरम्भ से ही बल दिया जाता रहा है । चौर-कर्म अथवा शक्ति का प्रयोग करते हुए किसी मनुष्य के धन को प्राप्त करना स्तेय कहलाता है । कवि ने आलोच्य कृति में स्तेय का त्याग करने पर बल दिया है यथा --

"चोरा जोरी ते सुनो, किम न दुख्ख गन देख ।
सो दुख को किम नहि लखे,कर जो इने उपेख । ।
चोरी जोरी को तजो, भावी को उर जोइ ।
गहे जानि कै अनल को, किम न दग्ध वहि होइ ।।"[4]

कवि स्तेय को लोभ की स्वसा अर्थात् बहिन मानता है यथा ---

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 155.
2. आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ।।
डा० राधाकृष्णन् (सम्पादक) :भगवद्गीता, पृ० 328.
3. कर्म सिंह निर्मला:हरि अदृष्ट सतसैया,छंद संख्या 157.
4. वही ,छंद संख्या 160-161.

"लक्ष तेइ को सुता अन, गुपत गहन तिह नाम ।
अन को धन अन को करे, बस अधरम के धाम ।।"[1]

"श्रीगुरुग्रंथसाहिब" में भी स्तेय का निग्रह करने पर बल दिया गया है ।[2]

लोभ को सन्तोष तथा विवेक से दूर किया जा सकता है, ऐसा कवि का मत है --

"बीर त्रिप्य संतोख जो, इस दे धन सो पूर ।
महां त्रिप्य बाबेक जो, ताको कर सिर भूर ।।"[3]

5.2.4 मोह

मोह सत्य को पहचानने में अवरोधक है । इसकेअनुसार मनुष्य को सांसारिक पदार्थों की वास्तविकता में विश्वास होता है और वह विषय सुखों से तृप्ति करने का अभ्यस्त हो जाता है ।[4] मोह से अज्ञान, भ्रम, प्रेम ,ममता इत्यादि उत्पन्न होते हैं । संक्षेप में ईश्वर के प्रति विराग और सांसारिक विषयों के प्रति अनुराग को मोह कहा जा सकता है ।

भारतीय नैतिक-शास्त्र में चार्वाक दर्शन के नैतिक मूल्यों को छोड़कर अन्य सभी दर्शनों में मोह के निरोध पर बल दिया गया है । मोह की उत्पत्ति के संबंध में "भगवद्गीता" में कहा गया है कि सभी प्राणी इच्छा द्वेष के कारण उत्पन्न द्वैत के वश में होकर मोह में फंस जाते हैं ।[5] "श्रीगुरुग्रंथसाहिब" में मोह को बहुत शक्तिशाली स्वीकार करते हुए कहा गया है

---

1. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदुष्ट सतसैया, छंद संख्या 163.
2. काहू बिहावै खेलत जुआ ।।, काहू बिहावै अमली हुआ ।।
   काहू बिहावै पर दख चोराए ।।, हरि जन बिहावै नाम धिआए ।।
   शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 914.
3. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदुष्ट सतसैया छंद संख्या 152.
4. वामन शिवलाल आप्टे : संस्कृत हिन्दी कोश, पृ0 820.
5. इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
   सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परन्तप ।।
   डा0 राधाकृष्णन् [सम्पादक] : भगवद्गीता, पृ0 223.

कि ये देवताओं, राजाओं को भी अपने जाल में फांसने में समर्थ है ।[1] ऐसा ही मत कवि ने आलोच्य कृति में अभिव्यक्त किया है यथा ---

"मोह मोहि निज राखिया, लखि विवेक सुर भूप ।
याह भूप को राज तब, जब मन पवैगु कूप ।।"[2]

इस संसार के विषयों में फंसा हुआ मनुष्य विवेक के बिना इस मोह जाल से नहीं निकल सकता ---

"जगत मोह ने मोहयो, मोह निहार्यो ठीक ।
बिन विवेक कबहूं गनो, होवै एक अनीक ।।"[3]

श्रीगुरुग्रंथसाहिब" में कहा गया है कि मोह से ही सभी सांसारिक संबंध है ।[4] कवि ने इस मत का समर्थन करते हुए कहा है ---

"मिल बिछुरत सुख दुख लहैं, सो आदिक सो चीन।
मेना मोह भूपाल मे, जगत जुराफा कौन ।।"[5]

---

1. उदिआन बसनं संसारं समबंधी स्वान सिआल खरह ।
बिखम स्थान मन मोह मंदिर महां असाध पंच तसकरह ।।
हीत मोह भै भरम भ्रमण अहं फांस तीखण कठिनह ।।
पावक तोअ असाध घोरं अगम तीर नह लंघनह ।।
भजु साध संगि गोपाल नानक हरिचरण सरण उधरण क्रिपा ।।
शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 1359.

2. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्टक सतसैया, छंद संख्या 105.

3. वही , छंद संख्या 106.

4. मोहु कुटंबु मोहु सभ कार ।।
मोहु तुम तजहु सगल वेकार ।।
मोहु अरु भरमु तजहु तुम बीर ।।
शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 356.

5. कर्म सिंह निर्मला:हरि अष्टक सतसैया, छंद संख्या 108.

भ्रम मोह का ही एक रूप है । कवि ने दोनों के संबंधों की तुलना राजा और मंत्री के संबंधों से की है ---

"महाँ मोह भूपाल को, भ्रम ही बड़ो वजीर ।
जो जो गन ई देखिए, ताँही को हरि धीर ।।"[1]

"भगवद्गीता" में कहा गया है कि अनेक विचारों के कारण भ्रान्त मोह के जाल में फँसे हुए, विषयों में आसक्त अपवित्र प्राणी नरक अर्थात दुखों को प्राप्त होते हैं ।[2] मोह दुःखों का कारण है, इस संबंध में कवि का कथन है ---

"महाँ मोह को रूप इह, जोअन को निज मान ।
ताते ही अति होइ दुख , ताँहि हाँन मन हाँन ।।"[3]

5.2.5 अहंकार

अहंकार सबसे बड़ा नकारात्मक नैतिक मूल्य है । अहंकार का अर्थ है-अहंभाव । अन्य शब्दों में "मैं" की भावना ही अहंकार है । अभिमान, घमंड, गर्व, पाखंड, मद, दर्प, दंभ, मान आदि इसी के पर्यायवाची शब्द हैं । "श्रीगुरुग्रंथ साहिब" में अहंकार के लिए"हउमैं" शब्द का प्रयोग किया गया है । थियोस बर्नार्ड के अनुसार ज्ञान से बड़ा कोई मित्र नहीं है और अहंकार से बड़ा कोई शत्रु नहीं है ।[4] शतपथ ब्राह्मण में अभिमान को पराभव का द्वार माना गया है[5]

---

1. कर्म सिंह निर्मला:हरि अष्टक सतसैया,छंद संख्या 118.

2. अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ।।
डा० राधाकृष्णन् (सम्पादक):भगवद्गीता, पृ० 329.

3. कर्म सिंह निर्मला:हरि अष्टक सतसैया, छंद संख्या 110.

4. थियोस बनार्ड: हठ योग, लंदन,राइडर एंड कम्पनी, 1958 ई०,पृ०18.

5. पराभवस्य हैतन्मुखं यदतिमानः ।।
डा० रामजी उपाध्याय: संस्कृत सूक्ति रत्नाकर, पृ० 12.

में पाखण्ड ,घमण्ड और अभिमान को आसुरी सम्पदा माना गया है ।[1]

वस्तुतः सब प्रकार के कार्य प्रकृति के गुणों के द्वारा किए जा रहे है फिर भी मनुष्य अहंकार अभिभावना के कारण "कर्ता मैं हूं" समझता है ।[2] कवि ने भी "मैं" की भावना के संबंध में कहा है ––

"मै मै कर जो राखना, ताह नाम हंकार ।
मार मार जग छार कर, कर धनु पुन टंकार ।।"[3]

5.2.5.1 मद

मतवाले उन्मादपूर्ण हाथियों की कनपटियों से बहने वाला गन्धयुक्त द्रव मद होता है । अहंकार की चरमसीमा ही मद अथवा उन्माद है । यौवन, धन, सुन्दरता आदि प्रायः मद के कारण होते हैं । श्री गुरु ग्रंथ साहिब में कहा गया है कि नारी की सुन्दरता और बल दोनों मद का कारण हैं ।[4] जो हरि का भजन नहीं करता वह तिनके के समान हल्का है, छोटा सा कीड़ा जो हरि का स्मरण करता है वह अधिक भारी है ।[4] ~~xxxx~~ मद के कारण अभिव्यक्त

---

1. दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम ।।
डा० राधाकृष्णन् (सम्पादक): भगवद्गीता, पृ० 326.

2. प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ।।
डा० राधाकृष्णन् (सम्पादक): भगवद्गीता, पृ० 145.

3. कर्म सिंह निर्मलाःहरि अष्टछ सतसैया, छंद संख्या 123.

4. गरबंति नारी मदोन मतं ।।
बलवंत बलात कारणह ।।
चरन कमल नह भजंत त्रिण समानि ध्रिगु जनमनह ।।
हे पपील का ग्रसटे गोबिंद सिमरण तुयं धने ।।
नानक अनिक बार नमो नमह ।।
शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ० 1359-60.

करते हुए कवि ने कहा है ---

"कुल धन जोबन रूप मद, मद के मद सौ पैठ ।
याते दुखहूं दुख लहै, याते सुखन क ऐंठ ।।"[1]

आगे चल कर कवि ने कहा है कि मद को दूर करने के लिए हरि का भजन आवश्यक है यथा ---

"मद निसचरि को हरि हरे, नह मद हरि है सोइ ।
तां बिन ताको हरे को, कर सिरने हिय जोइ ।"[2]

5.2.5.2 दंभ

अपना महत्व दिखाने अथवा कोई प्रयोजन सिद्ध करने के लिए किया गया झूठा पाखंड अथवा आडम्बर दंभ कहलाता है । दंभ के विकार को दूर करने के लिए भी हरि का नाम सिमरण आवश्यक है, ऐसा कवि का कथन है ---

"दंभ बकासुर सो लखो, ज तिस को गिल जाइ ।
सिमरन सरल के जाय बिन, ताति बध को पाइ ।।
किधौं ठग को रूप गन, किधौं मरीच सुजान ।
कालनेमि ही है किधौं, है सो कर्यो बखयान ।।"[3]

5.2.5.3 मान

दूसरों के बड़े कार्यों को जान कर भी न जानना और अपने छोटे से कार्य को अधिक महत्व देना ही मान है । इस संबंध में भक्त कबीर ने कहा है कि मान से युक्त पुरूष नर्क में जाते हैं ।[4] कवि का मान के संबंध में कथन है ---

"जातुधान है मान जो, जाने करे अजान ।
ताते मानी जो भयो, जह तह चाहे मान ।।"[5]

---

1. कर्म सिंह निर्मला:हरि अद्भुट समसैया ,छंद संख्या 191.
2. वही , छंद संख्या 186 .
3. वही ,छंद संख्या 171-172.
4. आपस कउ दीरघु करि जानै अउरन कउ लगमात ।
   मनसा बाचा करमना मै देखे दोजक जात ।।
   शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 1105.
5. कर्म सिंह निर्मला:हरि अद्भुट सतसैया,छंद संख्या 197.

मान को दूर किए बिना मन को शान्ति नहीं मिलती, इसलिए इसे दूर करना ही वीरता और बुद्धिमता है ।

"मन अमान हन मान को, बिन हन सुख किम होइ ।
ताहि हने बिन सुख चहे, बहु बित स्यानो सोइ ।।
जोइ हनहै मान को, होइ ताहि किम धीर ।
वही धीर मो धीर है, वही बीर मो बीर ।।"[1]

अहंकार बहुत शक्तिशाली नकारात्मक नैतिक मूल्य है । यह सारा संसार इसके प्रभाव में रहकर दुःखी रहता है । "श्रीगुरुग्रंथसाहिब" में इससे होने वाले प्रभावों से उत्पन्न होने वाले दुःखों का बहुत सुन्दर चित्रण हुआ है ।[2] कवि का भी ऐसा ही मत है कि अहंकार के कारण जीव इस संसार में इधर -उधर भटकता रहता है —

"डोलत डोलत डोल जग, इम डोले सो जानि ।
जनु मार्‌यो हंकार को, को कर उनको हानि ।।"[3]

5.2.6 राग और द्वेष

"राग का अर्थ है प्रिय या अभिमत वस्तु के प्रति मन में

---

1. कर्म सिंह निर्मल: हरि अष्टुष्ट सतसैया, छंद संख्या 200–201.
2. है जनम मरण मूलं अहंकारं पापातमा ।।
   मित्रं तजंति सत्रं द्रिड़ंति अनिक माया बिस्तीरनह ।।
   आवंत जावंत थकंत जीआ दुख सुख बहु भोगणह ।।
   भ्रम भैयान उदिआन रमणं महा बिकट असाध रोगणह ।।
   बैदं पारब्रहम परमेसुवर आराधि नानक हरि हरि हेर ।।
   शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ० 1358.
3. कर्म सिंह निर्मल: हरि अष्टुष्ट सतसैया, छंद संख्या 124.

उत्पन्न होने वाला भाव या झुकाव ।[1] प्रेम अनुराग, प्रीति, स्नेह, प्रणयोन्माद आदि राग के पर्यायवाची शब्द हैं । किसी बात का मन को न भाना अथवा अप्रिय लगने का भाव द्वेष होता है । घृणा, अरुचि अनिच्छा, ईर्ष्या, शत्रुता आदि शब्द द्वेष के लिए प्रयुक्त होते हैं । भारतीय नीति-शास्त्र में प्रायः राग और द्वेष का विरोध किया गया है । "किरातार्जुनीयम्" में कहा गया है कि राग और द्वेष से दूषित स्वभाव वाले लोगों के मन सज्जनों के विषय में भी विकारपूर्ण हो जाते हैं ।[2] कवि राग और द्वेष दोनों को मनोविकार मोह रूपी राजा के वीर सिपाही मानता है यथा --

"राग द्वेष विष सूर अति, सिप्य मोह के जानि ।
जो नर यां को हनैगो, होवै न तिह हानि ।।"[3]

"भगवद्गीता" में भगवान कृष्ण ने राग और द्वेष दोनों को मनुष्य का शत्रु माना है और यह भी कहा है कि मनुष्य को इन दोनों से बचकर रहना चाहिए ।[4] कवि ने भी इस कृति में राग और द्वेष को शत्रु मानते हुए इनका नाश करने का सन्देश दिया है यथा--

"मरमी बरमी सूर अति, राग द्वेष है जोइ ।
बिना ध्यान इन हने को, हने अप्प जो होइ ।।"[5]

कवि ने नारी के प्रति प्रेम भाव को राग तथा कलह को द्वेष माना है---

---

1. नवलजी: नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ0 1168.
2. डा0 रामजी उपाध्याय: संस्कृत सूक्ति रत्नाकर, पृ0 83.
3. कर्म सिंह निर्मला:हरि अष्ट सतसैया, छंद संख्या 187.
4. इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ।।
डा0 राधाकृष्णन "सम्पादक" :भगवद्गीता, पृ0 148.
5. कर्म सिंह निर्मला:हरि अष्ट सतसैया, छंद संख्या 188.

"रागहि नारी प्रीति सख,कलह द्वेश की जनि ।
उन दोनो के मरन कर, इन दोनो की हानि।।"[1]

"भगवद्गीता" में एक अन्य स्थल में भगवान कृष्ण ने द्वेश करने वाले मनुष्य को नीच प्रवृति होने के कारण सदैव आसुरी योनियों में भेजने की ओर संकेत किया है ।[2] कवि ने राग और द्वेश में पड़े हुए मनुष्य के सुखों को धुध गृह के चक्रों के समान माना है यथा —

"प्रीति जगत की जौन है, कलह जगत सो जौन ।
जैसो ए सुख देत है, लखौ धुन्धा के भौन ।।"[3]

5.2.7 पाप

इस लोक में बुरा माना या समझा जाने वाला तथा परलोक में अशुभ फलदायक कर्म पाप होता है ।[4] अशुभ, अनिष्टकर, नीच, अधम, दुष्ट, ... पतित, दुर्वृत्त आदि पाप के पर्यायवाची शब्द हैं । पाप के अन्तर्गत आने वाले पापाचारों का विस्तृत विवेचन भाई कान्ह सिंह नाभा ने "महान कोश" में किया है —"महाभारत विच दस महापाप लिखे हन:- हिंसा, चोरी, परस्त्री गमन, झूठ , कौड़ा बोल, चुगली, वाइदेखिलाफी, बुरा चितवणा, बेरहमी, पुन्न दान आदि करके उसदे फल दी कामना करनी । मनु सिम्रिति दे ।।वें अध्याय दे श्लोक 54 विच पंज महापाप लिखे हन- ब्रह्महत्या, शराब पीनी, चोरी, गुरु की स्त्री भोगणी, इन्हा पापियों दे नाल मेल करना । कुरमत

---

1. कर्म सिंह निर्मला :हरि:अष्टुष्ट अठे सतसैया, छंद संख्या 189.
2. आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
   मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ।।
   डा० राधाकृष्णन {सम्पादक}:भगवद्गीता, पृ० 329.
3. कर्म सिंह निर्मला:हरि अष्टुष्ट सतसैया, छंद संख्या 190.
4. नवल जी: नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ० 829.

विच करतार तों विमुखता, उद्यम दा तियाग, अते दिल दिखाउणा तीन उग्र पाप हन । रहितनामियां विच मुंडन, विभचार, तमाकू दा सेवन अते कुट्ठा खाना चार महापाप हन । बाईबल विच सत्त पाप लिखे हन —— अभिमान, विभचार, ईर्खा, क्रोध, लोभ, जीभ-रस {पेट दासीया होना} अते आलस ।"[1]

उपर्युक्त कथन से यह ज्ञात होता है कि अधिकांश निषेधात्मक नैतिक [illegible] मूल्य पाप के अन्तर्गत आते हैं । "रामायण" में कहा गया है कि पाप के काम का फल अवश्य मिलता है ।[2] पाप करने वाले मनुष्य का भला नहीं होता, कवि का भी ऐसा ही मत है ——

"चब्यो पाप को नर सुनो, ठीक रसातल जाइ ।
देखो तुल को पालना, जाइ रसातल धाइ ।।"[3]

"भगवद्गीता" में अर्जुन का कथन है कि पाप करने से सुख प्राप्त नहीं होता ।[4] "रामायण" में भी कहा गया है कि शुभ करने वाला शुभ पाता है, पाप करने वाला पाप भोगता है ।[5] कवि का इस संबंध में कथन है कि पापी मनुष्य कभी सुखी नहीं रह सकता ;—

"पापी नर के सुख इम, देखत ही उड जाहु ।
जैसे रेती ताल जल, देखत देख सुकाह ।।"

---

1. भाई कान्ह सिंह नाभा:महान कोश, पृ0 764.

2. "अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः ।"
डा0 राम जी उपाध्याय :संस्कृत सूक्ति रत्नाकर, पृ034.

3. कर्म सिंह निर्मला:हरि अष्टक सतसैया, छंद संख्या 184.

4. निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः ।।
डा0 राधाकृष्णन् {सम्पादक} भगवद्गीता, पृ0 97.

5. शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत्पापमश्नुते ।
डा0 राम जी उपाध्याय: संस्कृत सूक्ति रत्नाकर, पृ034.

6. कर्म सिंह निर्मला:हरि अष्टक सतसैया, छंद संख्या 186.

"भगवद्गीता" में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि पाप का आचार करने वालों म को मैं बार बार आसुरी योनियों में ही गिराता हूँ ।[1] अर्थात् इस संसार से वे पार नहीं उतर सकते । कवि का ऐसा ही अभिमत है कि पाप करने वाले मनुष्य इस संसार रूपी भव-सागर से पार नहीं उतर सकते ,यथा ---

"करे पाप पुन यों कहे, कब भवनिधि तर जाँउ ।
कह जिम को मै निधि तरों बैठ उपल की नाँउ ।।[2]

5.2.8 निंदा

किसी के गुणों में दोषों को स्थापित करना निंदा कहलाती है । दोष देना, बुरा भला कहना, धिक्कारना आदि निंदा के ही विभिन्न रूप हैं । "ऋग्वेद" में "निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु" कह[3] कर निंदा का विरोध किया गया है । कवि ने निंदा को मोह का ही एक रूप माना है । निंदा का पालन करने से मनुष्य पागल सा हो जाता है यथा---

"महाँ मोह भोपाल की, एक राखनी और ।
निंदा ताकौ नाम है, कर दे मन को बौर ।।"[4]

"श्री गुरु ग्रंथ साहिब" में माना गया है कि निंदा नामक मनोविकार किसी का भला नहीं कर सकती । निंदक मनुष्य अन्त में नर्क में पड़ता है ।[5]

---

1. तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ।।
डा० राधाकृष्णन् (सम्पादक):भगवद्गीता, पृ० 329.
2. कर्म सिंह निर्मल: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 185.
3. डा० रामजी उपाध्याय: संस्कृत सूक्ति रत्नाकर, पृ० 3.
4. कर्म सिंह निर्मल:हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 165.
5. निंदा भली किसै की नाही मनमुख मुगध करंनि ।।
मुह काले तिन निंदका नरके घोरि पवंनि ।।
शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ० 755.

निंदा के संबंध में कवि का   भी ऐसा ही अभिमत है ---

'मंदा निंदा ही करे, नर अमंद को जोइ ।
नरक पालनी मोह से, साति ठाती सोइ ।।'[1]

निंदा का निग्रह करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है --

'है जो असरी द्रिष्टि सम, सो निंदा को मार ।
होवै सोई ग्यान से, ग्यान करन कर धार ।।'[2]

5.2.9 कुसंगति

संगति का अर्थ है संसर्ग, पारस्परिक मेलजोल अथवा साहचर्य । कुसंगति से तात्पर्य है दुष्टों का साहचर्य । श्री गुरु ग्रंथ साहिब में अनेक स्थानों पर सत् संगति के महत्व को स्वीकार किया गया है । गुरु रामदास जी ने कहा है कि चंदन के समीप स्थित अरिंड का वृक्ष भी चंदन की तरह सुवासित हो जाता है उसी प्रकार सत् संगति में मनुष्य उत्तम गुणों को ग्रहण करता है ।[3] कवि ने भी अपना अभिमत व्यक्त करते हुए स्वीकार किया है कि कुसंगति को दूर करने के लिए हरि की सतसंगति आवश्यक है --

'कारा सदन कुसंग जो, मोहु पिसाच कु जोइ ।
हरि सुसंग सहिकार बिन, साति निसर्यो कोइ ।।'[4]

इसी स्थल पर कवि ने कुसंगति के डंक को सांप के डंक से भी अधिक जहरीला माना है ---

---

1. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 166.
2. वही , छंद संख्या 168.
3. जिउ चंदन निकटि वसै हिरंडु बपुड़ा,
   तिउ सतसंगति मिलि पतित परवाणु ।।
   शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ० 861.
4. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 207.

"सुन कुसंग के बचन को, नाग अचंभा होइ ।
हमरि डंक ते बचे बहु , याति बचे न कोइ ।।"[1]

कुसंगति का निषेध करते हुए श्री गुरु ग्रंथ साहिब में कहा गया है कि दुष्टों की मित्रता से संतों की शत्रुता अच्छी है क्योंकि दुष्टों की मित्रता से सम्पूर्ण कुल का नाश हो जाता है ।[2] "श्री गुरुग्रंथ साहिब" में एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि दुर्जन मनुष्य से स्नेह दस विकारों का कारण बनता है ।[3]

5.2.10. कपट

कपट का अर्थ है अभिप्राय साधन के निमित्त हृदय की बात छिपाने की वृत्ति ।[4] धोखा, दगा, दुराव, छिपाव, छल, जालसाजी, प्रवंचना, फरेब आदि कपट के ही पर्यायवाची शब्द हैं । कपट के संबंध में "श्री गुरु ग्रंथ साहिब" में कहा गया है कि हृदय में कपट नहीं रखना चाहिए ।[5] इस संबंध में कवि का मत है कि कपट ~~हृदय~~ में ही रोग का कारण बन जाता है और अश्विनी पुत्र की सहायता के बिना इसका अन्त नहीं हो सकता —

---

1. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 208.
2. दुसटा नालि दोसती नालि संता वैरु करंनि ।।
   आपि डुबे कुटंब सिउ सगले कुल डोबंनि ।।
   शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 755.
3. दुरजन सेती नेहु रचाइओ दसि विखा मै कारणु ।।
   शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 959.
4. नवल जी: नालन्दा विशाल शब्दसागर, पृ0 198.
5. बहु परपंच करि पर धनु लिआवै ।।
   सुत दारा पहि आनि लुटावै ।।
   मन मेरे भूले कपटु न कीजै ।।
   अंति निबेरा तेरे जीअ पहि लीजै ।।
   शब्दार्थ श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ0 656.

"कपट निसाचर दपट को, छिन मे लावे रोग ।
अकपट अस्वनी सुत बिन, को पावे तिह भोग ।।"[1]

कवि ने कपट के एक भाई के अस्तित्व को भी स्वीकार किया है —

"गनो कपट को भ्रात लघु, दगा जाह को नाम ।
भद्दे गन को वह सुनो, किम गढे को धाम ।।"[2]

कृतघ्नता से अभिप्राय: है अहसान फरामोशी । अन्य शब्दों में किसी के किए हुए उपकार को भूल जाना कृतघ्नता है । कवि ने कृतघ्नता को स्वामी-घात को बहन माना है यथा ——

"स्वामिघाति जो राकसा, गन को कर वह ताह।
ताँहि सुता कृतघनता, तोहूँ तिह मिलि जाह ।।
स्वामिघाति कृतघ्न को, गन चौर बल वंड ।
बाप सु पकर ताँहि के, देवे नर को दंड ।।"[3]

5.2.11 आलस्य

काम करने में उत्साह का न होना आलस्य है । सुस्त, काहिल, ढीला-ढाला, अकर्मण्य आदि आलस्य के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द है ।

"भगवद्गीता" में आलस्य को अज्ञान का कारण माना गया है ।[4] आलोच्य कृति में कवि ने आलस्य को दूर करने का सन्देश दिया है क्योंकि यह मनुष्य के पूर्ण विनाश का कारण बनता है यथा ——

---

1. कर्म सिंह निर्मल:हरि अकुष्ट सतसैया, छंद संख्या 202.
2. वही , छंद संख्या 203.
3. वही , छंद संख्या 204-205.
4. तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्व देहिनाम् ।
   प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ।।
   डा0 राधाकृष्णन् (सम्पादक):भगवद्गीता, पृ0311.

"आलस कालस रूप कर, धरे नरक मो सोइ ।
जो नहि वाको हरेगो, वह किम कालस धोइ ।।
आलस कालस रूप कर, डोबे पूर सु पूर ।
जो नहि वाको हरेगो, हर सो किम दुख भूर ।।"[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि कर्म सिंह निर्मला का ध्यान मनुष्य के नैतिक विकास पर केन्द्रित रहा है । धर्म-साधना के लिए मनुष्य का अच्छा होना आवश्यक है । "अच्छा होना" सदैव सापेक्षिक होता है । अतएव उसने जिन सद्गुणों की चर्चा की है, उनमें व्यक्ति के स्तर पर आत्मोन्नयन की प्रेरणा विद्यमान है और समाज के स्तर पर वहाँ सामाजिक सद्भाव के विस्तार पर बल दिया गया है । इसके साथ ही ऐसे दुर्गुणों से बचने की सलाह भी दी गई है, जो आत्मोद्धार और सामाजिक सुव्यवस्था में बाधक सिद्ध हो सकते हैं । मध्यकालीन भारतीय समाज में नैतिक चिन्तन का यही धरातल मिलता रहा है और इसी धरातल पर इस कवि ने भी अनुचिंतन तथा नीतिकथन किया है ।

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदुष्ट सतसैया, छंद संख्या 209-210.

:-:-

अध्याय - 6

'हरि अकुंठ सतसैया' का काव्य-शिल्प

अध्याय - 6

"हरि अदुष्ट सतसैया का काव्य-शिल्प"

पंजाब के निर्मल-संतों की परम्परा में आने वाले कवि कर्म सिंह निर्मला की धर्म और अध्यात्म संबंधी काव्य-कृति "हरि अदुष्ट सतसैया" 19वी शताब्दी के मध्य भाग में लिखी गई थी । 19वी शताब्दी के मध्य भाग में हिन्दी में भी कविता लिखने की परम्परा ब्रजभाषा में चल रही थी । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, सत्य नारायण कविरत्न, जगन्नाथ दास रत्नाकर जैसे कवि ब्रजभाषा में अद्भुत रचनाएँ दे रहे थे, जिनका हिन्दी साहित्य के इतिहास में बहुत आदर के साथ उल्लेख किया जाता है । 19वी शताब्दी के मध्य भाग में पंजाब में ऐसी शताधिक ब्रजभाषा में काव्य-कृतियाँ लिखी गई हैं, जिनकी भाषा तो ब्रज है, किन्तु लिपि गुरुमुखी है । यह रचनाएँ प्राय: पंजाब की रियासतों के दरबारी माहौल में लिखी गई थी । इसलिए इनका प्रतिपाद्य प्राय: शृंगार , काव्य-शास्त्र, पौराणिक अनुवाद आदि रहे हैं । इन सब के विपरीत निर्मल सन्तों ने कविता को साध्य न मानते हुए उसे साधन रूप में प्रयुक्त किया और उसके माध्यम से धर्म और अध्यात्म का यथा संभव गम्भीरता के साथ प्रतिपादन किया । आलोच्य कृति इसी परम्परा में आती है । इसमें बहु भाषिकता को बहुत आसानी से देखा जा सकता है । इसकी भाषा का अधिकांश ब्रज भाषा से लिया गया है । इस तथ्य को निम्नलिखित व्याकरणिक कोटियों के अन्तर्गत समझाया जा सकता है ।

संज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उसका संबंध वाक्य के दूसरे शब्द अथवा क्रिया के साथ जोड़ा जाता है, उसे कारक कहते हैं । संज्ञा या सर्वनाम का सम्बन्ध क्रिया या दूसरे शब्द से बताने के लिए उसके साथ जो अक्षर लगाया जाता है, उसे विभक्ति कहते हैं । ब्रज-भाषा में कारकों की संख्या आठ मानी जाती है -

कर्ता	नें, ने, नैं
कर्म	कुं, कूं, को , कौं
करण	सें, से, सैं, पे, पैं, हुं, सो, सौ

सम्प्रदान	कुं, कूं, कौं, को, कों, को
अपादान	तें, ते, तैं, सों, सो
संबंध	कि, की, कें, के, कैं, कै ,कौं , कों, को
अधिकरण	पर, पै, मँझार, मैंह, माहिं,माहीं
संबोधन	अहो, री, रे, हे

आलोच्य कृति में कवि ने निम्नलिखित कारक-विभक्तियों का प्रयोग किया है ---

कर्ता	ने[1], नै[2]
कर्म	कों[3], कु[4]
करण	ते[5], तै[6]
सम्प्रदान	कों[7]
अपादान	ते[8], सों[9]
संबंध	की[10], के[11], कों[12], के[13]

---

1. कर्म सिंह निर्मला: हरि अष्टक सतसैया, छंद संख्या 164, 166.
2. वही , छंद संख्या 12,106,108,158
3 वही ,छंद संख्या 5.9.14.38.
4 वही ,छंद संख्या 76
5. वही ,छंद संख्या 31,37,59,80.
6. वही , छंद संख्या 63, 69
7. वही , छंद संख्या 36,51, 110
8. वही , छंद संख्या 20,25,81
9. वही ,छंद संख्या 30,82
10. वही , छंद संख्या 17,21,63,78
11. वही , छंद संख्या 20,27,30,34
12. वही , छंदसंख्या 11,13,44
13. वही , छंद संख्या 156,161,174,194

अधिकरण मों[1], मैं[2], माहि[3], मझार[4]

संबोधन अहो[5], रे[6], हे[7], मो[8]

ब्रज-भाषा में अकारांत और आकारांत संज्ञा शब्दों की अधिकता रहती है। ब्रज-भाषा में आठ स्वरों —— अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ओ तथा औ से अन्त होने वाले संज्ञा शब्द मिलते हैं। - "हरि अद्भुट सतसैया" में प्रायः सभी स्वरों से अन्त होने वाले संज्ञा शब्द मिलते हैं ——

अ- अकारांत संज्ञा शब्द —— निशाचर[9], प्रसराम[10], कंत[11], सुर[12]

आ- आकारांत संज्ञा शब्द —— रमा[13], सखा[14], बरखा[15], राखा[16]

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अद्भुट सतसैया, छंद संख्या 17,112,121,124,175
2. वही, छंद संख्या 18, 22,162,177.
3. वही, छंद संख्या 45
4. वही, छंद संख्या 193
5. वही, छंद संख्या 174.
6. वही, छंद संख्या 89
7. वही, छंद संख्या 91, 92, 114
8. वही, छंद संख्या 22, 95
9. वही, छंद संख्या 173
10. वही, छंद संख्या 9
11. वही, छंद संख्या 10
12. वही, छंद संख्या 43
13. वही, छंद संख्या 58
14. वही, छंद संख्या 24
15. वही, छंद संख्या 79, 219
16. वही, छंद संख्या 105

इ- इकारांत संज्ञा शब्द --- मुनि[1], रघुपति[2], गिरि[3], रवि[4]

ई- ईकारांत संज्ञा शब्द --- सती[5], युवती[6], निसचरी[7], नागनी[8]

उ- उकारांत संज्ञा शब्द --- मित्रु[9], जनु[10], रितु[11], हेतु[12]

ऊ- ऊकारांत संज्ञा शब्द--- बधू[13]

ओ- ओकारांत संज्ञा शब्द --- कारो[14]

ओकारांत संज्ञा शब्दों का प्राय: कम ही प्रयोग मिलता है । ब्रज-भाषा में एक वचन से बहुवचन बनाने के लिए प्राय: "न" तथा "इन" प्रत्यय लगाया जाता है । आलोच्य कृति में कवि ने अधिकांशत: "न" प्रत्यय का प्रयोग किया है --- फूलन[15], मूलन[16], बानन[17]

---

1. कर्म सिंह निर्मला:हरि अकूट सतसैया, छंद संख्या 3
2. वही, छंद संख्या 10
3. वही, छंद संख्या 44
4. वही, छंद संख्या 90
5. वही, छंद संख्या 65
6. वही, छंद संख्या 83
7. वही, छंद संख्या 15
8. वही, छंद संख्या 145
9. वही, छंद संख्या 97
10. वही, छंद संख्या 61
11. वही, छंद संख्या 74
12. वही, छंद संख्या 247
13. वही, छंद संख्या 78
14. वही, छंद संख्या 28
15. वही, छंद संख्या 50
16. वही, छंद संख्या 31
17. वही, छंद संख्या 41

दलन[1], पत्तन[2], तपन[3], जुगन[4] ।

इसके अतिरिक्त कवि ने बहु, दल, गन, आदि शब्दों की सहायता से भी एक वचन से बहुवचन बनाए हैं —— बहु जन[5], साखी दल[6], म्रिग-गन[7] ।

ब्रज-भाषा में प्रयुक्त होने वाले मूल सर्वनामों की संख्या बारह है —— मैं, हौं, तू, आप, यह, वह, सो, जो, कोई, कुछ, कौन, क्या । कवि ने आलोच्य कृति में अनेक सर्वनामों का प्रयोग किया है, उदाहरणार्थ कुछ सर्वनाम द्रष्टव्य हैं——

पुरुषवाचक सर्वनाम	मैं[8], तूं[9], हौं[10]
संबंधवाचक सर्वनाम	जो[11], जिह[12]
नित्य संबंधी सर्वनाम	सो[13], ताहि[14]
निश्चयवाचक सर्वनाम	यह[15], इन[16]

---

1. कर्म सिंह निर्मला:हरि अष्टुष्ट सतसैया, छंद संख्या 84
2. वही, छंद संख्या 93
3. वही, छंद संख्या 100
4. वही, छंद संख्या 220
5. वही, छंद संख्या 24, 97
6 वही, छंद संख्या 53
7. वही, छंद संख्या 283
8. वही, छंद संख्या 22, 101,124
9. वही, छंद संख्या 22, 23, 25, 27, 98
10. वही, छंद संख्या 96, 99
11. वही, छंद संख्या 30,35,50,54,85,
12. वही, छंद संख्या 31
13. वही, छंद संख्या 30, 35, 40,67
14. वही, छंद संख्या 51,61
15. वही, छंद संख्या 93, 127
16. वही छंद संख्या 132, 700

प्रश्नवाचक सर्वनाम को[1] (कौन), क्या[2]।

अनिश्चयवाचक सर्वनाम कोई[3]।

आदरवाचक सर्वनाम तुमारो[4]।

"हरि अदृष्ट सतसैया" में प्राय: दो प्रकार के शब्द मिलते हैं - रूढ़ तथा यौगिक । जो शब्द अपना वास्तविक अर्थ त्याग कर अन्य अर्थ में प्रसिद्ध हो जाता है, रूढ़ कहलाता है । आलोच्य कृति में से उदाहरणार्थ कुछ शब्द प्रस्तुत हैं - गोपाल[5], रघुपति[6], यदुपति[7], दलमूल[8] आदि ।

ब्रज-भाषा में यौगिक शब्दों की रचना प्राय: तीन प्रकार से की जाती है - उपसर्ग जोड़कर, प्रत्यय जोड़कर तथा दो शब्दों को जोड़कर । आलोच्य कृति में कवि ने यौगिक शब्दों का निर्माण मुख्यत: चार प्रकार से किया है - उपसर्ग जोड़कर, प्रत्यय जोड़कर, उपसर्ग तथा प्रत्यय दोनों को जोड़कर तथा दो शब्दों को जोड़कर ।

कवि ने उपसर्गों की सहायता से निर्मित अनेक शब्दों का प्रयोग किया है, उदाहरणार्थ कुछ शब्द प्रस्तुत हैं -

अ -------------अधरमो[9], अडर[10], अभाग[11], अग्यान[12], अतार[13]।

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 122, 147
2. वही , छंद संख्या 29
3. वही , छंद संख्या 97, 131, 145
4. वही , छंद संख्या 92
5. वही , छंद संख्या 92
6. वही , छंद संख्या 10
7. वही ,छंद संख्या 10
8. वही , छंद संख्या 10
9. वही ,छंद संख्या 14
10. वही , छंद संख्या 15
11. वही , छंद संख्या 26
12. वही , छंद संख्या 312
13. वही , छंद संख्या 330

अन् ------------ अनहित[1], अनसुई[2], अनलज[3] ।

आ ------------ आक्रोश[4], आसुरी[5] ।

अनु ------------ अनुराग[6], अनुकथा[7] ।

कु ------------ कुलपत[8], कुठौर[9], कुसंग[10] ।

नि ------------ निसार[11], निसुख[12], निकुल्ल[13] ।

निर् ------------ निरफल[14], निरपेक्ष[15], निरधन[16], निरभीत[17] ।

सु ------------ सुदेस[18], सुठरिया[19], सुकरम[20], सुपथ[21] ।

वि [वि]------- विमुख[22], विजन[23], विमल[24] ।

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट मतसैया, छंद संख्या 109
2. वही, छंद संख्या 170
3. वही, छंद संख्या 293
4. वही, छंद संख्या 610
5. वही, छंद संख्या 669
6. वही, छंद संख्या 78
7. वही, छंद संख्या 56
8. वही, छंद संख्या 57
9. वही, छंद संख्या 103
10. वही, छंद संख्या 206;207
11. वही, छंद संख्या 7
12. वही, छंद संख्या 177, 178
13. वही, छंद संख्या 561
14. वही, छंद संख्या 32
15. वही, छंद संख्या 198
16. वही, छंद संख्या 213
17. वही, छंद संख्या 340
18. वही, छंद संख्या 10
19. वही, छंद संख्या 15
20. वही, छंद संख्या 19
21. वही, छंद संख्या 104
22. वही, छंद संख्या 46
23. वही, छंद संख्या 54
24. वही, छंद संख्या 80

उप ---------- उपराम[1], उपरामो[2], उपलक्ष[3] ।

उपर्युक्त उपसर्गों के अतिरिक्त अप, प्र, प्रति, उ, उन, बे आदि उपसर्गों से भी शब्द निर्मित हुए हैं ।

प्रत्यय की सहायता से निर्मित शब्दों के भी उदाहरण दृष्टव्य हैं -

आइ ---------- लखाइ[4], उड़ाइ[5], झुलाइ[6], लपटाइ[7] ।

आलु ---------- दयालु[8], सरधालु[9] ।

इक ---------- अधिक[10], आदिक[11] ।

इनि---------- परिछनि[12], प्यारनि[13], दासनि[14] ।

क ---------- फूंकक[15], बंधक[16], दमक[17] ।

अता---------- समता[18], ममता[19], मुदता[20] ।

---

1. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 374, 380
2. वही ,छंद संख्या 385, 387
3. वही ,छंद संख्या 623
4. वही ,छंद संख्या 69
5. वही ,छंद संख्या 117
6. वही ,छंद संख्या 337
7. वही ,छंद संख्या 355
8. वही ,छंद संख्या 231, 442
9. वही ,छंद संख्या 403
10. वही ,छंद संख्या 221, 284
11. वही ,छंद संख्या 498
12. वही ,छंद संख्या 183
13. वही ,छंद संख्या 271
14. वही ,छंद संख्या 351
15. वही ,छंद संख्या 169
16. वही ,छंद संख्या 384
17. वही ,छंद संख्या 352
18. वही ,छंद संख्या 115
19. वही ,छंद संख्या 115
20. वही ,छंद संख्या 474

मय ---------- रसमय[1], दोषमय[2], गलानमय[3] ।

आलोच्य कृति में कुछ शब्द ऐसे भी मिलते हैं जिनमें उपसर्ग तथा प्रत्यय दोनों का प्रयोग किया गया है यथा ----

उपलक्षत[4] -------- उप + लक्ष + अत

अमलक[5] -------- अ + मल् + क

दो शब्दों के योग से भी कुछ यौगिक शब्द निर्मित हुए हैं । आलोच्य कृति में से उदाहरण दृष्टव्य हैं ----

धनधन्न[6] -------- धन + धन्न

भवनिधि[7] -------- भव + निधि

गजसिंह[8] -------- गज + सिंह

घनस्याम[9] ------ घन + स्याम

सुखधाम[10] ------ सुख + धाम

कमलापति[11] ----- कमला + पति

आतमघात[12] ----- आतम + घात

रसातल[13] ----- रसा + तल

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 58
2. वही, छंद संख्या 64
3. वही, छंद संख्या 248
4. वही, छंद संख्या 622
5. वही, छंद संख्या 610
6. वही, छंद संख्या 36
7. वही, छंद संख्या 37, 185, 243
8. वही, छंद संख्या 19
9. वही, छंद संख्या 57
10. वही, छंद संख्या 62
11. वही, छंद संख्या 80
12. वही, छंद संख्या 109
13. वही, छंद संख्या 184

ठगबाजी[1] ---------- ठग+बाजी

द्रुमवति[2]------------ द्रुम+वति

आलोच्य कृति में संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों के अतिरिक्त पंजाबी, फारसी, अरबी आदि के शब्द प्रयुक्त हुए हैं । इस संबंध में डा० धीरेन्द्र वर्मा का मत है ------ "संस्कृत से आने वाले तत्सम तथा तद्भव शब्दों के अतिरिक्त प्राचीन ब्रजभाषा में फारसी, अरबी आदि विदेशी भाषाओं के शब्द भी स्वतन्त्रता पूर्वक प्रयुक्त हुए हैं । यद्यपि समस्त शब्दावली में इनका प्रतिशत प्रयोग कदाचित् एक से अधिक नहीं पड़ेगा ।"[3] आलोच्य कृति की शब्दावली का विस्तारपूर्वक अध्ययन हम भाषिक-संरचना के अन्तर्गत करेंगे ।

डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार --- "प्राचीन तथा आधुनिक दोनों ही ब्रज भाषाओं में साधारणतया निम्नलिखित शब्द- क्रम होता है --- कर्त्ता, कर्म, क्रिया । विशेषण का प्रयोग साधारणतया संज्ञा या सर्वनाम के पहले ही होता है । क्रिया-विशेषण,क्रिया के पहले आता है ।"[4] आलोच्य कृति में भी कवि ने प्रायः वाक्यों का निर्माण करते हुए "कर्त्ता-कर्म-क्रिया" शब्द-क्रम प्रयुक्त किया है, उदाहरण दृष्टव्य हैं -------- "बिद हो लीला तनु धरे"[5]; "बिद बिभु ने जो बपु धरे"[6]; "दादर मोन मोर पिक, भवत सगल बिललाइ"[7]; "धरा तपत हुइ जाइ"[8] । कवि ने विशेषण का प्रयोग भी प्रायः संज्ञा अथवा सर्वनाम से पूर्व किया है यथा -------- "आपात मेघी बोर बिन, को हन ताको धीर"[9];

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 235
2. वही ,छंद संख्या 393
~~3. वही ,छंद संख्या 393~~
~~4. वही ,छंद संख्या~~

3. डा०धीरेन्द्र वर्मा: ब्रजभाषा व्याकरण,इलाहाबाद,रामनारायण लाल, 1954 ई०, पृ० 33.
4. डा०धीरेन्द्र वर्मा : ब्रजभाषा, इलाहाबाद, हिंदुस्तानी एकेडेमी, 1954 ई० ,पृ० 125
5. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया,छंद संख्या 6
6. वही ,छंद संख्या 12
7. वही ,छंद संख्या 57
8. वही ,छंद संख्या 76
9. वही ,छंद संख्या 122

"धायो नर के सुख हम"[1]; "सद अनंद अति जाव मो"[2]। क्रिया-विशेषण भी अधिकांशत: क्रिया से पूर्व प्रयुक्त हुआ है यथा - --"इनमें साचे कौन है"[3]; "यामें जोई गरल भव"[4]; "इक इक को बया गनो"[5]।

डा० धीरेन्द्र वर्मा के मतानुसार ---"[ब्रज भाषा में] वाक्य के किसी अंश पर जोर देने के लिए शब्दों के साधारण क्रम में उलट फेर कर दिया जाता है।"[6] विशेषण प्राय: कर्त्ता से पहले आता है, लेकिन वाक्य के किसी अंश पर बल देने के लिए बाद में भी प्रयुक्त हो सकता है। आलोच्य कृति में के उदाहरण प्रस्तुत है --- "अज मैं लख्यो अबल्ल सुख"[7]; "दादर मोन मोर पिक, भक्त सगल किललाह"[8]; "रसा सकल नभ मास मैं"[9]। साधारणतया क्रिया वाक्य के अन्त में आती है लेकिन वाक्य को प्रभावशाली बनाने के लिए कवि ने क्रिया का प्रयोग कर्म तथा कर्त्ता से पूर्व भी किया है। आलोच्य कृति में से कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं ---"धरा धभी प्रहलाद को"[10]; "हति जिह दसमुख कंस"[11]; "बालो बालो बेद मन"[12]; "धायो धायो दु किये"[13]; "मार सख धर भार हरि"[14]।

उपर्युक्त विवेचित रूप, शब्द, वाक्य रचना के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि आलोच्य कृति की मूल भाषा ब्रज है।

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 186
2. वही, छंद संख्या 635
3. वही, छंद संख्या 268
4. वही, छंद संख्या 248
5. वही, छंद संख्या 12
6. डा० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रजभाषा व्याकरण, पृ० 133
7. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 658
8. वही, छंद संख्या 57
9. वही, छंद संख्या 58
10. वही, छंद संख्या 8
11. वही, छंद संख्या 10
12. वही, छंद संख्या 28
13. वही, छंद संख्या 275
14. वही, छंद संख्या 87

6.1. भाषिक संरचना :-

हरि अष्टक सतसैया की भाषिक संरचना का अध्ययन हमने निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर किया है ----

6.1.1 शब्द भण्डार

6.1.2 शब्द शक्ति

6.1.3 काव्य दोष

6.1.4 मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ

6.1.5 अलंकार

6.1.6 छंद

6.1.1 शब्द भण्डार

"हरि अष्टक सतसैया" की मूल भाषा ब्रज है , यह हम पहले देख चुके हैं । ब्रज-भाषा के अतिरिक्त संस्कृत , अरबी, फारसी आदि के शब्दों का भी प्रयोग इस काव्य-कृति में हुआ है ।

6.1.1.1 तत्सम शब्द :- किसी भाषा का विशेषतः संस्कृत का वह शब्द जिसका प्रयोग या व्यवहार दूसरी या देशी भाषाओं में उसके मूलरूप में या ज्यों का त्यों हो, तत्सम शब्द होता है[5] । अधिकांश निर्मल संत संस्कृत और पंजाबी के ज्ञाता थे, इसलिए उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग होना स्वाभाविक ही है । इसलिए आलोच्य कृति में तत्सम शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक रूप में हुआ है ।

---

1. कर्म सिंह निर्मल:हरि अष्टक सतसैया, छंद संख्या 122, 147
2. वही ,छंद संख्या 29
3. वही ,छंद संख्या 97, 131, 145
4. वही ,छंद संख्या 92
5. नवल जी:नालंदा विशाल शब्द सागर, पृ0 494.

~~उदाहरणार्थ तत्सम शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत~~

उदाहरणार्थ कुछ तत्सम शब्द प्रस्तुत हैं :- अनल — अनल[1], अनिल: — अनिल[2] अपार - अपार[3], अलि: - अलि[4], अहि: - अहि[5], उपरत - उपरत[6], उपल:-उपल[7], उपाधि: - उपाधि[8], कर - कर[9], काम:-काम[10], काक-काक[11], काल-काल[12], कपट:-कपट[13], कूप:-कूप[14], खेल-खेल[15], खग:-खग[16], गुरु-गुरु[17], गृह:-गृह[18], गिरि-गिरि[19], धन-धन[20], चिता-चिता[21], चिन्ता-चिंता[22],

---

1. कर्म सिंह निर्मला: हरि अद्भुत सतसैया, छंद संख्या 17,31,100,161,225, 408,458.
2. वही , छंद संख्या 17,77,609
3. वही ,छंद संख्या 247
4. वही , छंद संख्या 362
5. वही , छंद संख्या 476
6. वही ,छंद संख्या 374, 384
7. वही ,छंद संख्या 400, 482
8 वही ,छंद संख्या 503,504, 612,615.
9. वही ,छंद संख्या 48, 142
10 वही ,छंद संख्या 133
11 वही ,छंद संख्या 45
12. वही ,छंद संख्या 61,77,84,85
13 वही ,छंद संख्या 202,203
14. वही ,छंद संख्या 246, 290
15 वही ,छंद संख्या 270
16 वही ,छंद संख्या 288
17. वही ,छंद संख्या 226
18. वही ,छंद संख्या 308
19. वही ,छंद संख्या 44, 308
20 वही ,छंद संख्या 293, 319
21 वही ,छंद संख्या 158
22 वही ,छंद संख्या 158

घातक:-घातक[1], जनक-जनक[2], जगत-जगत[3], जीव-जीव[4], जननि:-जननि[5], जाप:-जाप[6], जलधर:-जलधर[7], तनु-तनु[8], तरु:-तरु[9], देह:-देह[10] दान:-दान[11], धरा-धरा[12], धर्म:-धरम[13], नर-नर[14], नम:-नम[15], नरक:-नरक[16], नाथ-नाथ[17], पाप-पाप[18], पिक: -पिक[19], प्रमाद:-प्रमाद[20] पादप:-पादप[21], पटु-पटु[22], परात्म: -परात्म[23],

---

1. कर्म सिंह निर्मला: हरि अकुष्ट सतसैया, छंद संख्या 376, 407.
2. वही ,छंद संख्या 700
3. वही ,छंद संख्या 177,182,190,216,229
4. वही ,छंद संख्या 259
5. वही ,छंद संख्या 700
6 वही ,छंद संख्या 36
7 वही ,छंद संख्या 407
8 वही ,छंद संख्या 248, 264.
9 वही ,छंद संख्या [illegible] 402
10 वही ,छंद संख्या 265, 279
11 वही ,छंद संख्या 444
12 वही ,छंद संख्या 76
13 वही ,छंद संख्या 456
14 वही ,छंद संख्या 52,137,142,158,184.
15 वही ,छंद संख्या 58,228, 229
16 वही ,छंद संख्या 159, 162, 193
17 वही ,छंद संख्या 448 , 452
18 वही ,छंद संख्या 30,91,184,185,205
19 वही ,छंद संख्या 43, 59
20 वही ,छंद संख्या 234,
21 वही ,छंद संख्या 388
22 वही ,छंद संख्या 243,305,317
23 वही छंद " 566

बोधः-बोध[1] , भ्रम-भ्रम[2] , भ्रूः-भ्रू[3] , भूपालः-भूपाल[4] , मदः-मद[5] ,
मानः- मान[6] , मोहः-मोह[7] , मराल-मराल[8] , रजत-रजत[9] , रमा-रमा[10] ,
रोधः-रोध[11] , रागः-राग[12] , रसालः-रसाल[13] , रविः-रवि[14] ,
रजस्वल-रजस्वल[15] , लीला-लीला[16] , लोभः-लोभ[17] , सुत-सुत[18] , सुर+सुर[19],
हित-हित[20] , हरि-हरि[21] ।

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 596, 617,648.
2. वही ,छंद संख्या 534, 592
3. वही ,छंद संख्या 105, 328, 464
4 वही ,छंद संख्या 108, 118,165
5 वही ,छंद संख्या 191,192,193,194
6 वही ,छंद संख्या 126,197,200, 201
7 वही ,छंद संख्या 105, 106, 107, 111
8 वही ,छंद संख्या 311, 421
9 वही ,छंद संख्या 86, 322, 467
10 वही ,छंद संख्या 58, 81
11 वही ,छंद संख्या 179
12 वही ,छंद संख्या 187, 188, 189
13 वही ,छंद संख्या 233
14 वही ,छंद संख्या 405,410, 503,613
15 वही ,छंद संख्या 175,
16 वही छंद संख्या 544
17 वही ,छंद संख्या 139,140,141,142,143
18 वही ,छंद संख्या 45, 250,266
19 वही ,छंद संख्या 43, 407
20 वही ,छंद संख्या 250, 268
21 वही ,छंद संख्या 39, 51,54,58,60

6.1.1.2 <u>अर्द्धतत्सम शब्द</u> :- उच्चारण की सुविधा के लिए प्राय: अर्द्धतत्सम शब्दों का प्रयोग किया जाता है । डा० सुरेन्द्र माथुर के अनुसार 19वीं शताब्दी के ब्रज-भाषी कवियों में इन शब्दों की संख्या सर्वाधिक है । कहीं कहीं पर ये शब्द स्वर भक्ति, कहीं अगागम, कहीं ब्रज-भाषा की प्रकृति के आधार पर और कहीं शब्द के उच्चारण की सुविधा के अनुसार निर्मित किए गए हैं । अर्द्धतत्सम शब्द बनाने की यह परम्परा ब्रज-भाषा में प्रचलित रही है ।[1] इस अभिमत के अनुरूप ही कवि ने भी अपनी इस कृति में अर्द्धतत्सम शब्दों का प्रयोग किया है । उदाहरणार्थ कुछ शब्द द्रष्टव्य है ---- अक्षर – अछर[2], अचल-अचल्ल[3], आखेट: – आखेट[4], आशा – आसा[5], ऊर्मि:- ऊरम[6], ऋतु-रुत[7], क्लेश:-कलेस[8], कलियुग – कलिजुग[9], चम्पक-चंपक[10], जलाशय:-जलासै[11], तीक्ष्ण-तीछन[12], तितिक्षा – तितिछया[13], दम्भ:- दंभ[14], दाढा-दाढ[15]

---

1. डा० सुरेन्द्र माथुर : उन्नीसवीं सदी की ब्रज-भाषा, पृ० 75
2. कर्ण सिंह निर्मल: हरि अष्टक सतसैया, छंद संख्या 15
3. वही ,छंद संख्या 658
4. वही ,छंद संख्या 270
5. वही ,छंद संख्या 153,154,155,156
6. वही ,छंद संख्या 292
7. वही ,छंद संख्या 402
8. वही ,छंद संख्या 38
9. वही छंद संख्या 215, 222
10. वही ,छंद संख्या 278
11. वही ,छंद संख्या 470
12. वही ,छंद संख्या 381
13. वही ,छंद संख्या 388
14. वही ,छंद संख्या 171,172
15. वही ,छंद संख्या 56

द्वेष्य–द्वैख[1], दृढ़–द्रिड़[2], निंद–निंदा[3], नदी–नदि[4],
निशाचर–निसाचर[5], पीड़–पीर[6], प्रवीण–प्रबीन[7], पितृ–पितर[8],
ब्रह्मम्–ब्रहमा[9], भ्रम–भ्रम[10], माया–माइ[11], मुमुक्षा–ममुछता[12],
मोक्षः–मोख[13], मुद–म्रिद[14], यम–जम[15], रोषः–रोख[16], रक्षा–राखशा[17],
वृत्तिः–ब्रित्ति[18], विप्र:–बिप[19], विपुल–बिपुल[20], विभु–बिभु[21]

---

1. कर्म सिंह निर्मला: हरि अनुभव सतसैया, छंद संख्या 187,188,189.
2. वही, छंद संख्या 424,581,593
3. वही, छंद संख्या 165, 166,167
4. वही, छंद संख्या 440, 442
5. वही, छंद संख्या 173, 202
6. वही, छंद संख्या 201,221, 349,459
7. वही, छंद संख्या 256, 342
8. वही, छंद संख्या 175
9. वही, छंद संख्या 530
10. वही, छंद संख्या 581, 614,
11. वही, छंद संख्या 18, 532, 601
12. वही, छंद संख्या 22
13. वही छंद संख्या 619, 645
14. वही छंद संख्या 466
15. वही छंद संख्या 265, 345
16. वही छंद संख्या 179, 180
17. वही छंद संख्या 204
18. वही छंद संख्या 70, 224, 315
19. वही छंद संख्या 9
20. वही छंदसंख्या 10, 502
21. वही छंद संख्या 2,12,17, 87, 536

वेद -बेद[1], विवेक: - बिबेक[2], विचार: -बिचार[3], शठ - सठ[4], शान्त-सांत[5], शुक: - सुक[6], श्रद्धा -सरधा[7], श्रुति -स्रुति[8], षट्क - खट[9], सदा-सद[10], समिर: - समीर[11], सैन्धव - सैंधव[12], हंस - हंसु[13] ।

6.1.1.3 <u>तद्भव शब्द</u> :- "भाषा में प्रयुक्त होने वाला संस्कृत का वह शब्द जिसका रूप कुछ विकृत अथवा परिवर्तित हो गया हो । जैसे - अश्रु का आँसु । संस्कृत के शब्द का अपभ्रंश रूप तद्भव शब्द कहलाता है ।[14] अन्य शब्दों में तद्भव शब्दों से हमारा तात्पर्य उन शब्दों से है जो मूलतः संस्कृत के थे, परन्तु मध्यकालीन भाषाओं - पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में परिवर्तित होते हुए

---

1. कर्म सिंह निर्मला: हरि अष्टक सतसैया, छंद संख्या 28,398,403, 597
2. वही ,छंद संख्या 106, 309, 335
3. वही ,छंद संख्या 113, 128, 135
4 वही ,छंद संख्या 255, 266
5 वही ,छंद संख्या 256, 333, 668
6 वही ,छंद संख्या 149, 230
7 वही ,छंद संख्या 398, 399, 402
8 वही ,छंद संख्या 6, 116,327, 411,412
9 वही ,छंद संख्या 465, 497
10 वही ,छंद संख्या 114,
11 वही ,छंद संख्या 55
12 वही ,छंद संख्या 4
13 वही छंद संख्या 247
14 नवल जी : नालंदा विशाल शब्द सागर, पृ0 495.

नए रूप में आधुनिक भाषाओं को मिले हैं । आलोच्य कृति में तद्भव शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है । संस्कृत भाषा के सरल रूप ब्रज-भाषा की प्रकृति के सर्वथा अनुकूल है जो कि आलोच्य कृति में मिलते है, उदाहरणार्थ कुछ शब्द प्रस्तुत हैं :------ गात्रम् - गात[1], ज्योतिस् - जोत[2], ज्योतिष-जोतिष[3], चिह्न - चिह्न[4], चतुर्थ - चार[5], तथा चारो[6], छत्र - छतो[7], चोरणम् - चोर[8], चक्षुस् - चख[9], गुहः - गुह[10], स्थित - थित[11], धाव्-धायो[12], धाव् - दौर[13], नयनम् - नैन[14], पवनः - पौन[15], निश्चय - निहचौ[16], पाद - पग[17], भवनम् - भौन[18],

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अष्टुष्ट सतैया, छंद संख्या 474
2. वही ,छंद संख्या 590
3. वही ,छंद संख्या 678
4 वही ,छंद संख्या 16,17,21, 227,228, 398
5 वही ,छंद संख्या 437
6 वही ,छंद संख्या 269
7 वही ,छंद संख्या 668
8 वही ,छंद संख्या 326, 481, 588
9 वही ,छंद संख्या 612, 613
10 वही ,छंद संख्या 316
11 वही ,छंद संख्या 534, 621
12 वही ,छंद संख्या 275, 483
13 वही ,छंद संख्या 447
14 वही ,छंद संख्या 267
15 वही ,छंद संख्या 346
16 वही ,छंद संख्या 637
17 वही ,छंद संख्या 660
18 वही ,छंद संख्या 526

मयूरः - मोर[1], मित्र - मीत[2], मित्र - मित[3], यतनम् -जतन[4], योगी -जोगी[5], यज्ञः-यजन -जजन[6], लोकः - लोग[7], स्पर्श -परस[8], स्वप्नः-सुपन[9], स्वप्न -सुपना[10], ह हृदय - हिय[11], हृदय - हीय[12], लज्जा -लाज[13] ।

6.1.1.4 <u>विदेशी शब्द</u> :- कवि कर्म सिंह निर्मल के समय में मुगल राज्य समाप्त हो चुका था, परन्तु तत्कालीन भाषा पर अरबी, फारसी, तुर्की आदि का पर्याप्त प्रभाव था । इसलिए आलोच्य कृति में अरबी और फारसी के अनेक शब्द मिलते हैं, जो अपने सहज रूप में ब्रज भाषा में सम्मिलित हो गए है ।

(क) <u>अरबी भाषा के शब्द</u>

---

1. कर्म सिंह निर्मल :हरि अनूठा सतसैया : छंद संख्या 59
2. वही ,छंद संख्या 294
3. वही ,छंद संख्या 250, 519,521,523.
4. वही ,छंद संख्या 591
5. वही ,छंद संख्या 6, 689
6. वही ,छंद संख्या 36
7. वही ,छंद संख्या 250
8. वही ,छंद संख्या 674
9. वही ,छंद संख्या 644, 653.
10. वही ,छंद संख्या 163
11. वही ,छंद संख्या 33, 169
12. वही ,छंद संख्या 397
13. वही ,छंद संख्या 275.

आदम[1], अरब[2], वजीर[3], जासूस[4], फौत[5], मालम[6], तहकीक[7], तहतीब[8], हजूर[9], साहिब[10] ।

(ख) <u>फारसी भाषा के शब्द</u> : आब[11], आराम[12], निहाल[13], जंजीर[14], मरद[15], चश्मा[16], जुल्फ[17], नाजीक[18], मजा[19] ।

---

1 कर्म सिंह निर्मला, हरि अठूट सतसैया, छंद संख्या 321

2 वही ,छंद संख्या 233

3 वही ,छंद संख्या 118

4 वही , छंद संख्या 273

5 वही , छंद संख्या 401

6 वही ,छंद संख्या 217

7 वही ,छंद संख्या 461, 480

8 वही ,छंद संख्या 212

9 वही ,छंद संख्या 368

10 वही ,छंद संख्या 29

11 वही ,छंद संख्या 299

12 वही ,छंद संख्या 427

13 वही ,छंद संख्या 476

14 वही ,छंद संख्या 456, 660

15. वही ,छंद संख्या 136

16 वही ,छंद संख्या 157

17 वही ,छंद संख्या 135

18 वही ,छंद संख्या 665

19 वही ,छंद संख्या 524

6.1.2 शब्द - शक्ति

भाषा भावाभिव्यक्ति का उत्तम साधन है । भाषा वाक्यों से बनती है और वाक्य पदों के योग से निर्मित होते हैं । प्रत्येक शब्द का अर्थ होता है और वह अर्थ ही उसकी शक्ति है । शब्द की वह शक्ति, जिससे किसी विशेष भाव को अभिव्यक्त किया जाए, शब्द-शक्ति कहलाती है । 'हिन्दी साहित्यकोश' के अनुसार —— "शब्द की शक्ति उसके अन्तर्निहित अर्थ को व्यक्त करने का व्यापार है । कारण, जिसके द्वारा कार्य-सम्पादन करता है उसे व्यापार कहा जाता है।"[1] संस्कृत के काव्य-शास्त्र के आचार्यों ने इसे अनेक नामों — शक्ति, वृत्ति, व्यापार आदि से पुकारा है । "तर्कदीपिका" में शक्ति को शब्द अर्थ के उस संबंध के रूप में स्वीकार किया गया, जो मानस में अर्थ को व्यक्त करता है। जब कभी शब्द का उच्चारण किया जाता है।[2] भाई कान्ह सिंह नाभा के अनुसार —————— "शक्ति वृत्ति उह है, जिस तों पद सुनदे ही अरथ दा बोध होवे, जैसे घोड़ा शब्द सुणन सार तुरंग दा ग्यान हुंदा है ।"[3] डा० सुरेन्द्र माथुर ने आचार्य विश्वनाथ के मत का समर्थन करते हुए काव्य में व्यापार बोध के नाम को ही शब्द शक्ति माना है ।[4] "शब्द-वृत्ति वह एक व्यापार है जो कारण भूत शब्द-ज्ञान से उत्पन्न होता है और शब्द-बोध रूप फल को उत्पन्न करता है ।"[5] डा० मधु शर्मा के मतानुसार प्रत्येक शब्द अपने वाक्य में रहकर ही अर्थ-द्योतन की क्षमता रखता है । अर्थप्रतीतिद्योतन का यही व्यापार काव्यशास्त्र में शब्द की

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 759
2. वही ,पृ० 759
3. भाई कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ० 1114
4. डा० सुरेन्द्र माथुर: उन्नीसवीं शती की ब्रजभाषा, पृ० 207
5. डा० रामसागर त्रिपाठी और डा० शान्तिस्वरूप गुप्त: बृहत साहित्यिक निबन्ध, दिल्ली, अशोक प्रकाशन, 1984 ई०,पृ०152

शक्ति कहलाती है ।[1] शब्द -शक्ति के , तीन भेद माने गए हैं------ अभिधा, लक्षणा और व्यंजना ।

6.2.2.1 अभिधा :-

शब्द की वह शक्ति जिससे उसी समय प्रचलित और मुख्य अर्थ का बोध हो, अभिधा कही जाती है । आचार्य "मम्मट के अनुसार------ "स मुख्योऽर्थस्तत्र मुख्योऽव्यापारो स्याभिधोच्यते" {काव्य प्रकाश 2:8}, अर्थात साक्षात् संकेतित {गुण, जाति, द्रव्य तथा क्रियावाचक} अर्थ जिसे मुख्य अर्थ कहा जाता है, उसका बोध कराने वाले व्यापार को अभिधा व्यापार या शक्ति कहते हैं "[2] । डा0 सुरेन्द्र माथुर और डा0 मधु शर्मा ने क्रमशः साक्षात् "संकेतित अर्थ की बोधिका"[3] और "साक्षात् संकेतित अर्थ की प्रतीति"[4] को अभिधा माना है । डा0 राज बुद्धिराजा के अनुसार "अभिधा द्वारा बिना किसी घुमाव-फिराव के अर्थ प्रस्तुत किया जाता है । इसमें भावों की सरल और सीधी अभिव्यक्ति की जाती है ।[5] अभिव्यक्ति का सहज और सरल साधन होने के कारण प्रायः सभी काव्य-कृतियों में इस शब्द -शक्ति का प्रयोग मिलता है । कवि ने आलोच्य कृति में तीनों प्रकार के वाचक शब्दों - रूढ़ , यौगिक तथा योगरूढ़ का उपयोग किया है ।

---

1. डा0 मधु शर्मा : पद्माकर की काव्य भाषा, पृ0 199
2. डा0 धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 44
3. डा0 सुरेन्द्र माथुर : उन्नीसवीं शती की ब्रजभाषा, पृ0207
4. डा0 मधु शर्मा: पद्माकर की काव्य-भाषा, पृ0 199
5. डा0 राज बुद्धिराजा : देव के काव्य में अभिव्यक्ति- विधान, पृ0 60.

6.1.2.1.1 <u>रूढ़ शब्द</u> :- अनल[1], अनिल[2], उपल[3], काल[4], नर[5], भूप[6] आदि ।

6.1.2.1.2 <u>यौगिक शब्द</u> :- निशाचर[7], आदि

6.1.2.1.3 <u>योगरूढ़ शब्द</u> :- रघुपति[8], यदुपति[9], सुरपति[10], कमलापति[11], गिरधर[12] आदि ।

आलोच्य कृति में से अभिधा का यह उदाहरण द्रष्टव्य है जिसमें कवि ने अपने गुरु, माता, पिता के प्रति आदरभाव प्रकट किया है ----

---

1. कर्म सिंह निर्मला:हरि अद्भुत सतसैया, छंद संख्या 17,31,100,225,458
2 वही ,छंद संख्या 17,77,609
3 वही ,छंद संख्या 400, 482
4 वही ,छंद संख्या 61,77,84,85
5 वही ,छंद संख्या 52, 137, 142, 184.
6 वही , छंद संख्या 105, 328, 464
7 वही ,छंद संख्या 173, 202
8 वही ,छंद संख्या 10
9 वही ,छंद संख्या 10
10 वही ,छंद संख्या 45
11 वही ,छंद संख्या 80
12 वही ,छंद संख्या 61

हरि गुरत्त गन को नमो, जनक जननि को मान ।
इन गन को अनुबंध बिन, को कर भव को हानि ।।[1]

6.1.2.2 लक्षणा

शब्द की वह शक्ति, जिससे उसका सामान्य अर्थ से भिन्न वास्तविक अर्थ लक्षित हो, लक्षणा शब्द शक्ति होती है। "मम्मट के अनुसार— "मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात् । अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया ।" (काव्य प्रकाश 2:9) , अर्थात् मुख्य अर्थ के बाधित होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन के कारण जिस क्रिया (शक्ति) द्वारा मुख्य अर्थ से संबंध रखने वाला अन्य अर्थ लक्षित हो, उसे लक्षणा-व्यापार (शक्ति) कहते हैं । "विश्वनाथ की परिभाषा मम्मट से ली गई है, केवल "क्रिया" के स्थान पर "शक्ति" शब्द का प्रयोग मिलता है (साहित्य दर्पण : 2:5) ।"[2] डा० मधु शर्मा ने भी ऐसी ही परिभाषा देते हुए माना है कि "मुख्यार्थ की बाधा या व्याघात होने पर रूढ़ि या प्रयोजन के आधार पर जिस शक्ति के द्वारा मुख्यार्थ से संबंध रखने वाला अन्य अर्थ लक्षित हो, उसे लक्षणा कहते हैं"[3] । डा० राज बुद्धिराज के अनुसार लक्षणा अदृश्य वस्तु को मूर्त रूप प्रदान करती है[4] ।

लक्षणा शब्दशक्ति के मुख्यतः दो भेद हैं —— रूढ़ि लक्षणा और प्रयोजनवती लक्षणा ।

6.1.2.2.1 रूढ़ि लक्षणा -

जब रूढ़ि के कारण मुख्यार्थ को छोड़कर वास्तविक अन्य अर्थ माना जाता है, तो उसे रूढ़ि लक्षणा कहते हैं । कवि ने आलोच्य

---

1. कर्म सिंह निर्मल; हरि अष्टक सतसैया ,छंद संख्या 700
2. डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 678
3. डा० मधु शर्मा : पद्माकर की काव्य भाषा, नई दिल्ली, अभिनव प्रकाशन, 1977 ई, पृ० 200
4. डा० राज बुद्धिराजा : देव के काव्य में अभिव्यक्ति विधान पृ० 62.

कृति में इस शब्द शक्ति का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है, उदाहरण द्रष्टव्य है ---

"जग भव सब जो राखतो, बिन त्रिसना नहि आन ।
बामि अंकपुन लोभ के, को बच तासि जान ।।"[1]

"बामि अंक" का साधारण अर्थ है बाईं ओर । चूँकि पत्नी, पति के बाईं ओर बैठती है, इसलिए रूढ़ि के कारण "बामि अंक" का यहाँ अर्थ "पत्नी" के लिए है । इस दोहे में "त्रिसना" को कवि ने "लोभ" की पत्नी माना है । रूढ़ि लक्षणा का यह अर्थ परम्परा में प्रतिष्ठित होने के कारण है । रूढ़ि लक्षणा का दूसरा अर्थ मुहावरे और लोकोक्तियों के कारण लिया जा सकता है । आलोच्य कृति में से दोहा प्रस्तुत है ---

"अरे पाप पुन यों कहे, कब भवनिधि तर जाउ ।
कह जिम को मैं निधि तरों, बैठ उपल की नाउ ।।"[2]

पत्थर की नाव में बैठकर सागर पार करने से कवि का लक्ष्यार्थ असंभव कार्य है । इसी प्रकार एक और उदाहरण द्रष्टव्य है ---

जो मारे मद लोभ को, हउ तिह के पग चूम ।
सही सिख मिल के बली, तीन लोक कर धूम ।।[3]

इस दोहे में "पग चूम" से कवि का लक्ष्यार्थ आदर-भाव की ओर है और "तीन लोक कर धूम" से कवि का लक्ष्यार्थ धूम मचना अर्थात् प्रसिद्धि से है ।

लोकोक्ति के कारण रूढ़ि लक्षणा का उदाहरण प्रस्तुत है ---

करम अनल ते ताइ कर, तन कुंदन जिह होइ ।
जिम नाही अति लोभ नहि, हरि भूखन कर सोइ ।[4]

---

1. कर्म सिंह निर्मला:हरि अकृष्ट सतसैया, छंद संख्या 143.
2. वही ,छंद संख्या 185
3. वही ,छंद संख्या 195
4. वही ,छंद संख्या 31

कर्मों रूपी आग में तप कर ही शरीर रूपी सोना कुंदन बनता है, से कवि का लक्ष्यार्थ है कि जीव कर्मों के दुख सुख सहकर ही शोभा प्राप्त करता है।

6.1.2.2.2 प्रयोजनवती लक्षणा

किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए मुख्यार्थ को छोड़कर अन्य अर्थ को प्रयोजनवती लक्षणा के अन्तर्गत ग्रहण किया जाता है। इसके दो भेद हैं- गौणी प्रयोजनवती लक्षणा और शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा।

(क) गौणी प्रयोजनवती लक्षणा -

डा० मधु शर्मा के अनुसार गौणी लक्षणा वहाँ होती है, जहाँ सादृश्य संबंध से अर्थात् समान गुण और धर्म के कारण लक्ष्यार्थ को ग्रहण किया जाता है।[1] आलोच्य कृति में इस लक्षणा का उदाहरण दृष्टव्य है ---

कहूं बुलबुलो नर सुनो, जपै कि हरि को नाम।
यह कोकिल इक ठौर नहि, इक तिह को किम काम।।[2]

कोयल का अपना कोई घर अथवा ठौर-ठिकाना नहीं होता। इसलिए समान गुण के कारण बुलबुले नर की तुलना कोयल से की गई है। धर्म साम्य का उदाहरण प्रस्तुत है जिसमें कर्म वृत्ति की निर्मलता की तुलना हँसती हुई स्त्री से की गई है ---

करम ब्रित है निरमली, कर निरमल उर सोइ।
पुनि ति : हसैं धर तीय लखो, मन मु करैं कर सोइ।।[3]

(ख) शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा

"सादृश्य संबंध के अभाव में किसी अन्य संबंध के द्वारा लक्ष्यार्थ ग्रहण किए जाने पर शुद्धा लक्षणा होती है"[4] आलोच्य कृति में शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं यथा ---

---

1. डा० मधु शर्मा : पद्माकर की काव्य-भाषा, पृ० 202
2. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 39
3. वही ,छंद संख्या 32
4. मधु शर्मा : पद्माकर की काव्य भाषा, पृ० 204

मोह प्रोहि नृप राक्षसा, लख विवेक सुर भूप ।
याह भूप को राज तब, जब मन परै गु कूप ।।[1]

मोह का राक्षसी प्रवृत्ति का नृप होना और विवेक का देवता प्रवृत्ति का राजा होने में सादृश्य संबंध का अभाव है , परन्तु किसी अन्य संबंध के कारण लक्ष्यार्थ यह है कि मोह के वश में होकर जीव का मन कुएं में पड़ता है अर्थात विनाश को प्राप्त होता है । ऐसा ही एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है जिसमें स्त्री के रूप पर बाज का आरोप और पुरुष के रूप पर पक्षी के रूप का आरोप होने के कारण सादृश्य संबंध का अभाव है और "स्याबा स्याबा" से लक्ष्यार्थ है कि सच्चा मर्द प्रशंसा के योग्य है यथा——

तो लेचानी ते सुनो, मरद पुरिस्रा जो बाघ ।
स्याबा स्याबा ताहि को, वही मरद है साघ ।।[2]

6.1.2.3 व्यंजना

जब वाच्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ के अतिरिक्त कोई अन्य अर्थ ग्रहण किया जाए, वहाँ व्यंजना शब्द शक्ति होती है । हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार—— "अंजन" शब्द में "वि" उपसर्ग लगाने से "व्यंजन" शब्द निर्मित होता है, अतः व्यंजन का अर्थ हुआ "विशेष प्रकार का अंजन" । आँख में लगा हुआ अंजन जिस प्रकार दृष्टि दोष को दूर कर उसे निर्मल बना देता है, उसी प्रकार व्यंजना-शक्ति शब्द के मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ को पीछे छोड़ती हुई उसके मूल में छिपे हुए अकथित अर्थ को द्योतित करती है । अभिधा और लक्षणा अपने अर्थ का बोध कराकर जब विरत हो जाती हैं, तब जिस शब्द शक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ ज्ञात होता है, उसे व्यंजना शक्ति अथवा व्यापार कहते हैं । व्यंग्यार्थ के लिए ध्वन्यार्थ, सूच्यार्थ, आक्षेपार्थ, प्रतीयमानार्थ आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं "।[3] डा० सुरेन्द्र माथुर ने आचार्य विश्वनाथ के मत

---

1. कर्म सिंह निर्मला: हरि अष्टुष्ट सतसैया, छंद संख्या 105
2. वही ,छंद संख्या 136
3. डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 742.

का समर्थन करते हुए कहा है —— अभिधा और लक्षणा के अपना अपना कार्य समाप्त कर चुकने पर जिस अन्य शक्ति के सहारे अभिप्रेत अर्थ का बोध होता है, उसी को काव्य शास्त्रीय भाषा में व्यंजना कहा गया है।"[1] व्यंजना के संबंध में डा० राज बुद्धिराजा का कथन है ——"अपनी कल्पना शक्ति का नियोजन करके कवि ऐसे शब्दों की सृष्टि करता है जिनको सुनकर सहृदय को केवल अर्थ का बोध ही नहीं होता वरन् उसके मन में एक अतिरिक्त कल्पना भी जग जाती है जो परिणति की अवस्था में पहुँच कर रस संवेदन में विशेष रूप से सहायक होती है। शब्द की अतिरिक्त कल्पना जगाने वाली शक्ति ही व्यंजना है।"[2] डा० त्रिपाठी और डा० गुप्त के अनुसार —— "व्यंजना का अर्थ है विद्यमान वस्तु को प्रकाशित करना। जैसे कमरे में रखे घड़े की व्यंजना दीपक से होती है, उसी प्रकार विद्यमान प्रयोजन को जो शब्द का व्यापार व्यक्त कर देता है, उसे व्यंजना कहते हैं।"[3] व्यंजना शक्ति के मुख्यत: दो भेद हैं —— शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना।

6.1.2.3.1 (क) शाब्दी व्यंजना

शाब्दी व्यंजना में व्यंग्यार्थ का सम्पूर्ण सौन्दर्य शब्द पर निर्भर करता है। शाब्दी व्यंजना के दो भेद हैं —— अभिधामूला शाब्दी व्यंजना और लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना।

(क) अभिधामूला शाब्दी व्यंजना

"अनेकार्थी शब्दों के एक अर्थ में नियन्त्रित हो जाने के बाद, जिस शक्ति द्वारा उन शब्दों से दूसरा अर्थ ध्वनित होता है, उसे अभिधामूला शाब्दी व्यंजना कहते हैं। अनेकार्थी शब्दों को एक अर्थ में नियन्त्रित करने के 14 कारण बतलाए गए हैं —— संयोग, वियोग, साहचर्य, विरोध,

---

1. डा० सुरेन्द्र माथुर : उन्नीसवीं शती की ब्रज भाषा, पृ0 212
2. डा० राज बुद्धिराजा : देव के काव्य में अभिव्यक्ति विधान, पृ0 66.
3. डा० रामसागर त्रिपाठी और डा० शान्तिस्वरूप गुप्त : बृहत् साहित्यिक निबन्ध, दिल्ली, अशोक प्रकाशन, 1984 ई0 पृ0 161.

अर्थ, प्रकरण, लिंग, अन्यसन्निधि, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, व्यक्ति, तथा स्वर ।"[1] अनेकार्थवाचक शब्द के किसी एक ही अर्थ के साथ प्रसिद्ध संबंध को संयोग कहा जाता है ।[2] आलोच्य कृति में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं । कवि का कथन है ——

> पुहुप बसंती चिकन सिउ, इम सोभत बासंत ।
> मनो पति पीतास्र धर,धर हरि सोभत संत ।।[3]

"पति पीतास्र" के संयोग में "हरि" का अर्थ भगवान कृष्ण (पीताम्बर) लिया जाएगा ।

किसी कार्य के संपादन में किसी के सामर्थ्य के कारण अनेकार्थों में से एक अर्थ का निश्चय किया जाता है, वहाँ भी अभिधामूला शाब्दी व्यंजना होती है । आलोच्य कृति में से उदाहरण द्रष्टव्य है ——

> दादर मौन मोर पिक, भक्त सगल बिललाइ ।
> इनकी तपन बु तपन तब, जब घनस्याम बुझाइ ।।[4]

अनेकार्थी शब्द "घनस्याम" का सामर्थ्य के कारण व्यंग्यार्थ कृष्ण है, बादल नहीं ।

(ख) लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना –

"लक्षणा में शब्द का मुख्यार्थ बाधित है । यह अर्थ-बाधा किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए वक्ता द्वारा जानबूझ कर

[illegible] कृति में [illegible] शाब्दी [illegible] का उदाहरण द्रष्टव्य है ——

> [illegible] को माल ।
> [illegible]

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा: हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 742-743
2. डा० सुरेन्द्र माथुर: उन्नीसवीं शती की ब्रजभाषा, पृ० 213.
3. कर्म सिंह निर्मल, हरि अष्टक सतसैया, छंद संख्या 74.
4. वही ,छंद संख्या 57
5. वही ,छंद संख्या 78

उपस्थित की जाती है । जब कोई व्यक्ति किसी से कह उठता है --- "क्यों सिर खाते हो ?" तब वह भी प्रकार जानता है कि सिर कोई खाने की चीज नहीं है । वह वस्तुतः अपनी झुंझलाहट अथवा खीझ प्रकट करने की दृष्टि से ही इस प्रकार का असंगत प्रयोग करता है---मम्मट का मत है कि न तो अभिधेयार्थ और न लक्ष्यार्थ ही इस प्रयोजन का अर्थ-बोध कराने में समर्थ होते हैं (काव्य प्रकाश: 2:14) । अतः जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिए लक्षणा का अवलम्ब लिया जाता है, उस प्रयोजन की व्यंजना करने वाली शक्ति को लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना कहते हैं ।"[1]

आलोच्य कृति में से लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना का उदाहरण द्रष्टव्य है---

"पावस जावक सों लखो, इंदु बधू की माल ।
जैसे हरि अनुराग करि, हरि जन करनो लाल ।।"[2]

इस दोहे में लक्षणा से पावस ऋतु अनुराग के कारण इन्द्र की वधू के गले की माला बन गई है ।

6.1.2.3.2 आर्थी व्यंजना -

वक्तृ, बोद्धव्य, काकु, वाक्य, वाच्य, अन्यसन्निधि, प्रस्ताव, देश, काल तथा चेष्टा आदि की विलक्षणता के कारण आर्थी व्यंजना व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराती है । आलोच्य कृति में से आर्थी व्यंजना का उदाहरण प्रस्तुत है ---

"भौंह-चाप की चाप जल, सो कटाक्ष इन तीर ।
बिन विचार सब बचे को, जो बच सोई बीर ।।"[3]

इस दोहे में वीर पुरुष में नारी के हावों भावों से बचने की क्षमता के व्यंग्यार्थ की प्रतीति हुई है ।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि कवि ने आलोच्य कृति में शब्द शक्ति के तीनों भेदों का बड़ी कुशलता से प्रयोग किया है, हालांकि आलोच्य कृति में प्रतिपादित विषय दार्शनिकता एवं नैतिकता से संबंधित होने के कारण अभिधात्मक भाषिक प्रयोग का अवकाश सर्वाधिक रहा है ।

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 743
2. कर्म सिंह निर्मल: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 78
3. वही ,छंद संख्या 134.

6.1.3 काव्य दोष विवेचन

दोष काव्य से प्राप्त होने वाले आनंद के मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है, इसलिए काव्य का निर्दोष होना अत्यंत आवश्यक है। डा० मधु शर्मा के अनुसार काव्य में जो उद्वेग उत्पन्न करता है, उसे दोष कहा जाता है।[1] "भरत ने [4 श०ई०] नाट्यशास्त्र में [17:88,94] केवल इतना ही लिखा है कि दोष की स्थिति भावात्मक है, गुण उस का विपर्यय है। भामह [7 श० ई०] ने "काव्यालंकार" में [परि० 4] कहा है कि काव्य में सत्कवि इसका प्रयोग नहीं करते। दण्डी ने [7श०ई०] "काव्यादर्श" में [परि० । दोष निन्दा] सामान्य दोष के विषय में केवल दो बातें कहीं हैं [1] दोष काव्य में विफलता के कारण होते हैं तथा [2] विद्वानों को काव्य में इनका परिहार करना चाहिए।"[2] मुख्यतः काव्य-दोष दो वर्गों में विभाजित किए जाते हैं ---

6.1.3.1 शब्द -दोष

6.1.3.2 अर्थ-दोष

6.1.3.1 शब्द-दोष

"वाक्यार्थ के बोध होने में जो प्रथम दोष प्रतीत होते हैं वे शब्द-दोष हैं। शब्द के दोष [1] पदांश गत [2] पदगत और वाक्यगत होते हैं। मम्मट ने दोष भेद का विवरण परम्परया[3] अपकर्षक दोष भेद अर्थात् पद-दोष से प्रारम्भ किया है।" संस्कृत के विभिन्न आचार्यों ने अनेक प्रकार से शब्द-दोषों का वर्गीकरण किया है। हिन्दी साहित्य कोश में शब्द-दोषों की संख्या 16 तथा वाक्य दोषों की संख्या 21 स्वीकार की गई है।[4]

---

1. डा० मधु शर्मा : पद्माकर की काव्य भाषा, पृ० 234.
2. डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 231
3. वही , पृ० 752
4. वही , पृ० 753

हम अपने इस शोध-प्रबंध में केवल उन्हीं दोषों का विवेचन करेंगे जो आलोच्य कृति में मिलते हैं।

6.1.3.1.1 श्रुतिकटुत्व

इस दोष को श्रुतिविरस अथवा कर्णकटु भी कहा जाता है। मम्मट के अनुसार परुषवर्णता (काव्य प्रकाश : 7:51 पृ0) का दोष है, अर्थात् जहाँ कानों को खटकने वाले शब्दों का प्रयोग किया जाता है वहाँ श्रुतिकटुत्व दोष होता है।[1] आलोच्य कृति में यह काव्य-दोष मिलता है, उदाहरण द्रष्टव्य है----"तपत हाड़ जम दाढ सी, डाढ़ दाढ़ कर चूर।"[2]

6.1.3.1.2 च्युतिसंस्कार

भरत का मत है कि जहाँ पर अशब्द (व्याकरण-अशुद्ध शब्द का प्रयोग) हो, उसे शब्दहीन कहते है (नाट्य शास्त्र: 17:94)। भामह के मत में जहाँ व्याकरण अशुद्ध तथा शिष्ट जन द्वारा अस्वीकृत शब्द का प्रयोग हो, वहाँ यह दोष होता है। दण्डी भी इसे स्वीकार करते हैं। भरत, भामह तथा दण्डी इसे शब्द - हीन नाम से पुकारते हैं। वामन इसे असाधु नाम देते हैं। आचार्य श्रीपति ने इसे "भाषाच्युत" कहा है।[3] इस शब्द दोष के अनेक भेद हैं यथा --- लिंग दोष, वचन दोष, सन्धि दोष, कारक दोष आदि।

6.1.3.1.2.1 लिंग दोष

जहाँ लिंग संबंधी विकार हो, वहाँ लिंग दोष माना जाता है। आलोच्य कृति में इस दोष के अनेक उदाहरण मिलते हैं यथा---

मा'न मा'न दुरजुधन लो, मिज गल अन को गाल।
ताको त्रास न होइ किम, जो तिह हनै उताल।।[4]

---

1. डा0 धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 753
2. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 56
3. डा0 धीरेन्द्र वर्मा: हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 753
4. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 199

"मान" पुल्लिंग है,परन्तु उसके साथ "ताकी" स्त्रीलिंग शब्द का प्रयोग हुआ है ।

"जो नर हुइ चित नहि लखे, वह किमहूँ नर होइ ।"[1]

इस दोहे में "नर" शब्द पुल्लिंग है, उसके साथ "हुइ" स्त्रीलिंग शब्द प्रयुक्त हुआ है, जबकि "हुआ" या "हवै" शब्द का प्रयोग अपेक्षित है ।

6.1.3.1.2.2 वचन दोष

वचन संबंधी अशुद्धियाँ वचन-दोष कहलाती है । डा0 मधु शर्मा के अनुसार -- "मैं तथा तू के लिए हमतथा तुम का प्रयोग करना व्याकरण-विरुद्ध है, परन्तु आदर एवं अपनत्व प्रदर्शन के लिए इस प्रकार के प्रयोग प्रचलित है, अतएव वर्तमान समय में इसे वचन दोष नहीं कहा जा सकता ।"[2] आलोच्य कृति में से उदाहरण प्रस्तुत है ----

"सुन कुसंग के बचन को, नाग अचंभा होइ ।
हमरि डंक ते बचे बहु, याते बचे न कोइ ।।"[3]

"नाग" शब्द एक वचन है इसके साथ "मेरे" एक वचन का प्रयोग होना चाहिए था, जबकि कवि ने "हमरि" बहुवचन का प्रयोग किया है । यह संभवतः ब्रज-भाषा की प्रकृति के कारण हुआ है ।

6.1.3.1.2.3 कारक दोष

कारक के प्रयोग में विद्यमान त्रुटि कारक दोष का कारण बनती है । आलोच्य कृति में इस प्रकार के दोष भी मिलते हैं, उदाहरणार्थ दोहे द्रष्टव्य है ---

"कतक दीप को दीप को, करे दीप हरि जोइ ।
जो ताही को दीप लख,वही दीपमय होइ ।।"[4]

---

1. कर्म सिंह निर्मला:हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 323
2. डा0 मधु शर्मा : पद्माकर की काव्य भाषा, पृ0 235
3. कर्म सिंह निर्मला:हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 208
4. वही ,छंद संख्या 64

"कतक दीप की दीप" मे "की" के स्थान पर "के" का प्रयोग होना चाहिए था।

"कब या दुख मै ते उडौं, कब निज निलय मु लीन।"[1]

इस दोहे में "ते" के स्थान पर "से" कारक का प्रयोग उचित था।

6.1.3.1.2.4 सन्धि दोष

आलोच्य कृति में सन्धि संबंधी दोषों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत है ---सनमुख[2] के स्थान पर सम्मुख, अच्चल[3] के स्थान पर अचल तथा जिवनमुकति[4] के स्थान पर जीवनमुक्ति शब्द का प्रयोग उचित था।

6.1.3.1.2.5 उपसर्ग दोष

आप्रोख[5] के स्थान पर "अप्रोख" का प्रयोग उपसर्ग दोष की ओर संकेत करता है।

6.1.3.1.3 असमर्थ दोष

आचार्य मम्मट के अनुसार यह दोष वहाँ होता है जहाँ यद्यपि शब्द का अर्थ तो होता है, परन्तु उस अर्थ के बोध कराने की शक्ति उस शब्द में नही होती।[6] आलोच्य कृति में से असमर्थ दोष का उदाहरण प्रस्तुत है -

"कहूँ सुछरिया हरि भयो, कहूँ असरिया होइ।"[7]

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 99
2. वही , छंद संख्या 405
3. वही , छंद संख्या 658
4. वही , छंद संख्या 690
5. वही ,छंद संख्या 610
6. डा0 धीरेन्द्र वर्मा:हिन्दी साहित्य कोश पृ0 754
7. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 15

क्षर का अर्थ है नाशमान । "सुछरिया" शब्द का अर्थ तो है, परन्तु यह शब्द अपने अर्थ का बोध कराने में असमर्थ है । "सुछरिया" के स्थान पर "छरिया" अर्थात् "क्षर" शब्द अपने अर्थ का बोध कराने में समर्थ है ।

6.1.3.1.4 निरर्थक दोष

जब कवि छंद-पूर्ति हेतु किसी निष्प्रयोजन शब्द का प्रयोग करता है, तो वह निरर्थक दोष होता है । वास्तव में निष्प्रयोजन शब्दों का छंद में कोई महत्व नहीं होता है । आलोच्य कृति में यह दोष अनेक स्थलों पर पाया गया है यथा —

"झूठो है रे झूठ जग, साचे ते सच सोइ ।[1]

"रे" शब्द के कारण निरर्थक दोष है ।

अन्य दान सो दान तिम, कलिजुग ही सो जान ।।[2]

यही "ही" शब्द निरर्थक दोष का कारण है । इसी प्रकार "ई"[3] "ही"[4] आदि में भी यह दोष मिलता है ।

6.1.3.1.5 अप्रतीत दोष

जब कवि पारिभाषिक शब्दों को अपनी कृति में प्रयुक्त करता है, तो साधारण पाठकों के लिए उसका अर्थ ज्ञात करना कठिन हो जाता है, वहाँ अप्रतीत दोष कहा जा सकता है । आचार्य वामन ने इसे अप्रतीत नाम देकर कहा है कि जहाँ अप्रचलित पारिभाषिक शब्द का प्रयोग किया जाता है, वहाँ यह दोष होता है ।[5] आलोच्य कृति में से उदाहरण द्रष्टव्य है ——

---

1. कर्म सिंह निर्मला:हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 89
2. वही ,छंद संख्या 223
3. वही ,छंद संख्या 118
4. वही ,छंद संख्या 461
5. डा० धीरेन्द्र वर्मा: हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 756.

"मछ्छ कछ्छ चिद हौ भयो, मार रछ्छ धर भार ।"[1]

साधारण पाठक को "मछ्छ" से मत्स्यवतार और "कछ्छ" से कूर्मावतार का बोध नहीं होता, अतः यहाँ अप्रतीत दोष विद्यमान है । "चिद" शब्द का प्रयोग "प्रभु" के अर्थ में हुआ है, जो इसी प्रकार के दोष को सूचित करता है ।

6.1.3.1.6 क्लिष्ट दोष

क्लिष्ट को भरत ने गूढ़ार्थ नाम दिया है [नाट्य: 17:89], जिसका एक अंश नेयार्थ में आता है । क्लिष्ट वह दोष है, जिसे किसी पद का विलम्ब से अपने अर्थ का प्रत्यायन करना कहा जाता है [काव्य प्रकाश : 7: 51 वृ, सा0द0 : 7:4 वृ0] अर्थात् प्रतीत में बाधा होने के कारण कष्ट हो तथा जहाँ अर्थ विलम्ब से ध्यान में चढ़े ।[2] डा0सुरेन्द्र माथुर ने इस दोष की सरल सी परिभाषा की है ---"जहाँ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया हो, जिनके अर्थ का बोध कठिनता से हो वहाँ यह दोष माना जाता है ।"[3] आलोच्य कृति में से उदाहरण प्रस्तुत है ---

"हरि अद्रिष्ट सतसय भन्यो, अंग्रिसर कर वास ।
नैने नभ ग्रह आतमा, संमत शुभ नभ मास ।।"[4]

इस दोहे में नैन 2, नभ शून्य [0] , ग्रह 9 तथा आतमा । अर्थ का परिचायक हैं । संक्षेप में संवत् 1902 की ओर कवि का संकेत है ।

6.1.3.1.7 अधिकपदता दोष

अनावश्यक पद अथवा शब्द का प्रयोग, अधिकपदता दोष का कारण है । यह दोष काव्य में प्रायः मिल जाता है । आलोच्य कृति में से उदाहरणार्थ दोहा प्रस्तुत है ---

---

1. कर्म सिंह निर्मल:हरि अद्रुष्ट सतसैया, छंद संख्या 7
2. डा0धीरेन्द्र वर्मा:हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 755
3. डा0 सुरेन्द्र माथुर : उन्नीसवी शती की ब्रजभाषा पृ0 264.
4. कर्म सिंह निर्मल:हरि अद्रुष्ट सतसैया,छंद संख्या 70।

"झूठो है रे झूठ जग, साचे ते सच सोइ ।
सोइ साचो साच मन, मन करि मन मह जोई ।।[1]
इस दोहे में 'झूठ' अनावश्यक पद हैं ।

6.1.3.1.8 मुहावरा दोष -

आधुनिक विवेचकों द्वारा जोड़ा गया एक भेद है। यह दोष वहाँ होता है जहाँ मुहावरों का अशुद्ध प्रयोग किया जाता है ।[2] आलोच्य कृति में यह दोष भी विद्यमान है, उदाहरण दृष्टव्य है------

"रीझ दीजिए मुकति फल खिज, कह धर नहि फेर ।"[3]

धर अर्थात् "धड़ फेरना" की अपेक्षा "मुहँ फेरना" मुहावरे का शुद्ध रूप है ।

6.1.3.2 अर्थ-दोष

शब्दों के अर्थों से संबंधित दोषों का "अर्थ-दोष" के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है । "साहित्यदर्पणकार ने "काव्य प्रकाश" में वर्णित अर्थ-दोष की विस्तृत व्याख्या की है । इन आचार्यों का मत है कि जिससे मुख्य अर्थ का अपकर्ष हो, वह दोष है । मूल रूप से रस और गौण रूप में शब्द और अर्थ के अपकर्ष द्वारा काव्य का अपकार करने वाले तत्व दोष कहलाते हैं । मम्मट के अर्थ-दोष की संख्या 23 मानी है । विश्वनाथ ने भी इसे स्वीकार किया है ।"[4] आलोच्य कृति में इनमें से कुछ दोष विद्यमान है, जिनका विवेचन किया जाएगा ।

6.1.3.2.1 अपुष्ट दोष

कुछ आचार्य इसे अपुष्टार्थ नाम से पुकारते हैं । मम्मट की दृष्टि में अपुष्ट रूप अर्थ-दोष में रुद्रट द्वारा कथित "असम्बद्ध" तथा

---

1. कर्म सिंह निर्मला:हरि अकुष्ट सतसैया,छंद संख्या 89
2. डा0 धीरेन्द्र वर्मा: हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 759
3. कर्म सिंह निर्मला:हरि अकुष्ट सतसैया,छंद संख्या 42
4. डा0 धीरेन्द्र वर्मा: हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 52

"तद्वान" दोनों अर्थ-दोष अन्तर्भूत हो जाते हैं। वस्तुत रुद्रट निर्दिष्ट इन दोनों दोषों के विवेक से ही मम्मट ने "अपुष्टत्व" रूप एक अर्थ-दोष का नामकरण तथा लक्षण-निरूपण किया जोकि सर्वथा युक्तियुक्त है। `काव्य प्रकाश : 7:57 वृ0।[1] अपुष्ट दोष के संबंध में डा0 सुरेन्द्र माथुर का मत है ---- "जहाँ प्रतिपाद्य वस्तु के महत्व का वर्द्धक अर्थ न हो और उसके बिना भी कोई अर्थ क्षति न हो, वहाँ यह दोष होता है"।[2] आलोच्य कृति में से इस दोष का उदाहरण प्रस्तुत है ----

"हरि चित विभु नभ सो लखो, लखो वेख मे नाँहि।"[3]

"नभ" की व्यापकता स्वतः सिद्ध है, इसलिए "विभु" अर्थात् व्यापक विशेषण शब्द का प्रयोग व्यर्थ है।

अपुष्ट दोष का एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है -----

"हरि अनंत तिह अंत नहि, भक्त अनंत अनंत।"[4]

यहाँ "अनंत शब्द की अन्तरहितता स्वतः सिद्ध है, अतः "अन्त नहि" शब्दों का प्रयोग व्यर्थ है।

6.1.3.2.2 पुनरुक्त दोष

एक शब्द का वाक्य द्वारा अर्थ-विशेष का बोध हो जाने पर भी उसी अर्थ वाले दूसरे शब्द या वाक्य द्वारा उसी अर्थ का प्रतिपादन करना पुनरुक्त दोष कहलाता है।[5] भिन्न भिन्न शब्द-भंगिमा से एक ही अर्थ का दुहराना पुनरुक्त दोष है।[6] आलोच्य काव्य-कृति में से इस दोष का उदाहरण द्रष्टव्य है----

"मन भोरो गोरो नहो, दोरे होरो और।
अति ही होरो, पुन लखो, लखे न ठौर कुठौर।"[7]

---

1. डा0 धीरेन्द्र वर्मा: हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 52.
2. डा0 सुरेन्द्र माथुर : उन्नीसवीं शती की ब्रजभाषा, पृ0 265
3. कर्म सिंह निर्मला:हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 2.
4. वही , छंद संख्या 3
5. डा0 धीरेन्द्र वर्मा: हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 53
6. डा0 सुरेन्द्र माथुर:उन्नीसवी शती का ब्रजभाषा, पृ0 266
7. कर्म सिंह निर्मला, हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 103

"होरा" जिसका अर्थ है कोलाहल, की दोशब्द भंगिमाएँ —— "होरो" और "होरो" एक ही अर्थ को दोहराती हैं अतः यहाँ पुनरुक्त दोष कहा जा सकता है ।

6.1.3.2.3 प्रसिद्धिविरुद्ध दोष

आचार्य मम्मट के मतानुसार लोकप्रसिद्धि अथवा कविप्रसिद्धि अर्थ के विरुद्ध अर्थ के उपनिबन्धन दोष को कहते हैं (काव्य प्रकाश : 7:57 वृ) अर्थात् जहाँ पर लोक में अथवा कवियों में जो बात प्रसिद्ध हो उसके विपरीत कथन किया जाए, वहाँ पर यह दोष होता है ।[1] साधारण शब्दों में प्रसिद्धि के विपरीत वर्णन प्रसिद्धि विरुद्ध दोष कहा जा सकता है । आलोच्य कृति में यह दोष मिलता है । उदाहरणार्थ एक दोहा प्रस्तुत है ——

"मन सुर सर सरसा गनो, हर को घन सो जोइ ।"
मुकति स्वाति जामे लखो, पिक हुलसहि तां मोह ।।"[2]

स्वाति नक्षत्र के साथ सीपी का संबंध लोक प्रसिद्ध एवं काव्य प्रसिद्ध है । कवि ने यहाँ "पिक" अर्थात् कोयल से इसका संबंध स्थापित करने का प्रयत्न किया है । अतः प्रसिद्धिविरुद्ध दोष विद्यमान है ।

6.1.3.2.4 कष्टार्थकष्टत्व दोष

जिस काव्य में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ का ज्ञान कठिनता से हो, वहाँ कष्टार्थ कष्टत्व दोष होता है । "श्रीपति ने इस दोष को दुष्ट वाक्य कहा है । मम्मट के अनुसार यह दोष वहाँ होता है जहाँ प्रतीत होने वाला अर्थ उस अर्थ से भिन्न होता है जो प्रयुक्त अक्षरों से निकलता हो । जयदेव का कथन है जहाँ अर्थ शब्दों में रहता हुआ भी न रहते हुए के समान हो और इसी कारण स्पष्ट अर्थ की प्रतीति कराने में असमर्थ हो, वहाँ कष्टार्थ दोष होता है"[3] आलोच्य कृति में यह दोष अनेक स्थलों पर मिलता है ।

---

1. डा० धीरेन्द्र वर्मा: हिन्दी साहित्य कोश, पृ054
2. कर्म सिंह निर्मल: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 43
3. डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 53

उदाहरणार्थ कुछ दोहे प्रस्तुत हैं ---

"पंच कलेस के वेस भ्रम, मै बहु सहे कलेस ।"[1]

"पंच कलेस" में अर्थ विद्यमान है, परन्तु कष्ट से इसमें छिपे हुए अर्थ {योगशास्त्र के अनुसार विद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश} को ज्ञात किया जा सकता है । अतः कष्टार्थ कष्टत्व दोष विद्यमान है ।

"खट बिकार तन मै लखो, लख पुन निंदा क कूप ।"[2]

"खट बिकार" अर्थात उत्पत्ति, शरीरवृद्धि, बालापन, प्रौढ़ता-वृद्धता और मृत्यु में कष्टार्थ कष्टत्व दोष है---

ध्यातव्य है कि कवि कर्म सिंह निर्मला का पूरा ध्यान सर्वथा निर्दोष काव्यकृति की रचना पर केन्द्रित नहीं था, अपितु कविता उनके लिए साधन थी, साध्य तो अध्यात्म था । यही कारण है कि उनके काव्य में ये दोष आ गए हैं, जो नगण्य हैं ।

6.1.4 मुहावरे और लोकोक्तियाँ :-

किसी भाषा विशेष में प्रचलित पद अथवा वाक्य जिसका अर्थ शब्दों के प्रत्यक्ष अथवा शाब्दिक अर्थ से भिन्न तथा विलक्षण हो, वही मुहावरा कहलाता है ।[3] डा० बदरीनाथ कपूर के अनुसार--- "मुहावरा कुछ शब्द का ऐसा बहुप्रचलित गठजोड़ है जो इकाई के रूप में प्रयुक्त होता और सम्मिलित शब्दों के सामूहिक अभिप्रायार्थ से भिन्न किसी प्रभावपूर्ण अर्थ की सृष्टि करता है।"[4] डा० महेन्द्र कुमार का इस संबंध में कथन है--------- "मुहावरे और कहावतें प्रत्येक जीवित भाषा की अपनी विशेषता हुआ करती है । यद्यपि इनके मूल में लक्षणा-शक्ति काम करती है, किन्तु मुहावरे जहाँ भाषा में चलतापन लाते हैं, वहाँ कहावतों से उसमें प्रभावकता आती है ।[5]"

---

1. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदुष्ट सतसैया, छंद संख्या 236
2. वही , छंद संख्या 246
3. नवल जी: नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ० 1115.
4. डा० बदरीनाथ कपूर: लोकभारती मुहावरा कोश, इलाहाबाद लोकभारती प्रकाशन, 1975 ई० पृ० 5.
5. डा० महेन्द्र कुमार : मतिराम कवि और आचार्य, नई दिल्ली, भारती साहित्य मन्दिर, 1960 ई. पृ० 239

"मुहावरे रूढ़िमूल लक्षणाओं के घिसे रूप है",[1] मानते हुए डा० मनोहरलाल गौड़ ने मुहावरों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है----"मुहावरे जीवित भाषा के प्राण होते हैं । इनके द्वारा उसकी सजीवता की वृद्धि होती है । लक्षक वाक्यों का अर्थ तीक्ष्ण बुद्धिगम्य होता है,क्योंकि लक्ष्यार्थ प्रसिद्ध नहीं होता । वाचक वाक्यों मे किसी प्रकार की चमत्कृति या अभिव्यंजन की व्यापकता नहीं होती । मुहावरेदार वाक्यों में वाचक वाक्यों की अपेक्षा चमत्कार और अर्थद्योतन की विस्तृत भूमि तो अधिक होती है पर लक्षणाओं की सी दुरूहताइनमें नहीं होती । इसलिए इनका सर्वसाधारण के लिए प्रयोग किया जा सकता है।"[2] डा० राज बुद्धिराजा के मतानुसार---- "जीवन की लयबद्ध क्रमबद्ध गति में मानव के सुरीले स्वर का नाम ही मुहावरे हैं । अतः ये मानव के दैनिक जीवन तथा पारिवेशिक तत्वों के प्रतिक्रिया स्वरूप हैं । वे जीवन का अश्रु और हास, राग और विराग, हर्ष और पीड़ा का मूलभूत तत्व का द्योतन करते हैं । लोकोक्तियाँ जनजीवन का वेग और गरिमा हैं, जनमानस को गीत और स्पन्दन प्रदान करती हैं । लोकोक्तियाँ और मुहावरे भाषा को जीवंत करते हैं, वाणी प्रदान करते हैं ।"[3]

आलोच्य कृति में भी कवि ने अपनी भाषा को सजीव और सशक्त बनाने के लिए मुहावरों का खुलकर प्रयोग किया है । उदाहरण दृष्टव्य है---
आदि अंत पाना -"सम तो साचो साच भ्रम,आदि अंत मम जान ।"[4]
कुएं में गिरना- "जो इन मीठो झुठ कहे, सोई पर इह कूप।"[5]

---

1. डा० मनोहर लाल गौड़ :घनानंद और स्वच्छंद काव्यधारा, काशी,नागरी प्रचारिणी सभा, 1958 ई० ,पृ० 130
2 डा०मनोहर लाल गौड़ :घनानंद और स्वच्छंद काव्यधारा,पृ० 131.
3 डा० राज बुद्धिराजा:देव के काव्य में अभिव्यक्ति-विधान,पृ०203
4 धर्म सिंह निर्मल:हरि अदृष्ट सतसैया,छंद संख्या 679
5 वही ,छंद संख्या 280

"-जो यामे नर परेगो, सोई परगो कूप ।"[1]

"-सदा रूप को लखे सो, सो किम पर पुन कूप ।"[2]

"-जामे ही ऐ होइगो ,पर सोई दुख कूप ।"[3]

गति होना-"सम मन जल को गति लखो, चिद नभ मो किम होइ ।"[4]

"-मन जग तेरी गती जो, गति होई सो मान ।"[5]

गत होना "-ते हूं गत अब होइगो, मै जान्यो ए जान ।"[6]

घाट लगना "-जो यामे गन ठाट ठट, ताह लमे किम घाट ।"[7]

"-जो नह वाको चटेगो, सो कि काल ते घाट ।"[8]

दर पर आना-"नाथ नाथ के अन्य दर, तुमरे दर पर आइ"।[9]

दूर होना-"तब लग सुध अभ्यास कर, पुना होइ सो दूर ।"[10]

"ब्रित चिद उपलखयत भन्या, हुइ सोई जब दूर ।"[11]

---

1. कर्म सिंह निर्मला:हरि अद्रुष्ट सतसैया,छंद संख्या 297
2. वही ,छंद संख्या 434
3. वही ,छंद संख्या 509
4. वही ,छंद संख्या 228
5. वही ,छंद संख्या 670
6. वही ,छंद संख्या 670
7. वही ,छंद संख्या 291
8. वही ,छंद संख्या 296
9. वही ,छंद संख्या 452
10. वही ,छंद संख्या 536
11. वही ,छंद संख्या 622

दिल में बसना- "जाँ के हीये वह बसे, किम अर गाँन सुधीर ।"[1]

"-गनो ग्यान अब ही सुनो, तिह उर बस धर आब ।"[2]

देह त्यागना- "तब ही होवै मुकति गन, जहँ कहँ तज के देह ।"[3]

"-जब ही त्यागे देह को, जह कह तब सुन मीत ।"[4]

"-जहँ कहँ तनु को त्याग तग, हुइ सोई वडभाग ।"[5]

धक्का लगना- "जिह गुर की परपँन गह, लगे न धक्का कोइ ।"[6]

धूम मचना- "एही बिब मिल के बली ,तीन लोक कर धूम ।"[7]

नाच नचाना- "ताँह छते मै नाच नच,अब भव मै सुख माँन ।"[8]

नीर क्षीर होना- "छीर नीरँ जिउ मिली गन, गन बानी जग जोइ ।

हुइ मराल गहि ताँहि जो, सावधान भव सोइ ।।"[9]

पार उतरना- "जाहि सुने ही ते सुनो, भवनिधि पार परार ।"[10]

जड़ काटना- "ग्यान परस जिउ काटयो, या जग तर को मूल ।"[11]

"-कहु कैसे वह जगेगी, हन्यो मूल उन कोइ ।"[12]

ठान लेना- "तस कर सुत के दुख गनँ ,जिम पित निज मो ठाँन ।"[13]

"-चिद जग मो आनँद कर,कै चिद मो जग ठाँन ।"[14]

---

1. कर्म सिंह निर्मला:हार अदृष्ट सतसैया,छंद संख्या 167

2 वही ,छंद संख्या 393

3 वही ,छंद संख्या 697

4 वही ,छंद संख्या 698

5 वही ,छंद संख्या 699

6 वही ,छंद संख्या 446

7 वही ,छंद संख्या 195

8 वही ,छंद संख्या 668

9 वही ,छंद संख्या 421

10 वही ,छंद संख्या 37

11 वही ,छंद संख्या 674

12 वही ,छंद संख्या 669

13 वही ,छंद संख्या 512

14 वही ,छंद संख्या 583

ठौर कुठौर -"अति ही हौरो पुन लखो, लखे न ठौर कुठौर ।"[1]

डंक मारना- "हमरि डंक ते बचे बहु, याते बचे न कोइ ।"[2]

डंका बजना -"बाजो डंका काल को, संका यामे नांहि ।"[3]

डोलना - "डोलत डोलत डोल जग, इम डोले सो जानि ।"[4]

-"ठगबाजी सौ जग बन्यो, जो लख चित्त डुलाइ ।"[5]

तीर लगना-"एतौ तोकउ तजेगो, लगेगु जब जम तीर ।"[6]

दिन दूना होना -"धूमकेत सौ कलिजुग, दिन दिन दूना होइ ।"[7]

पैर खींच लेना -"तल ते पग को खैंच करि, नावै नरक मझार ।"[8]

पैर चूमना - "जो मारे मद लोभ को हउ तिह के पग चूम ।"[9]

पैर की जंजीर - "गन बरनाश्रम धरम के, सो पग मो जंजीर ।"[10]

"-बरनाश्रम के धरम जो, सोइ परम जंजीर ।
मो पग मो अब सो नही, गुर कर्यो मुहि बीर ।"[11]

---

1. कर्म सिंह निर्मला; हरि अकृष्ट सतसैया, छंद संख्या 103
2 वही ,छंद संख्या 208
3 वही ,छंद संख्या 272
4 वही ,छंद संख्या 125
5 वही ,छंद संख्या 235
6 वही ,छंद संख्या 265
7 वही ,छंद संख्या 217
8 वही ,छंद संख्या 193
9 वही ,छंद संख्या 195
10 वही ,छंद संख्या 455
11 वही ,छंद संख्या 660
~~12 वही ,छंद संख्या 273~~

बात बनना- "कभी काल के बात इम, देव दत्त ही खात ।"[1]

बोरा जाना- "निंदा ताको नाम है, कर दै गन को बोर ।"[2]

-"उत्तम करमो के वस्त हुइ, जिय इमे जग बोर ।"[3]

- "या बिन कोई और गन, गनिये तोई बोर ।"[4]

भाग जाना- "याते भव ताति नस्यो, कहु किम तिस्टे लोइ ।"[5]

- "जो यां ते भाग्यो चहे, मारे ताको पेट ।"[6]

भार उतरना - "भार रछ्छ धर भार हरि, [illegible] ताह धार भव पार ।"[7]

भार अपने ऊपर लेना- "यां मो रूप्यो द्रिस्टांत इक, अन कुर महुर ~~xxxx~~ सिर आन ।"[8]

भोग पड़ना- "तो चित द्रिढं मम अब लख्यो, पर्यो द्रिग को भोग ।"[9]

मन अटकना- "मानो मो मन जा लगी, अट्यो जगत के माह ।"[10]

मन मे ठानना - "ताति धोवै पाप रज, पुनि मन हार मे ठांन ।"[11]

मन लगाना- "गाड निहार निहार कर, हरि सनेह मन लाइ ।"[12]

रंग भरना- "भरयु तु भरताह भर्यो जग, याति रंगा रंग ।"[13]

रीझ जाना - "रीझ दीजिए मुकति फल, फिर वह धर नहि फेर ।"[14]

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अकुष्ट सतसैया, छंद संख्या 273
2. वही, छंद संख्या 165
3. वही, छंद संख्या 441
4. वही, छंद संख्या 673
5. वही, छंद संख्या 46
6. वही, छंद संख्या 270
7. वही, छंद संख्या 87
8. वही, छंद संख्या 511
9. वही, छंद संख्या 607
10. वही, छंद संख्या 288
11. वही, छंद संख्या 30
12. वही, छंद संख्या 69
13. वही, छंद संख्या 426
14. वही, छंद संख्या 42

रसातल जाना- "चब्दो पाप को नर सुनो, ठीक रसातल जाइ ।"[1]

लाल होना- "जा जा परि सोई परै, सुई लाल हुइ जाइ ।"[2]

लेखा देना - "लेखा तो सब देत हैं, साहब के दरबार ।"[3]

वश में होना - "चंचल के जिम बस पर्यो, होइ म्रिग्ग उदास ।"[4]

स्वांग भरना - "हरि त्रिय मै नट स्वांग धर, लख चौरासी बेर ।"[5]

समझ लेना- "जा अग्यानि ते है भयो, तिह समुझो मन माहि ।"[6]

सिद्ध करना - "बिनु चिद त्रिकुटी सिध्ध नहि, क्षि सिध्ध मुनीयो मान ।"[7]

सिर खाना- "या ते डाइन जानिये, जा सिर खावै मूर ।"[8]

हाथ जोड़ना - "नर अठीक आगे सुनो, कर जोरै नर ठीक ।"[9]

~~[illegible]~~

हाथ पकड़ना - "मह अनाथ को नाथ हरि, जो नहि गह मो हाथ ।"[10]

- "मम अनाथ को हाथ गहि, स्री गुर तुम मम नाथ ।"[11]

- "स्री गुर तुम बिन को गहे, या भव मो मो हाथ ।"[12]

- "इम गुर मुझ को तारिये, गह कै भव मो हाथ ।"[13]

---

1. कर्म सिंह निर्मला; हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 184
2. वही, छंद संख्या 73
3. वही, छंद संख्या 183
4. वही, छंद संख्या 384
5. वही, छंद संख्या 42
6. वही, छंद संख्या 494
7. वही, छंद संख्या 21
8. वही, छंद संख्या 146
9. वही, छंद संख्या 142
10. वही, छंद संख्या 94
11. वही, छंद संख्या 448
12. वही, छंद संख्या 449
13. वही, छंद संख्या 450

हरा होना -"चेत चेत हरि चेत जो, हरि सो हरिआ होइ।"[1]

हाय हाय मचना -"हा हा दुख मै जो करे, जो सुख मै हुइ ढीठ।"[2]

-"करे जो हा हा दुख मै, जो वह जग सुख चीत।"[3]

हँसी होना-"मम ही जग गन को हसौं, हस मिममम को कोइ।"[4]

आलोच्य कृति में लोकोक्तियों का प्रयोग प्रायः कम ही हुआ।

6.1.5. **अलंकार**

"अलंकार" शब्द संस्कृत की "अलम्" धातु से निर्मित है जिसका अर्थ है भूषण। जिसकी सहायता से अलंकरण होता है, वही अलंकार होता है। "साहित्य में, शब्दों और उनके अर्थों में अनियमित रूप से रहने वाला वह तत्व या धर्म जिसके कारण, किसी व्यंग्यार्थ की प्रतीति के बिना भी, शब्दों की अनोखी विन्यास-शैली से ही, किसी कथन के व्यंग्यार्थ में कुछ विशेष चमत्कार रमणीयता या शोभा आ जाती है,"[5] अलंकार कहलाता है। आचार्य दण्डी के अनुसार काव्य की शोभा प्रदान करने वाले धर्मों को अलंकार कहते है।[6] आचार्य विश्वनाथ ने अलंकारों को शब्दार्थ का अस्थिर धर्म माना है[7]। सारांश में काव्य के अन्तर्गत आने वाले शब्द और अर्थ की वह अकृत्रिम युक्ति जो काव्य की शोभा बढ़ाने में सहायक होती है, अलंकार कही जा सकती है। अलंकारों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए श्री मुरली मनोहर

---

1. कर्म सिंह निर्मला:हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 51
2. वही, छंद संख्या 389
3. वही, छंद संख्या 392
4. वही, छंद संख्या 667
5. राम चन्द्र वर्मा: मानक हिन्दी कोश (पहला खंड) प्रयाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1962 ई0, पृ0 186
6. "काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान्प्रचक्षते"
   आचार्य दण्डी:काव्यादर्श दिल्ली, ओरिएंटल बुक डिपो, 1958 ई0 पृ0 44.
7. शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः ।
   रसादीनुपकुर्वन्तो ऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत् ।।
   आचार्य विश्वनाथ: साहित्य दर्पण, दिल्ली, मोती लाल बनारसीदास, 1956 ई0, 10-1

प्रसाद सिंह ने कहा है ---- "तीव्र जीवनानुभूति और निविड़ भावदशा के विशेष कोण को जब तक पाठकों की आँखों के आगे उपस्थित नहीं किया जाता, कविता का काम पूरा नहीं होता । इसलिए कविता में इन्द्रिय"-संवेदनों, भावों और विचारों को स्वमय किया जाता है । अलंकार तो इन भावदशाओं के मुँहफट दृश्य की तरह होते हैं । अभिव्यक्ति की शक्ति से सर्वथा मुखर बने रहने में ही अलंकारों की सार्थकता है ।"[1]

अलंकारों के प्रमुख दो भेद होते हैं -शब्दालंकार और अर्थालंकार । कवि ने आलोच्य कृति में अभिव्यक्त अपने भावों को सुन्दर बनाने के लिए ~~कहीं और सुन्दर [illegible]~~ अलंकारों का आश्रय लिया है । हरि अदृष्ट सतसैया में प्रयुक्त अलंकारों को भी दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है ---

6.1.5.1 शब्दालंकार

6.1.5.2 अर्थालंकार

6.1.5.1 शब्दालंकार

शब्दालंकारों में विशिष्ट वर्णों अथवा शब्दों के संयोजना द्वारा काव्य में सौन्दर्य उत्पन्न किया जाता है । शब्दालंकार का संबंध भाषा के बाह्य रूप से होता है । - "नालंदा विशाल शब्दसागर के अनुसार--- "काव्य में वह अलंकार जिसमें प्रयुक्त होने वाले शब्दों से चमत्कार उत्पन्न हो, उनके स्थान पर उनके पर्याय रखने से वह चमत्कार न रहे / शब्दालंकार होता है।[2] अनुप्रास, श्लेष, यमक आदि का अध्ययन शब्दालंकारों के अन्तर्गत किया जाएगा ।

6.1.5.1.1 अनुप्रास

डा0 हरदयाल ने अनुप्रास अलंकार के महत्व को स्वीकार करते हुए इसे हिन्दी भाषा का सहज धर्म माना है ।[3] "वह शब्दालंकार

---

1. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह: अलंकार-मीमांसा, दिल्ली, हिन्दी पुस्तक कार्यालय, अज्ञात ई0, पृ0 6.
2. नवल जी: नालंदा विशाल शब्द सागर, पृ0 1325.

~~3. रामचन्द्र वर्मा: मानक हिन्दी कोश, पहला खंड, प्रयाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1962 ई0 पृ0 109.~~

3. डा0 हरदयाल :आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना शिल्प , पृ0 245

जिसमें किसी पद में एक ही अक्षर या वर्ण अथवा स्वर-सहित अक्षर या वर्ण कई बार आते हैं[1], अनुप्रास अलंकार होता है । आचार्य मम्मट ने भी वर्ण साम्य को ही अनुप्रास अलंकार माना है ।[2] अनुप्रास अलंकार के प्रति कवि का आलोच्य कृति में विशेष मोह रहा है । अनुप्रास को पाँच भेद माने गए हैं -----

क. छेकानुप्रास ख वृत्त्यनुप्रास

ग. श्रुत्यनुप्रास घ. लाटानुप्रास

ङ. अन्त्यानुप्रास

(क) छेकानुप्रास :- जब किसी पद के आदि, मध्य में किसी एक अथवा एक से अधिक वर्णों की एक बार आवृति हो, तो छेकानुप्रास कहलाता है । हरि अष्ट सतसैया में इस अलंकार अनेक उदाहरण मिलते हैं उदाहरणार्थ --

"मछ्छ न कछ्छ चिद ही भयो, मार रछ्छ धर भार ।
धृति निसार धर धरम धर, निसर रतन दस चार ।।"[3]

इसमें "छ्छ", "र", "ध" की आवृति हुइ है । अनेक दोहों यथा---- 2,4,7,14,18,20,23, 35, 37, 80, 97, 103 आदि में यह अलंकार अपने सरल स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

(ख) वृत्त्यनुप्रास :- वृत्त्यनुप्रास के अन्तर्गत पद के आदि,मध्य में एक वर्ण अथवा अनेक वर्णों को अनेक बार आवृति हो, तो वह वृत्त्यनुप्रास कहलाता है । छेकानुप्रास की भाँति इस अलंकार का भी आलोच्य कृति में प्रयोग अनेक दोहों यथा---- 43, 55, 89, 125, 130, 132, 135, 218, 237 आदि में देखा जा सकता है । उदाहरणार्थ दो दोहे द्रष्टव्य हैं ------

---

1. रामचन्द्र वर्मा :मानक हिन्दी कोश(पहला खंड) ,प्रयाग, ~~xxxx~~ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1962 ई0 पृ0 109.
2 "वर्णसाम्य अनुप्रास" 2 (9-79)
आचार्य मम्मट : काव्य प्रकाश,काशी,ज्ञान मण्डल लिमिटेड 1960 ई0 , 9-79
3. कर्म सिंह निर्मल:हरि अष्ट सतसैया,छंद संख्या 7

"बिचार बिचार बिचार्यो, बिन बिचार सुख नाह ।
याते होवै वह सुनो, ताते करिये ताहि ।।"[1]

इस दोहे में "बि" वर्ण की आवृति चार बार हुई है ।

"जाँह जोत ते जाग जग, जाँह जोत जग जाग ।
ताहि जोत की जोत मो, चित की अब लगलाग ।।"[2]

इस दोहे में "ज" वर्ण की आवृति नौ बार हुई है । अतः वृत्यानुप्रास का सुन्दर उदाहरण है ।

(ग) श्रुत्यनुप्रास :- जब किसी पद में एक ही स्थान यथा कण्ठ, तालु आदि से उच्चरित होने वाले वर्णों की समानता विद्यमान हो, तो वह श्रुत्यनुप्रास अलंकार होता है । आलोच्य कृति से उदाहरण दृष्टव्य है ---

"मोसउ नाँहि अनाथ को, तुम सो नाथ अनाथ ।
मह अनाथ को नाथ हरि, जो नहि गह मो हाथ ।।"[3]

उपर्युक्त पद में अनुनासिक वर्णों--- "न", "म", की आवृति हुई है । दोहे के अतिरिक्त अनेक दोहों--- 7, 137, 237 आदि में श्रुत्यनुप्रास अलंकार मिलता है ।

(घ) लाटानुप्रास :- अनुप्रास अलंकार के अन्य भेदों में केवल वर्ण अथवा वर्णों की आवृति होती है, परन्तु इस अलंकार में पूर्ण शब्द और कभी कभी पूरे वाक्य की ही आवृति हो जाती है । उदाहरण दृष्टव्य है---

ठालो ठालो मत फिरैं, खायो कालो जाँन ।
चालो चालो बेद मग, जालो जालो मान ।।[4]

"ठालो", "चालो", "जालो" पूरे शब्द की आवृति हुई है । इसी अलंकार का एक और उदाहरण प्रस्तुत है ----

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदुष्ट सतसैया, छंद संख्या 113
2. वही, छंद संख्या 590
3. वही, छंद संख्या 94
4. वही, छंद संख्या 28

"ध्यान ध्यान मो ध्यान निज, ग्यान ग्यान मो ग्यान ।
मान मान मो मान निज, गान गान मो गान ।"[1]

"ध्यान" ,"ग्यान" ,"मान" तथा "गान" की दो-दो बार आवृत्ति हुई है । इन दोहों के अतिरिक्त अनेक दोहों— 3,11,20,34,40,51, 52, 75,104,114,254,275,315,5.5,521, 572 आदि में यह अलंकार उपलब्ध हैं

§ङ.§ अन्त्यानुप्रास :- पद के अन्त में आने वाले वर्णों में साम्य होने पर अन्त्यानुप्रास अलंकार कहलाता है, परन्तु मुरली मनोहर प्रसाद सिंह के अनुसार --"कविता में पादान्त के साथ पादान्त का और चरणान्त के साथ चरणान्त की जब ध्वनि साम्य हो तो उसे अन्त्यानुप्रास कहते हैं ।"[2] आलोच्य कृति में अनेक दोहों- 6,30, 88, 324, 480, 580, 582, 603, 628 आदि में इस अलंकार का कवि ने प्रयोग किया है । उदाहरणार्थ एक दोहा प्रस्तुत है ---

"चुंबक से चित चितचितो, जगत चितो चित अेस ।
तां ईंगद तांते चितो, तां बिन हुइ कछु लेस ।। "[3]

6.1.5.1.2 यमक

"साहित्य में एक शब्दालंकार जो उस समय माना जाता है जब किसी चरण में एक ही शब्द दो या अधिक बार आता है और हर बार अलग अलग अर्थ में आता है",[4] यमक कहलाता है ।

आलोच्य कृति में से इस दोहे का एक उदाहरण दृष्टव्य है ---

---

1. कर्म सिंह निर्मला:हरि अष्टुट ससैया, छंद संख्या 582
2. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह:अलंकार-मीमांसा, दिल्ली, हिन्दी पुस्तक कार्यालय, अज्ञात ई0 पृ0 73.
3. कर्म सिंह निर्मला:हरि अष्टुट ससैया, छंद संख्या, 585.
4. राम चन्द्र वर्मा:मानक हिन्दी कोश §खण्ड चौथा§ पृ0 437

चेत माहि चित चेत जो, सिद्ध चित फूल सु फूल ।
फूल फूल तासौं मिले, जो फूलन को मूल ।।[1]

"चेत"शब्द के दो अर्थ हैं । पहला शब्द चैत मास का नाम है और दूसरा शब्द चेतनता के अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । एक अन्य दोहे[2] मे पहला शब्द सिध्ध, सिद्ध होने के अर्थ में और दूसरा सिध्ध, साधुओं के एक वर्ग सिद्धों के लिए प्रयुक्त हुआ है । इन दो उदाहरणों के अतिरिक्त अनेक दोहों यथा--- 61, 63, 66, 75, 77 आदि में यमक अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है ।

6.1.5.1.3 श्लेष

"श्लेष" शब्द की व्युत्पत्ति श्लिष धातु से हुई है जिसका अर्थ है चिपकना, मिलना या संयुक्त रहना ।एक शब्द के साथ जब अनेक अर्थ चिपके हुए हों, तो वहाँ श्लेष अलंकार होता है । मुरली मनोहर प्रसाद xxxx सिंह के अनुसार---"जहाँ एक शब्द से अनेक अर्थों की प्रतीति हो, वहाँ श्लेष अलंकार होता है ।"[3]

[illegible]

आलोच्य कृति में से उदाहरण दृष्टव्य है ---

"रसा सगल नभ मास मै, रस कर रसमय होइ ।
हरि जन की जिम देह मन, हरि रस को मय हो ।।"[4]

उपर्युक्त दोहे में "रसा" शब्द धरती और नदी दोनों अर्थों में सार्थक है, अतः यह श्लेष का सुन्दर उदाहरण है । श्लेष अलंकार के अनेक उदाहरण[5] आलोच्य कृति में मिलते हैं ।

---

1. कर्म सिंह निर्मला : हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 50
2. वही ,छंद संख्या 21

xx xxxx xxxx

3. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह : अलंकार-मीमांसा, पृ0 74.
4. वही ,छंद संख्या 58
5. कर्म सिंह निर्मला:हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 6,9,57,60,87.

6.1.5.1.4 वीप्सा

जहाँ आदर, घृणा, हर्ष, शोक, विस्मय आदि किसी आकस्मिक भावों को प्रभावशाली ढंग में अभिव्यक्त करने के लिए शब्द की आवृत्ति हो, वहाँ वीप्सा अलंकार माना जाता है। घृणा और हर्ष के भावों को अभिव्यक्ति करता हुआ वीप्सा अलंकार दृष्टव्य है ---

"धिक धिक तिह मन को कहो, जो सुपंथ नह पाइ।[1]
स्याब स्याब तिह कोकहो, जो सुपंथ सद जाइ।।"

शोक के भावों की अभिव्यक्त का उदाहरण दृष्टव्य है----

"हा हा दुख मै जो करे, जो सुख मै हुइ ढीठ।"[2]

उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त भी अनेक दोहों-- 95, 136, 292, 392 आदि में वीप्सा अलंकार देखा जा सकता है।

6.1.5.2 अर्थालंकार

"साहित्य में, (शब्दालंकार से भिन्न) ऐसा अलंकार जिसमें अर्थ संबंधी अनूठापन या चमत्कार हो,"[3] अर्थालंकार होता है। अर्थालंकारों में अर्थ का गौरव होता है और यह अलंकार अर्थ पर ही आश्रित होते हैं। मुरली मनोहर प्रसाद सिंह ने भी अर्थालंकार की ऐसी ही परिभाषा कही है --- "अर्थ पर आश्रित चमत्कार जहाँ हो, वहाँ अर्थालंकार होता है।"[4] अर्थालंकारों के अन्तर्गत उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, दृष्टांत, सन्देह, निश्चय आदि अलंकार आते हैं।

6.1.5.2.1 उपमा

उपमा अलंकार के संबंध में मानक हिन्दी कोश में कहा गया

---

1. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 104
2. वही ,छंद संख्या 389
3. राम चन्द्र वर्मा: मानक हिन्दी कोश (पहला खण्ड), पृ0 183.
4. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह: अलंकार मीमांसा, पृ0 85.

है -- "एक अर्थालंकार जिसमें उपमेय और उपमान दोनों विभिन्न होते हुए भी उनमें किसी प्रकार की एकता या समानता दिखाई जाती है । जैसे ---- "उसका मुख कमल के समान है" में मुख और कमल दो भिन्न वस्तुएँ होने पर भी मुख की कमल से समानता बतलाई गई है ।"[1] "चित्रमीमांसा" के रचयिता अप्पयदीक्षित ने उपमा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है ----"ब्रह्म ज्ञान से जैसे विचित्र विश्व का ज्ञान हो जाता है, ठीक वैसे ही उपमा के ज्ञान से भी सारे अलंकारों का ज्ञान हो जाता है ।"[2] आलोच्य कृति में उपमा के प्रति कवि का विशेष मोह लक्षित होता है । अनेक दोहों ---- 2, 16, 56, 82, 85, 90,97, 137, 217, 259, 292, 293 आदि में इस अलंकार के उदाहरण देखे जा सकते हैं । उपमा का एक उदाहरण दृष्टव्य है----

"जगनिधि की जो लहर गन, मृग जल लहर समान ।
जोई याको गह्यो चह्, सो मृग सो दुख जान ।।"[3]

एक अन्य उदाहरण में "पावस" ऋतु की तुलना "इन्द्रधनुष" से की गई है ---

"पावस जावक सी लखो, इंदु बधू की माल ।
जैसे हरि अनुराग करि, हरि जन करनी लाल ।।"[4]

6.1.5.2.2 <u>उत्प्रेक्षा</u> -

मुरली मनोहर प्रसाद सिंह के अनुसार- जहाँ प्रस्तुत में अप्रस्तुत की संभावना का वर्णन हो, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है ।[5] आलोच्य कृति में से उदाहरण दृष्टव्य है----

"पुहप वसंती विकस सिउ, द्रुम सोभत बासंत ।
मनो पति पोसाक धर, धर हरि सोभत संत ।।"[6]

---

1. रामचन्द्र वर्मा: मानक हिन्दी कोश(पहला खण्ड),पृ0 364.
2. उद्धृत मुरली मनोहर प्रसाद सिंह:अलंकार मीमांसा, 123
3. कर्म सिंह निर्मला:हरि अदृष्ट सतसैया,छंद संख्या 295
4. वही ,छंद संख्या 78
5. मुरली मनोहरप्रसाद सिंह:अलंकार मीमांसा,पृ0 139.
6. कर्म सिंह निर्मला:हरि अदृष्ट सतसैया,छंद संख्या 74

उपमा का और उदाहरण दृष्टव्य है ---

"मिल बिछरत सुख दुख नहीं, तौ आदिक मो चीन ।
मनो मोह भूपाल ने, जगत जुराफा कीन ।।"[1]

उत्प्रेक्षा अलंकार के अनेक उदाहरण आलोच्य कृति के दोहों--- 59, 75, 218, 258, 278, 280, 306, 361, 375, 691 आदि में देखे जा सकते हैं ।

6.1.5.2.3. रूपक

रूपक शब्द "रूप्" धातु से बना है जिसका अर्थ है सादृश्य को रूप प्रदान करना । साधारण शब्दों में एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के रूप का आरोप करना, रूपक अलंकार के अन्तर्गत आता है । मानक हिन्दी कोश के अनुसार ---"साहित्य में, एक प्रकार का अर्थालंकार, जिसमें बहुत अधिक साम्य के आधार पर प्रस्तुत में अप्रस्तुत का आरोप करके अर्थात उपमेय में उपमान के साधर्म्य का आरोप करके और दोनों भेदों का अभाव दिखाते हुए उपमेय का उपमान के रूप में ही वर्णन किया जाता है,"[2] रूपक अलंकार कहलाता है । "काव्यनिर्णय" में उपमेय में उपमान के निषेध रहित आरोप को रूपक अलंकार माना गया है ।[3] आलोच्य कृति में से रूपक अलंकार का उदाहरण दृष्टव्य है ----

"हरि सत्ता गोलालि लख, सुरति नालि मो पाइ ।
जाँ जाँ परि सोई परे, सुई लाल हुइ जाइ ।।"[4]

इस दोहे में "हरि सत्ता" और "सुरति" उपमेय है और "गोलाल" और "नालि" अर्थात् पिचकारी उपमान हैं । रूपक का अन्य

---

1. कर्म सिंह निर्मल:हरि अदृष्ट सतसैया,छंद संख्या 108
2. राम चन्द्र वर्मा:मानक हिन्दी कोश [चौथा खण्ड] पृ0 521.
3. जवाहर लाल चतुर्वेदी [सम्पादक] :काव्यनिर्णय, वाराणसी, कल्याणदास एंड ब्रदर्स, 1956 ई0 पृ0 360
4 कर्म सिंह निर्मल:हरि अदृष्ट सतसैया,छंद संख्या 73

उदाहरण प्रस्तुत है ---

"ती संचानी से सुनो, मरद पत्ति जो बाज ।
सुराबा सुराबा ताहि, वही मरद है ताज ।।"[1]

उपर्युक्त उदाहरण में "ती" अर्थात स्त्री के रूप पर संचानी अर्थात् मादा बाज और "मरद" पर पत्ति अर्थात् पक्षी के रूप का आरोप किया गया है । आलोच्य कृति में अनेक दोहों-- 145, 238, 307, 358 आदि में रूपक अलंकार की शोभा लक्षित होती है ।

6.1.5.2.4 दृष्टांत

"जहाँ उपमान , उपमेय और साधारण धर्म का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव हो, वहाँ दृष्टांत अलंकार होता है ।"[2] एक अन्य स्थल पर कवि ने ग्रीष्म ऋतु की गर्मी के भाव को स्पष्ट करने के लिए दृष्टांत प्रस्तुत किया है ---

"ग्रीखम आतश से सुनो, धरा तपत हुई जाइ ।
जैसे हरि बेमुखन की, देह कु पे जम ताइ ।।"[3]

आलोच्य कृति में दृष्टांत अलंकार का अत्यधिक प्रयोग किया गया है, उदाहरणार्थ अनेक दोहे--- 78, 186, 334, 467, 473, 474, 476, 477, 563, 600 आदि देख सकते हैं ।

6.1.5.2.5 दीपक

"मानक हिन्दी कोश" के अनुसार साहित्य में, एक प्रकार का अलंकार, जिसमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत का एक ही धर्म कहा जाता है अथवा बहुत सी क्रियाओं का एक ही कारक होता है,"[4] दीपक अलंकार कहलाता है । मुरली मनोहर प्रसाद सिंह के अनुसार---" प्रस्तुत और अप्रस्तुत-- इन दोनों के एक ही गुण, क्रिया या धर्म द्वारा संयुक्त होने पर दीपक अलंकार

---

1. कर्म सिंह निर्मला,:हरि अद्भुट सतसैया,छंद संख्या 136.
2. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह:अलंकार मीमांसा, पृ0 250.
3 कर्म सिंह निर्मला:हरि अद्भुट सतसैया,छंद संख्या 76
4 रामचन्द्र वर्मा:मानक हिन्दी कोश(तीसरा खण्ड),पृ0 73

होता है ।"[1] आलोच्य कृति में से उदाहरण द्रष्टव्य है—

"कुल धन जोबन रूप मद, मद के मद सो जेठ ।
यतिxxx दुहूं दुख लहे' यति मुकन का रेठ ।।"[2]

इस उदाहरण में "दुख के कारण" एक धर्म है । एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है —

"कर को मनका दूर कर, मन को मनका फेर ।
कर के मनके फेर है, मन के फेर न फेर ।।"[3]

उपर्युक्त दोहे में "मनुष्य" प्रस्तुत है, "मन" अप्रस्तुत है और "मनका फेरना" समान धर्म है ।

6.1.5.2.6 अन्योक्ति

"वह अलंकार जिसमें अर्थ साधर्म्य के अनुसार वर्णित वस्तुओं के अलावा दूसरी वस्तुओं पर घटाया जाए,"[4] अन्योक्ति कहा जाता है । सारांश में व्यंग्य से युक्त अप्रत्यक्ष कथन अन्योक्ति के अन्तर्गत आता है । आलोच्य कृति में से उदाहरण द्रष्टव्य है—

"अरे बाज तूं बाज कर, मत पंखियनि को मार ।
सू लेखा तो गन देत हैं, साहब के दरबार ।।"[5]

6.1.5.2.7 अतिशयोक्ति

"एक अलंकार जिसमें किसी की निंदा, प्रशंसा आदि करते समय कोई बात साधारण से बहुत अधिक बढ़ा-चढ़ाकर कही जाती है[6] । आलोच्य कृति में से उदाहरण प्रस्तुत है —

---

1. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, अलंकार मीमांसा, पृ0 178.
2. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 191
3. वही, छंद संख्या 48
4. नवज जी: नालंदा विशाल शब्द सागर, पृ0 60
5. कर्म सिंह निर्मला; हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 183.
6. रामचन्द्र वर्मा: मानक हिन्दी कोश (पहला खण्ड), पृ0 63.

"तपस हाड़ जम दाढ सी, डाढ़ दाढ़ कर चूर ।
संपा अनुकंपा हरी, हुइ जब तब बच भूर ।।"[1]

6.1.5.2.8 <u>निश्चय</u>

"एक अर्थालंकार जिसमें एक बात का निषेध करके प्रकृत या यथार्थ बात के स्थापन का उल्लेख होता है,"[2] निश्चय अलंकार होता है। यह अपह्नुति जाति का अलंकार है। इसमें एक ओर संदेह रहता है, परन्तु दूसरे को प्रारम्भ से निश्चय होता है, वहाँ निश्चय अलंकार होता है। आलोच्य कृति में यह अलंकार भी प्रयुक्त हुआ है यथा---

"को इक चिद को रंक मन, को चिद को मन राव ।
को अणु कोइ मध्य मन, कोई दीरघ गाव । ।
करता हरता को कहे, को चिन हेतु मान ।
को चिद को धरमी कहे, कोइ अधरमी जान ।।
कहूँ सुछरिया हरि भयो, कहूँ अछरिया होइ ।
कहूँ सु अछर हरि रहैं, अछर कहूँ न जोइ ।।
चिंद जोति रवि जोति सी, चिद कर रवि मै जोत ।
चिद सु लखे चिद होत है, सो चिद उर मै पोत ।।"[3]

निश्चय अलंकार का एक और उदाहरण प्रस्तुत है ---

"कोऊ तीरथ अटन करि, को तप को धर वेस ।
मो ऐ लख हरि नाउ है, जामे नाहि कलेस ।।"[4]

आलोच्य कृति की भाषा में प्रयुक्त अलंकारों के अध्ययन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि प्रयुक्त अलंकारों ने कवि की भाषा को गति ही प्रदान नहीं की, अपितु आकर्षक भी बनाया है। कवि की भाषा कहीं

---

1. कर्म सिंह निर्मल:हरि अदृष्ट सतसैया,छंद संख्या 56.
2. रामचन्द्र वर्मा:मानक हिन्दी कोश (तीसरा खण्ड),पृ0 300
3. कर्म सिंह निर्मल:हरि अदृष्ट सतसैया,छंद संख्या 13,14,15,16.
4. वही ,छंद संख्या 38

भी अलंकारों के बोझ से दबी हुई प्रतीत नहीं होती । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का मत है कि कविता में अलंकारों को बलात् लाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए ।[1] जैसा कि हमने कहा है कि कवि की भाषा में अलंकारों का कहीं भी बलात् प्रयोग लक्षित नहीं होता, अतः संक्षेप में कह सकते हैं कि कवि की भाषा में अलंकारों का प्रयोग सहज, स्वाभाविक और भाषा को गति और आकर्षण प्रदान करता है ।

6.1.6 छंद-योजना

"छंद" शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा की "छंद" धातु से हुई है जिसका अर्थ है प्रसन्न करना अर्थात् छंद प्रसन्नता प्रदान करता है । "मानक हिन्दी कोश" के अनुसार------"मात्राओं या वर्णों का कोई निश्चित मान जिसके अनुसार किसी पद्य के चरण लिखे जाते हैं । आकार, विस्तार आदि के विचार से वे रूप या सांचे जिनमें पद्यात्मक रचना बनती है-,[2] छंद कहलाता है । भाई कान्ह सिंह नाभा के अनुसार---"उह काव्य, जिस विच मात्रा, अक्षर ,गुण आदि दे नियमां दी पाबंदी होवे,"[3] छंद होता है । डा० महेन्द्र कुमार ने काव्य में छंद -विधान का विशेष महत्त्व मानते हुए कहा है---"यह वह साधन है जो पद्य को गद्य से पृथक ही नहीं करता, प्रत्युत लय की सृष्टि कर अभिव्यक्ति(भाषा) को संगीतमय बनाने में कवि की सहायता करता है ।"[4] छंद के संबंध में ऐसा ही मत डा० राज बुद्धिराजा का है ---" प्रभावपूर्ण लयात्मक अभिव्यक्ति (जो वर्ण, मात्रा, गति और तुक के नियमों से परिचालित हो) छंद कहलाती है ।"[5] डा० हरदयाल के

---

1. आचार्य महावीर,प्रसाद द्विवेदी :रसज्ञ रंजन, आगरा, साहित्यरत्न भण्डार, 1957 ई० पृ० 20.
2. राम चन्द्र वर्मा: मानक हिन्दी कोश (दूसरा खण्ड) ,पृ० 295.
3. भाई कान्ह सिंह नाभा : महान कोश, पृ० 495.
4. डा० महेन्द्र कुमार:मतिराम कवि और आचार्य, दिल्ली, भारतीय साहित्य मन्दिर, 1960 ई०,पृ० 245.
5. डा० राज बुद्धिराजा: देव के काव्य में अभिव्यक्ति विधान, दिल्ली, बुकहाउस, 1967 ई०'पृ० 223.

मतानुसार -- "कविता का अपना जो विशेष गुण है, जो उसे गद्य से अलग करता है वह कविता में प्रयुक्त होने वाली भाषा को भी प्रभावित करता है । जब भाषा काव्यभाषा बनती है तब उसका उच्चारण गद्यभाषा से भिन्न होता है । काव्यभाषा की यही उच्चारणगत भिन्नता व्यापक अर्थ में छंद है ।"[1] रघुनन्दन शास्त्री ने छंद की बड़ी सरल परिभाषा कही है ---" छोटी-बड़ी ध्वनियों का तोल-माप में बराबर होना छान्दस रचना का मूल आधार है । ध्वनियों को बराबर करने के विशेष नियम हैं ।" इन नियमों में बंधी हुई ध्वनियां लय उत्पन्न कर सकती हैं और इन्हीं नियमों में आबद्ध रचना को छंद कहते हैं ."[2]

लय छंद का प्राण तत्व है ।
स्वरों में लय के संतुलित संयोजन से काव्य-भाषा संगीतमय हो जाती है और संगीतमय काव्य भाषा आत्मभिव्यक्ति की प्रेषणीयता में वृद्धि करती हुई आनंद अर्थात् प्रसन्नता का कारण बनती है और यही छंद का वास्तविक अर्थ है । छंद मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित है -मात्रिक छंद और वार्णिक छंद ।

भारतीय भाषाओं के ध्वनिसमूह दो प्रकार का है--स्वर और व्यंजन अथवा वर्ण । स्वर का संबंध मात्राओं, व्यंजनों का संबंध मात्राओं और व्यंजनों दोनों से है । मात्राओं से संबंधित छंद मात्रिक छंद तथा व्यंजनों और मात्राओं से संबंधित छंद वार्णिक छंद होता है । आलोच्य कृति में कवि कर्म सिंह निर्मला ने केवल एक मात्र "दोहा" छंद का प्रयोग किया है जो मात्रिक छंदों के वर्ग में आता है ।

दोहा एक प्राचीन छंद है । "पृथ्वीराज रासो" में इसका बहुत प्रयोग हुआ । इस रचना से कई सौ वर्ष पूर्व अपभ्रंश के कवियों यथा जयदेव

---

1. डा० हरदयाल: आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजनाशिल्प दिल्ली, सरस्वती प्रेस, 1978 ई० पृ० 290.

2. रघुनन्दन शास्त्री x हिन्दी छंद प्रकाश, दिल्ली , राजपाल एण्ड सन्स, अज्ञात ई० पृ० 39.

कालिदास आदि द्वारा भी अपनी रचनाओं में दोहा छंद का प्रयोग किया गया । दोहे के सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह किसी भी विषय वीर परक, श्रृंगार परक, भक्ति परक आदि में बड़ी सरलता से प्रयोग किया जा सकता है । दोहा छंद के चार चरणों में कुल 48 मात्राएं होती हैं । पहले और तीसरे चरण में 13,13, और दूसरे और चौथे चरण में 11,11 मात्राएं होती हैं । यति चरण के अन्त में होती है । विषम चरणों के आदि में जगण§ ।ऽ। § नहीं आना चाहिए। सम चरणों के अन्त में लघु पड़ता है । तुक प्रायः सम चरणों की मिलती है, विषमों की नहीं । यह रचना गुरुमुखी लिपि में लिखी गई है । गुरुमुखी लिपि की प्रकृति के कारण प्रायः सभी दोहों में मात्राएं अधिक या कम हो गई हैं । ध्यान देने की बात यह है कि गुरुमुखी लिपि में न तो संयुक्ताक्षर होते हैं और न अनुनासिक § ँ § ध्वनियाँ । इस कारण यह दोहे छंद शास्त्र की दृष्टि से पूरी तरह निर्दोष नहीं दिखते ।

6.2 रस योजना -

साहित्य में वह तत्व जो अनुराग,करुणा,क्रोध , प्रीति आदि मनोभाव को जागृत , प्रबल और सक्रिय करता है, रस कहलाता है । कवियों, लेखकों आदि की प्रतिभा, रचना-कौशल आदि से रस की उत्पत्ति होती है । "हरि अदृष्ट सतसैया" की रस-योजना के अध्ययन को हमने दो खण्डों में विभाजित किया है ---

6.2.1 मुख्य रस

6.2.2 अन्य रस

6.2.1 मुख्य रस

आलोच्य कृति में कवि का मूल प्रतिपाद्य आध्यात्मिक है, जिसके अन्तर्गत कवि ने दर्शन ,नीति और धर्म संबंधी अपने विचार अभिव्यक्त किए हैं । विषय के अनुरूप "हरि अदृष्ट सतसैया"

का मुख्य प्रतिपादित रस "शान्त" है । शान्त रस साहित्य के प्रसिद्ध नौ रसों में अन्तिम रस स्वीकार किया गया है । "आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में, जो रस विवेचन का आदि स्रोत है, नाट्यरसों के रूप में केवल आठ रसों का ही वर्णन मिलता है । शान्त रस को उस रूप में भरत ने मान्यता प्रदान नहीं कि जिस रूप में श्रृंगार,वीर आदि रसों को की, और न उसके विभाव,अनुभाव और संचारी भावों का ही वैसा स्पष्ट निरूपण किया । अष्ट नाट्य रसों का स्वरूप निरूपित करने के पश्चात "नाट्यशास्त्र" में शान्त रस की सम्भावना का निर्देश निम्नलिखित शब्दों में किया गया है और "नवरस" शब्द का भी उल्लेख सर्वप्रथम यहीं हुआ है --- "अतः शान्तोनाम --- मोक्षाध्यात्मसमुत्थ------शान्तरसो नाम सम्भवति ।------ एवं नव रसा दृष्टा नाट्यज्ञैर्लक्षणान्विताः" {पृ0 324-333 गा0 सं0} ,अर्थात् मोक्ष और अध्यात्म की भावना से जिस रस की उत्पत्ति होती है उसको शान्त रस नाम देना सम्भाव्य है {कन्हैयालाल पोद्दार :संस्कृत साहित्य का इतिहास : द्वितीय भाग}" । बाद में इस रस का महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता गया और इसे अन्य रसों की तुलना में सर्वोपरि माना गया । "पण्डितराज जगन्नाथ {17 शताब्दी ई0पूर्व} ने महाभारतादि प्रबन्धों में शान्त रस की प्रधानता बताई है और उसे अखिल"लोकानुभवसिद्ध" भी घोषित किया है । आचार्य अभिनवगुप्त ने "शान्तस्तु प्रकृतिर्मतः "कहकर शान्तरस की प्रधानता को रेखांकित किया था । दशरूपककारधनंजय ने "शम" को सर्वोपरिभाव मानते हुए कहा था कि जहाँ पर न तो दुःख होता है और न सुख, न राग होता है और न द्वेष, वहाँ शम नामक स्थायीभाव अर्थात् शान्तरस की निष्पत्ति हुआ करती है ।

---

1. डा0 धीरेन्द्र वर्मा{सम्पादक} हिन्दी साहित्य कोश, बनारस ज्ञान मण्डल लिमिटेड, 1958 ई0 पृ0 762.

जैन कवि बनारसी दास ने अपने "समयसार" नाटक में शान्त रस को रसराज मानते हुए लिखा है---- "नवमो सान्त रसनिको नायक "।[1] "शान्त रस की प्रकृति उत्तम, स्थायीभाव शम, कुन्द्रेन्दु वर्ण तथा देवता श्री नारायण है । संसार की अनित्यता, वस्तुजगत् की निस्सारता और परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान इसके आलम्बन हैं । भगवान के पवित्र आश्रम ,तीर्थस्थान , रम्य एकान्त वन तथा महापुरुषों का सत्संग उद्दीपन है। अनुभाव रोमांचादि और संचारियों में निर्वेद, हर्ष,स्मरण, मति, उन्माद तथा प्राणियों पर दया आदि की गणना की जा सकती है"।[2] यह आलोच्य कृति शान्त रस से परिपूर्ण है । अपने मत को पुष्ट करने के लिए आलम्बन के विवरण के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं ----

"सम भव को भव जाह ते, जामे होवि लेय ।
जिमि सुकती मे रजत भ्रम, तिह हरि धर सुबोय ।।
जो बिभु लीला धार तन, कर लीला गन सार ।
सार रघु धर भार हरि, ताह धार भव पार ।।
जो असत्त को सत करे, याते जड़ चिद होइ ।
जो दुख मे ते सुख करे तिह हरि को ही जोइ ।।[3]

•

"जगत मोह ने मोहयो, मोह निहार्‌यो ठीक ।
बिन बिबेक कबहूं गनो, होवै एह अनीक ।।
जग मीठो मीठो नही, है इंद्रायन रूप ।
जो इन मीठो सुठ कहे, सोई पर इह कूप ।।"[4]

•

"बीत राग सो भाखिये, जाह राग नहि भाख ।
जिम चमंक को अलि लखे, तिम वह जग को लाख ।।"[5]

---

1. धीरेन्द्र वर्मा: हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 763
2. वही ,पृ0 763
3. कर्म सिंह निर्मला: हरि अदृष्ट सतसैया, छंद संख्या 86,87,88
4. वही , छंद संख्या 106, 290
5. वही ,छंद संख्या 278.

"सुख के सुख मैं सुख नह, दुख के दुख मैं दुख ।
मन तन भिन्न नाना लखो, लखो बोध सम सुख ।।"[1]
"मम तउ स्वइ परकास सद, करम सिंधा भव दास ।।"[2]
"मन तो साचो साच भन, आदि अंत मम जान।।"[3]

परम प्रकास प्रकास तब, सम प्रकास जह वास ।।"[4]

"सप्त भुका कर सुनो, उत्कृष्ट सुख जोड़ ।
अति ही हुई वह जाइ मो, सुखमय सोई होइ ।।"[5]

यहाँ आश्रय स्वयं कवि ,साधक और पाठक है । इस या निर्वेद {विराग} स्थायी भाव है । प्रभु का नाम-स्मरण और ध्यान-धारण {मति} आदि संचारियों की तरह हैं ।

6.2.2 अन्य रस

आचार्य भरतमुनि द्वारा प्रतिपादित पहला रस श्रृंगार है । इसे रसराज की उपाधि भी प्रदान की गई है । "श्रृंगार का अर्थ हुआ "कामवृद्धि की प्राप्ति" {स0म0,पृ0 179} । अतएव जो रचना मानव हृदय की मधुरतम भूख, काम को उज्जीवित एवं परितृप्त करेगी, वह श्रृंगार रस की रचना कही जाएगी ।"[6]

---

1. धर्म सिंह निर्मल, :हरि अष्टुष्ट सतसैया,छंद संख्या 648
2. वही ,छंद संख्या 664
3 वही ,छंद संख्या 679
4 वही ,छंद संख्या 688
5 वही ,छंद संख्या 693
6 डा0 धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 770

आलोच्य कृति में श्रृंगार विषयक मनोभाव का उल्लेख स्वाच्य रूप में हुआ । उदाहरण द्रष्टव्य है-----

"इन गन को गन सीस पर, काम बजावै तूर ।।"[1]

•

"तरस्यो तरस्यो फिरै जो, बहु सपरस को चाह ।
सो किम तरस्यो नहि रहैं,हरि सपरस किम ताहि ।।"[2]

संक्षेप में कवि कर्म सिंह निर्मला कृत"हरि अष्टक सतसैया" में श्रृंगार रस का प्रतिपादन न तो लौकिक धरातल पर हुआ है और न ही अलौकिक धरातल पर । इसे सर्वथा गर्हित ही माना गया है । हास्य रस का आलोच्य कृति में अभाव है ।

रौद्र रस का निदर्शन भी आलोच्य कृति में मिलता है । रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है, इसका वर्ण रक्त और देवता रुद्र है । रौद्र रस का वर्ण लाल इसलिए है कि क्रोध की अवस्था में मनुष्य का रंग लाल हो जाता है । आलोच्य कृति में से क्रोध के निदर्शन-प्रदर्शी कुछ उदाहरण प्रस्तुत है---

"लखो बीर हँकार कौं, मारे निर्दई बीर ।
औरन को तिह चीर सब, वह औरन को चीर ।।"[3]

•

"मोह आदि बेताल गन, भए सति गन जानि ।
ताहि छते मै नाच नच, अब भय मै सुख खानि ।।"[4]

•

"ताहि सेना जो आसुरी, हनी गनी अब सोह ।
कहु कैसे वह जगैगी, हन्यो मूल उन कोह ।।"[5]

---

1. कर्म सिंह निर्मला:हरि अष्टक सतसैया,छंद संख्या 132
2. वही ,छंद संख्या 361.
3. वही ,छंद संख्या 127
4. वही ,छंद संख्या 668
5. वही ,छंद संख्या 669

करुण रस का संचार मन में . विकट दुःख के कारण होता है।[1] इसका आलंबन वियोग, उद्दीपन वियुक्त व्यक्ति की किसी वस्तु का दर्शन या उसकी चर्चा और अनुभाव रोना-कल्पना आदि कहे गए हैं। भक्ति भाव से परिपूर्ण आलोच्य कृति में अपने तथा जगत् के दुःखों का अनेक स्थलों पर वर्णन किया गया है। ऐसे स्थलों पर प्रकारान्तर से करुणा की झलक-भर मिल सकती है: ,विशुद्ध रूप में करुण रस यहाँ अप्राप्य है। उदाहरणार्थ कुछ दोहे प्रस्तुत हैं ---

"त्राह त्राह मेरी करो, भो हरि आरतु बंधु ।
काटो काटो देर तज ,याह जगत के फंध ।।"[2]

"विखै अनल बन अनल सी, मै करि को कर दाह ।
भो गुर त्राता करो तुम, तुम ही धन मै याह ।।"[3]

"जग सउ दुखिया गनगनो, गन ते दुखिया मोह ।
सो दुख ओ दुख हरो तुम,तुम मै तुम ही जोह ।।"[4]

"जाँ चिद के परमादि कर, दुख ही दुख जो होइ ।
जाँहि लखे निरदुख्ख हुइ, सो सउ तूं ही जोइ ।।"[5]

"निजानंद परमादि से, इम दुखया जी चोण ।
जैसे दसवा पुरख भ्रम, नाही निज को बीन ।।"[6]

---

1. रामचन्द्र वर्मा: मानक हिन्दी कोश (पहला खण्ड),पृ0 466
2. कर्म सिंह निर्मला:हरि अदृष्ट सतसैया,छंद संख्या 95.
3. वही ,छंद संख्या 458
4. वही ,छंद संख्या 451
5 वही ,छंद संख्या 561
6 वही ,छंद संख्या 563

"श्रृंगार के साथ स्पर्धा करने वाला वीर रस है । श्रृंगार, रौद्र और बीभत्स के साथ वीर को भी भरत मुनि ने मूल रसों में परिगणित किया है । वीर रस से ही अद्भुत रस की उत्पत्ति बतलाई गई है ।
वीर रस का वर्ण स्वर्ण अथवा गौर तथा देवता इन्द्र कहे गए हैं । यह उत्तम प्रकृति वालों से सम्बद्ध है तथा इसका स्थाई भाव"उत्साह" है —"अथ वीरो नाम उत्तम प्रकृतिरुत्साहात्मक" [नाट्यशा0:6:66ग][1]

आलोच्य कृति में वीर रस का प्रतिपादन बहुत अधिक नहीं हुआ है, उदाहरणार्थ कुछ दोहे प्रस्तुत है ---

"जोह विपरजै बीर है, वह लघु भ्रम को बीर ।
आपत मेधी बीर बिन,को हन ताको धीर ।।"[2]

मैं मै कर जो राखना, ताह नाम हंकार ।
मार मार जग छार कर, कर धनु पुन टंकार ।।"[3]

"इम सब ते बेमुख हुइ, जो ही मो पछुताइ ।
जिम रण ते सूरा लखो, सो उपराम गाई ।।"[4]

बीभत्स रस का काव्य में अपना विशिष्ट स्थान है । "नालंदा विशाल शब्द सागर" के अनुसार इसमें रक्त,मांस आदि घृणित वस्तुओं का वर्णन होता है जिनसे अरुचि एवं घृणा उत्पन्न होती है ।[5] "भरत [ई 3 श0ई0] के नाट्य शास्त्र में बीभत्स रस को चार मुख्य उत्पत्ति–हेतुक रसों में माना

---

1. डा0 धीरेन्द्र वर्मा:हिन्दी साहित्य कोश,पृ0 732.
2. कर्म सिंह निर्मला:हरि अदृष्ट सतसैया,छंद संख्या 122
3. वही ,छंद संख्या 123
4. वही ,छंद संख्या 385
5. नवल जी –नालन्दा विशाल शब्द सागर,पृ0 1294

गया है -- "बीभत्साच्च भयानकः" §6:39§ इसके अनुसार बीभत्स रस भयानक रस का उत्पादक है। बीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा है, जो भयानक रस के स्थायी भय का मूल प्रेरक रहता है §6:41§ "[1]

बीभत्स रस प्रायः हिंसा के प्रसंगों में मिलता है। आलोच्य कृति में बीभत्स रस का वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है उदाहरण द्रष्टव्य हैं------

"बिन निरमै पुन पिछै बिन, जो नर मन दै साख।
ताको पितर गन नरक मो, रजस्वल रक्तहि चाख।।"[2]

"लख गलानमय गरत तनु, तामि गरत न होइ।
यामि जोई बरत भ्रम, भयो गरत ही सोइ।।"[3]

"भानुदत्त के अनुसार "भय का परितोष" अथवा "सम्पूर्ण इन्द्रियों का विक्षोभ" भयानक रस है। अर्थात् भयोत्पादक वस्तुओं के दर्शन या श्रवण से अथवा शत्रु इत्यादि के विद्रोहपूर्ण आचरण से जब हृदयस्थ "भय" स्थाई भाव परिपुष्ट होकर आस्वाद्य बनता है, तब वहाँ भयानक रस होता है। इसमें सम्पूर्ण इन्द्रियों में विक्षोभ उत्पन्न हो जाता है।"[4] भयानक के आलम्बन व्याघ्र इत्यादि हिंसक जीव, शत्रु, निर्जन प्रदेश, स्वयं किया गया अपराध इत्यादि है। शत्रु की चेष्टाएं, असहायता उद्दीपन है तथा स्वेद, विवर्णता, कम्प, अश्रु रोमांच इत्यादि अनुभाव हैं। त्रास, मोह, जुगुप्सा, दैन्य, संकट, अपस्मार, चिन्ता, आवेग इत्यादि उसके व्यभिचारी भाव हैं।[5]

---

1. डा0 धीरेन्द्र वर्मा: हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 516
2. कर्म सिंह निर्मला, हरि अद्भुत सतसैया, छंद संख्या 175
3. वही, छंद संख्या 248
4. डा0 धीरेन्द्र वर्मा: हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 533.
5. वही, पृ0 534

आलोच्य कृति में भयानक रस का विस्तृत विवेचन नहीं मिलता, अपितु इस रस का बोध काव्य-कृति में कहीं कहीं होता है ।

"काल" अर्थात् देहान्त भी मनुष्य में भय का संचार करता है यथा ---

"काल तु खेलें खेल को, खेले खेट अखेट ।
जो बलि भाग्यो चहे, मारे ताको फेट ।।"[1]

किसी असाधारण वस्तु को देखकर जब हमारे हृदय में विस्मय का भाव उत्पन्न होता है तो अद्भुत रस की निष्पत्ति होती है । "अलौकिकता से युक्त वाक्य,शील कर्म एवं रूप अद्भुत रस के आलम्बन विभाव हैं, अलौकिकता के गुणों का वर्णन उद्दीपन विभाव है, आँखें फाड़ना, टकटकी लगाकर देखना, रोमांच, आँसू,स्वेद, हर्ष ,साधुवाद देना, उपहार-दान, हा हा करना, अंगों को घुमाना, कम्पित होना, गद्गद वचन बोलना, उत्कण्ठित होना इत्यादि इसके अनुभाव हैं । और वितर्क आवेग,हर्ष , भ्रान्ति ,चिन्ता,चपलता,जड़ता, औत्सुक्य प्रभृति व्यभिचारी भाव हैं ।"[2]

आलोच्य कृति में अद्भुत रस का संचार यत्र-तत्र मिलता है, उदाहरणार्थ कुछ दोहे प्रस्तुत हैं ---

"गहो छिति सित खड्ग सी, जामो अद्भुत टेक ।
करे एक को बिब नहीं ,बिब को कर यह एक।।"[3]

"बहु अद्भुत है जगत मो, ए अद्भुत अति टोल ।
उपल ईस जो ईस लो, सरधा से वह बोल ।।"[4]

---

1. कर्म सिंह निर्मला:हरि अद्भुट सतसैया,छंद संख्या 270
2. डा0 धीरेन्द्र वर्मा:हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 17
3. कर्म सिंह निर्मला,हरि अद्भुट सतसैया,छंद संख्या 333
4. वही ,छंद संख्या 400

" चिद ही लीला तनु धरे, धर धर जब होइ ।
जोगी धर नट्टादि धर तिह अदभुत है कोइ ।।"[1]

वस्तुतः इस रचना का केन्द्रीय प्रतिपाद्य अध्यात्म है, अतः अन्य लौकिक रसों की अभिव्यक्ति के लिए इसमें पर्याप्त अवकाश न था । यही कारण है कि इस रचना में शान्तरस को केन्द्रीय स्थिति मिली है, शेष अन्य रसों की स्थिति अत्यन्त प्रासंगिक हो गई है ।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि "हरि अद्भुट ससैया" की मूल भाषा ब्रज है । ब्रज भाषा के अतिरिक्त तत्सम, तद्भव तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग भी इस कृति में मिलता है मुहावरों के प्रयोग ने भाषा को सजीव बनाने का प्रयत्न किया है । संक्षेप में काव्य-शिल्प की दृष्टि से यह कृति साधारण कोटि की कही जा सकती है ।

---

1. कर्म सिंह निर्मल: हरि अद्भुट ससैया, छंद संख्या 6

:-:-

उपसंहार

उपसंहार

"निर्मल-सम्प्रदाय" का उद्भव 17वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हुआ था । इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक सिखों के अन्तिम गुरू श्री गोबिंद सिंह जी को माना जा सकता है । उद्भव से लेकर 20वीं शताब्दी के आरम्भ तक यह सम्प्रदाय सिख-धर्म का एक अभिन्न अंग बना रहा, लेकिन 20वीं शताब्दी के पहले चरण से ही इस सम्प्रदाय और सिख-धर्म में अलगाव आना आरम्भ हो गया था । अब भी निर्मल-सम्प्रदाय के संतों को समाज में आदर की दृष्टि से देखा जाता है । निर्मल-सम्प्रदाय की वर्तमान स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती, क्योंकि अनेक संतों-महंतों ने सम्प्रदाय की अनेक सैद्धान्तिक मान्यताओं का परित्याग कर दिया है और सम्प्रदाय के डेरों-अखाड़ों को निजी संपत्ति बना लिया है । इस सम्प्रदाय के अनेक अनुयायियों ने साहित्य की रचना हिन्दी और पंजाबी दोनों भाषाओं में की । ऐसी ही एक हिन्दी की रचना "हरि अुष्ट सतसैया" है ।

"हरि×अुष्ट

"हरि अुष्ट सतसैया" का रचयिता कवि कर्म सिंह, शाहाबाद {हरियाणा} निवासी सरदार कर्म सिंह निर्मला था । प्रतापसिंह की यह धारणा ठीक नहीं लगती है कि यह कवि अमृतसर का निवासी था । उपलब्ध साक्ष्य उसके शाहाबाद के निवासी होने के पक्ष में ही पड़ते हैं । उपयुक्त प्रमाणों के अभाव के कारण कवि का जन्म तथा आरम्भिक जीवन अज्ञात है, फिर भी हमारा अनुमान है कि कवि का जन्म 18वीं शताब्दी के पहले अथवा दूसरे चरण में हुआ होगा । इतिहास-ग्रन्थों के अनुसार कवि की सर्वप्रथम अवतारणा सन् 1759 ई0 में हुई है । सन् 1771 ई0 में कवि ने अपनी शक्ति एवं बुद्धि से मारकंडा घेट पर कब्जा कर लिया था । कवि के पिता का नाम हुकम सिंह तथा माता का नाम दया कौर था । गुरू का नाम भाग सिंह था । इस कवि ने पाँच विवाह किए थे । इसकी पत्नियों के नाम---- श्रीमती रूप कौर, श्रीमती प्रधान, श्रीमती खेम कौर, श्रीमती पेदसान तथा श्रीमती महां कौर थे । कवि के पाँच पुत्र ---- कारहन सिंह, रणजीत सिंह,

शेर सिंह, खड़क सिंह, दुस्मन सिंह, तथा तीन पुत्रियाँ — प्रताप कौर , इन्द्र कौर , जिंद कौर थीं । पटियाला के महाराजा साहिब सिंह कवि के संबंधी {समधी} थे । सन् 1773 ई0 में कवि ने अमृतसर में हरि मन्दिर साहिब की परिक्रमा में एक बुंगे {आवासीय स्थान} का निर्माण करवाया था । यह बुंगा अब शेष नहीं है । इसे हरि मंदिर साहिब की परिक्रमा को चौड़ा करते समय तोड़ दिया गया था । तत्कालीन प्रसिद्ध धार्मिक नेता साहिब सिंह जी बेदी से कवि का विशेष परिचय था । 16 मार्च, सन् 1808 ई0 में कवि का देहान्त हुआ था ।

कवि की कुल चार कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं —— "हरि अष्ट सतसैया", "नृप धर्म चन्द्रिका", "सद सुख प्रकाश" तथा "श्री गुरु वंश चन्द्रोदै" । इन कृतियों का काल क्रमशः 1845 ई0, 1847 ई0, 1864 ई0 तथा 1866 ई0 है । हमारी धारणा के अनुसार ये इन कृतियों के रचना काल नहीं हैं, बल्कि प्रतिलिपिकाल हैं । "सदसुख प्रकाश" और "श्री गुरु वंश चन्द्रोदै" की प्रतिलिपियाँ बीर सिंह नामक संत द्वारा तैयार की गईं थीं । अन्य दोनों कृतियों की प्रतिलिपि तैयार करने वाले विद्वानों के नाम अज्ञात हैं ।

"हरि अष्ट सतसैया" का मूल प्रतिपाद्य विषय धर्म और अध्यात्म है । कवि द्वारा प्रतिपादित धर्म में सिख तथा हिन्दू धर्म का अद्भुत संयोजन हुआ है और इनमें कोई भी विभाजक रेखा खींचना सम्भव ही नहीं जान पड़ता । हिन्दू संस्कृति —— पर्व, उत्सव, रहन-सहन , खान-पान आदि का इस काव्य -कृति में अनेकशः उल्लेख देखा जा सकता है । इस काव्य-कृति में शंकराचार्य के अद्वैत -दर्शन तथा "भगवद्गीता" के दर्शन का सर्वाधिक प्रभाव लक्षित हुआ है । मध्यकालीन हिन्दी-कवि दर्शन की सिद्धान्त-चर्चा जन-सामान्य को अध्यात्म-धर्म-दर्शन की प्राथमिक सूचनाएँ देने के लिए किया करते थे । अतएव उनमें दार्शनिकों के चिन्तन की गहराई नहीं आ पाती थी । पंजाब जैसे अहिन्दी -भाषी क्षेत्र में समस्या यह थी कि संस्कृत और हिन्दी में

उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान को किस प्रकार जन-सामान्य में वितरित किया जाए । इस समस्या का समाधान इन कवियों ने गुरुमुखी लिपि में हिन्दी की कविता लिखकर किया और इसके माध्यम से धर्म, दर्शन, नीति की शिक्षा दी । गुरुमुखी लिपि में आज भी अनेक ऐसे ग्रंथ उपलब्ध हैं, जिनमें संस्कृत के दार्शनिक, धार्मिक ग्रंथों का या तो अनुवाद किया गया है, या उनका आधार लेकर सरल शैली में उनका मर्म समझाया गया है । इस रचना "हरि अदृष्ट सतसैया" के बारे में भी यही कहा जा सकता है । मानवीय नैतिक मूल्यों की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि इस काव्य-कृति में कवि सिक्ख-धर्म के नैतिक मूल्यों से अनुप्राणित होता हुआ भी भारतीय नैतिक मूल्यों के प्रति अपने अगाध मोह को बनाए हुए है ।

काव्य-शिल्प की दृष्टि से इस काव्य-कृति की गणना सामान्य कोटि में की जा सकती है । इसकी मूल भाषा ब्रज है । पंजाबी के शब्दों का भी प्रायः अभाव ही है । अनेक विदेशी शब्दों — अरबी, फारसी आदि का प्रयोग भी कवि ने प्रायः किया है । संस्कृत के तत्सम तथा अर्द्धतत्सम शब्दों की बहुलता है । अनेक तद्भव शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं । भाषा को प्रभावशाली बनाने के लिए मुहावरों का प्रयोग हुआ है तथा लोकोक्तियों का प्रायः अभाव है । भाषा के सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए कवि ने शब्दालंकारों — अनुप्रास, श्लेष, यमक आदि तथा अर्थालंकारों — रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि का प्रयोग किया है । सम्पूर्ण काव्य-कृति में कवि ने एकमात्र छंद दोहा अथवा दोहरा का प्रयोग किया है ।

ध्यातव्य है कि इस रचना का महत्व उतना साहित्यिक नहीं है, जितना कि ऐतिहासिक । आज जब कि पंजाब में अलगाववाद का क्षयरोग अपने चरम बिन्दु पर है, यह रचना इस तथ्य को रेखांकित करती है कि सिक्खधर्म हिन्दूधर्म का एक अंग बन कर रहा है । उसकी सम्पूर्ण धार्मिक, आध्यात्मिक मान्यताएं हिन्दुओं के धार्मिक व आध्यात्मिक विश्वासों से भिन्न नहीं हैं ।

:-:-

परिशिष्ट

परिशिष्ट - क ——— मूल रचना का सम्पादन

परिशिष्ट - ख ——— संबंधित चित्र

परिशिष्ट - ग ——— सहायक पुस्तक - सूची

परिशिष्ट - क

मूल रचना का सम्पादन

परिशिष्ट - क

"हरि अष्टक सवैया"

।। १ ओं सतिगुर प्रसादि ।।

।। दोहरा ।। अ पीरा[1] नहि हरि हरै, जिह[2] पीरा नहि कोइ ।
ताते धारौं ताहि मन, पुना[3] पीर नहि होइ ।। 1 ।।
हरि चित विभु[1] क्या तो लखो, लखो बेद मै नांहि ।
या सम वाही है अवै[2], लखे अवै हुइ नाहि ।। 2 ।।
हरि अनंत तिह अंत नहि, भनत अनंत अनंत ।
मुनि जन भन[1] स्रुति[2] गन भनत, नहि पुनि इंद[3] भनंत ।। 3 ।।
चिद[1] इक चेतंत[2] जिमल सो, जिह सुरलोक अलोक ।
जो वाको हिय ध्यान धर, किम रह तां तम सोक ।। 4 ।।
चिद सौं चिद ही है लखो, जीहु[1] चिद है जांन ।
होइ न इनको एकता, को घट[2] इन मै मांन ।। 5 ।।
चिद ही लीला तनु धरे, धर[1] धर धर जब होइ ।
जोगी धर नटादि धर, तिह अदभुत है कोइ ।। 6 ।।
मछुछ कछुछ चिद ही भयो, मार रछुछ[1] धर मार ।
स्रुति[2] निकार धर धरम धर, निकर रतन दस चार ।। 7 ।।
पुन बराह नरहरि भयो, धर जल थंभ तु कोर ।
धरा धर्यो[1] प्रहलाद को, करी रछुछ[2] अति जोरि ।। 8 ।।

---

1. 1. पीड़ा 1. जिनको 3. पुनः
2. 1. व्यापक 2. कहा जा सकता है
3. 1. कहना 2. वेद 3. यह
4. 1. चेतनता {ब्रह्म} 2. पति {ईश्वर}
5. 1. जीवात्मा 2. छोटा
6. 1. धरा
7. 1. राक्षस 2. वेद 3. निकलना
8. 1. स्थापित करना 2. रक्षा

कहौ सु हरि सिव उभै[1] भ्रम, बावन अरु भ्रुगराम ।
बल[2] कौ छलि बल कर छल्यौ, हरे छत्र[3] संग्राम ॥ 9 ॥
रघुपति यदुपति पुनि भयौ, हति सिह दसमुख कंस ।
इन की लीला विपुल[1] लखि, लखि पुनि विमल सुवंस ॥ 10 ॥
पुनि बुधि[1] कलगी[2] चित भयौ, तुंनतुंन इक ठौर[3] ।
कली काल कौ जाल लखि, लखि लखि चित अति तोर ॥ 11 ॥
चिद विभु नै जो बपु[1] धरे, कह लग गन गन सोइ ।
एक एक कौ कथा गनौ, गन ही चिद है जोइ ॥ 12 ॥
को इक चिद को रंक[1] मन, को चिद को मन राव[2] ।
को अनु कोइ मध्यम मन, कोई दीरघ गाव ॥ 13 ॥
करता[1] हरता[2] को कहै, को भरता[3] हेतु मान ।
को चिद कौ धरमी कहै, कोइ अधरमी जान ॥ 14 ॥
कहुँ सुछरिया[1] हरि भयो, कहुँ अछरिया[2] होइ ।
कहुँ सु अछर हरि रहै, अछर कहुँ न जोइ ॥ 15 ॥
चिद जोति रवि जोति सी, चिद कर रवि मै जोत ।
चिद सु लखै चिद होत है, सो चिद उर[1] मै पोत ॥ 16 ॥
चिद विभु ही की जोति जो, सब मो सोइ लेख ।
जल थल ससि[1] रवि मो लखौ, अनल अनिल मो पेख ॥ 17 ॥
माइ[1] अविद्दया[2] भेद कर, चिद विभु ही बिन होइ ।
मट घट मै जिम भिन्न नभ, तिह बिन भिन्न किम होइ ॥ 18 ॥
करता क्रिया सुकरम सुर, भेद चित[1] के चीन ।
नख सिख व्यापक करन की, पुना चिदै की लीन ॥ 19 ॥

---

9. 1. दोनो 2. राजा बली 3. क्षत्रिय
10. 1. व्यापक
11. 1. महात्मा बुद्ध 2. कल्कि अवतार 3. कहा
12. 1. शरीर
13. 1. भिक्षुक 2. राजा
14. 1. जन्म देने वाला 2. नाश करने वाला 3. स्थित (पालन) करने वाला
15. 1. क्षर 2. अक्षर
16. 1. हृदय (17) 1. चन्द्रमा (18) 1. माया 2. अज्ञान
19. 1. पहचान करना

ध्याता ध्यान बखान[1] चिद, पुनर ध्येय चिद जोइ ।
या उपाधि के मेल ते भिन्न भिन्न चिद होइ ॥ 20 ॥
बिनु चिद त्रिकुटी[1] सिद्ध नांहि, सिद्ध मुनीयों मान ।
ए विध[2] जी जो है लखो, नही ब्रह्म की हानि ॥ 21 ॥

<u>मंगलाचरनैती</u>

<u>अथ मुमुक्षा हेतु तरक बरनैन ।</u>

जग दुख दावा अनल मैं, मै जर गए बहु[1] बार ।
भो मन तूं ताही चहैं, नहि तूं फिरना धार ॥ 22 ॥
तू मह भोगे भोग जग, तो कउ[1] भोगह भोग ।
पुन तूं चाहैं ताहि को, किम भाखिये तुह जोग ॥ 23 ॥
अहो सखा ऐसे लखो, बहु जन मन मह भोग ।
हरि मिलने को जोग[1] जो, मिलयो नीठ अब जोग ॥ 24 ॥
जे तक तेरा बुध[1] है, ते तक लखी सुमीत[2] ।
जो तुह देवै दुक्ख नित, तूं तेह चाहैं मीत ॥ 25 ॥
को सुख को दुख देत है, यांको लखो सुजाग ।
जो नहि या को लखैगो, तौं तू लख्यो अभाग[1] ॥ 26 ॥
बाधामय गन भोग जो, तूं तिह साध न साध ।
यां के साधन साध नहि, जो बिन बाध अगाध[1] ॥ 27 ॥
ठालो ठालो मत फिरैं, खापो कालो[1] जांन ।
चालो चालो बेद मग,[2] जालो जालो मान ॥ 28 ॥

---

20. 1. कहना
21. 1. त्रिकुटी 2. विधि
22. 1. दुगा
23. 1. तुझे
24. 1. युक्ति
25. 1. बुद्धि 2. मित्र
26. 1. अभागा
27. 1. अनेक
28. 1. काल 2. मार्ग

धाइ धाइ जग सुख गहौं[1], गहौं नाहि बेचार ।
क्या जानो क्या होइगो, साहिब[2] के दरबार ॥ 29 ॥

अथ मंद मुमुक्षु मे करम बरनर्न ।

बरनाश्रम[1] के करम जो, रज हर ते सो जान ।
ताते धोवै पाप रज,[2] धुनि मन हरि मे ठानि ॥ 30 ॥
करम अनल ते ताइ कर, तन कुंदन जिह होइ ।
बिम नाही अति सोभ लहि, हरि भूखन रचय सोइ ॥ 31 ॥
करम फिटका है निरमली, कर निरमल उर तोइ ।
पुनि ति[1] हसैं धर तौ लखो मन सु कर्र कर लोइ[2] ॥ 32 ॥
बार बार मन क्या मनु, करम बार हिय धार ।
याते उर पट सुध्म लखु, ताते रही सार ॥ 33 ॥
बरनाश्रम के करम मन, बीन बीन कर जोइ ।
ताको चित सुध होइ नहि, नहि पुनि हरि मैं होइ ॥ 34 ॥
तातैं मातैं करम मन, बिना करम नहि कोइ ।
याते सुम जो नहि करे, किम सुयानो सो होइ ॥ 35 ॥

अथ मध्यम मुमुक्षु मे उपासना बरनर्न ।

जाप जजन हरि को करो, आन देव नहि मन्न ।
जानो अनते अंत भय, सह हुइ पुन धनधन्न ॥ 36 ॥
सम ते सरन सारयो, हरि को नाउ सुनाउ ।
जाहि सुने ही ते सुनो, भवनिधि पार पराउ ॥ 37 ॥

---

29. 1. पकड़ना 2. परमात्मा
30. 1. वर्णाश्रम 2. धूलि
32. 1. स्त्री 2. प्रकाश
36. 1. यज्ञ

कोऊ तीरथ अटन[1] करि, को तप को व्रत देत ।
मो ए लख हरि नाउं[2] है, जामे नाँहि कलेत ॥ 38 ॥
कहुँ चुलचुलो[1] पर सुनो, जपे कि हरि को नाम ।
पर कोकिल एक ठौर[2] नाहि, दुह तिह को किम काम ॥ 39 ॥
कौन कौन ए कौन हम, नाह आन जप दान ।
हरी नाम सो नाम हरि, तासि है हो माँन ॥ 40 ॥
लख चौरासी बान[1] हरि, वार वार मम धार ।
परम धाम को बास दै, उन बासन करि हारि ॥ 41 ॥
हरि त्रिय मै नट[1] स्वांग[2] धर, लख चौरासी वेर ।
रीझ दीजिए मुकति फल, जिम कह धर नहि फेर ॥ 42 ॥
गन सुर नर सरता गयो, हर को धन सो जोइ ।
मुकति स्वांति जामि लखो, पिक[1] दुह गहितां मोइ ॥ 43 ॥
जम मध वाके त्रास करि, नक गिरि भ्रम भ्रम जोइ ।
तां को त्राता[1] को नही, हरि निधि सरनिसु[2] होइ ॥ 44 ॥
हरि विमुख को ठौर नहि, सगल लोक के माहि ।
सुरपति[1] सुत को धाक लख, भ्यो काक[2] जो आहि ॥ 45 ॥
हरि विमुख जोई भ्यो, नाँहि ठौर तिह कोइ ।
याते भ्रम तासि नतुयो, कहु किम तिसुटै सोइ ॥ 46 ॥
यां ते भ्रम तां ते नसैं, तासि नत तब जोहि ।
जउ तूं वाति नां नसैं, तउ मन जानो तोहि ॥ 47 ॥

---

38. 1. घूमना 2. नाम
39. 1. चंचल 2. ठिकाना
41 1. चोला
42. 1. अभिनेता 2. रूप धारण करना
43. 1. कोयल
44. 1. रक्षा करने वाला 2. शरण
45. 1. इन्द्र देवता 2. कौवा

कर[1] को मनका दूर कर, मन को मनका फेर ।
कर के मनके फेर है, मन के फेर न फेर ॥ 48 ॥
हरि मै तार[1] सु तार है, मन को मनको जोड़ ।
तामै पोवै[2] यार को, मनो माल[3] व होइ ॥ 49 ॥

<u>अथ उपासना मै बारहमासा बरनन</u> ।

चैत माहि[1] चित चेत[2] जो, तिह चित फूल सु फूल ।
फूल फूल तासौं मिले, जो फूलन को मूल[3] ॥ 50 ॥
चेत चेत हरि चेत जो, हरि सो हरिआ होइ ।
फिर फिर जोई सुकनो[1], हरि साडो को सोइ ॥ 51 ॥
मन साखा बैसाख मो• हम सो रखु नर साख ।
ऐसो तउ चहित उर है• जउ हरि हरि सद भाख[1] ॥ 52 ॥
सो साखी की साख मन, जो साखी दल फेल ।
जाँहि लखे तर[1] सैल[2] हुइ, जाँहि लखे सुख सैल ॥ 53 ॥
जेठ माहि जेठो[1] गनो, जो उर दृढ़ रह सोइ ।
पुन हरि हरि जो चितन ■ गह, फिर हरि तिह जम[2] जोइ ॥ 54 ॥
नीर उसीर समीर[1] मै लख तपन की बार ।
जार धारो धार मन, तिह फिर जम सुहि[2] बार ॥ 55 ॥
तपत हाड़ जम डाढ[1] सी डाढ़ दाह कर दूर ।
संपा अनुकंपा हरी, हुइ जब तब बह भूर ॥ 56 ॥
दादर[1] मीन मोर पिक, भ्यास सगल बिलसाह[2] ।
इनको तपत कु तपत तब, जब घन सुपास[3] बुलाइ ॥ 57 ॥

---

48. 1. हाथ
49. 1. तीन 2. पिरोना 3. माला
50. 1. मास 2. चेतन 3. जड़
51. 1. सूखना
52. 1. बोलना
53. 1. तरल 2. शैल (चट्टान)
54. 1. बड़ा 2. यमराज
55. 1. हवा 2. जलाना
56. 1. दाँत
57. 1. मेंढक 2 प्यास से व्याकुल 3. काले बादल (कृष्ण)

रसा[1] सगल नभ मास मै, रस[2] कर रसमय होइ ।
हरि जन को जिम देह गन, हरि रस ही मय होइ ॥ 58 ॥
पुन पिक दादर मोर झख, झनह दरद होइ जरद[1] ।
जिम जानो हरि जाप ते, होइ दरद को दरद ॥ 59 ॥
नर भाद्रो हुइ भद्रमय, उर नभ हुइ घनश्याम ।
तउ नारीहरि रस करे, हरि सगल[1] हुइ नाम ॥ 60 ॥
अति जलधर[1] सब ही झुके, गिरधर तबै उचार ।
ताहि काल की छटा मिस[2], काल जीभ जनु[3] मार ॥ 61 ॥
क्वार द्वार हरि के परी, करय गरर[1] तिह नामि ।
पार जीवत पितर[2] तर, लह निजहुँ सुखधाम ॥ 62 ॥
उर को दिन को तपत सब, हरि ही हरि[1] है पानि ।
साँति[2] मिला ते करत सी, दै निस कहि सो ध्यानि ॥ 63 ॥
कतक[1] दीप की दीप को, करे दीप हरि जोइ ।
जो ताही को दीप लख[2], वही दीपमय होइ ॥ 64 ॥
ससी[1] जोन सो जोन हरि, पुन जल बादर फैल ।
ताको सरद सरद कर, जो संपर तिह छैल ॥ 65 ॥
हरि अगहन[1] को गहन करि, तउ अगहन नहि माह ।
बउ अगहन को नहि न गह्यो, तउ[1] अगहन[2] ही आह ॥ 66 ॥
सुखदा मधुमय सीत[1] है, त्रिविधि[2] बयार[3] पुन चाल ।
या सुख ते सुख सो लहे, जो गावै हरि लाल ॥ 67 ॥

---

58. 1. धरती 2. पानी
59. 1. पीला
60. 1. सारा
61 1. बादल 2. बहाने 3. लोग
62 1. गर्जन 2. पूर्वज
63. 1हरना अर्थात दूर करना 2. शान्ति
64. 1. कतक का महीना 2. ज्योति
65. 1. चन्द्रमा
66. 1. जिसको ग्रहण न किया जा सकता हो 2. अगहन का मास
67. 1. सर्दी 2. तीनों दिशाओं की 3. पवन.

पोख[1] तोख तब ही लखो, लखे जो हरि सम तूल ।
घटो उसन[2] को उसन करि, बही सतूत सब मूल ॥ 68 ॥
माह निहार निहार कर, हरि सनेह मन लाइ ।
धुन ध्रिति[1] हरि सै जानिये, जिह जग[2] देख लजाइ ॥ 69 ॥
माघ तापि[1] जग को तजो, सत बसंत तु गाइ ।
हरि बिन होरी छिरित जो, सो मोरी जिम लाइ ॥ 70 ॥
जो हरि सीते सीत कर, तिह भज साते सीत ।
जो याको नह इम भजै, सीतकाल सो सीत ॥ 71 ॥
सगल खेल मै खेल हरि, फागण मास के माहि ।
मन ताको लख खेल जो, तासों ही यह आइ ॥ 72 ॥
हरि सतूर गोलालि[1] लख, सुरति[2] नालि[3] सो धाइ ।
जां जां परि सोई परे, सुर्ख[4] लाल हुइ जाइ ॥ 73 ॥

अथ-उपासना मै षट रितु बरननं ।

पुनब बसंती चिकन सिउ, इम सोभितबासंत ।
मनो पीत[1] पोसाक[2] धर, धर हरि सोभा संत ॥ 74 ॥
रंग रंग के फूल धर, धर सोभत इम जान ।
मनो विचित्र पोसाक[1] हरि, दई ताहि को मान ॥ 75 ॥
ग्रीखम[1] आतप[2] ते सुनो, धरा तपत हुइ जाइ ।
जैसे हरि बेमुख का, देह सुदे जम[3] ताइ ॥ 76 ॥

---

68. 1. पोख का महीना 2. उष्ण
69 1. धुति 2. संसार 3. लज्जा आना
70 1. आकर्षण अथवा तीव्र इच्छा
73 1. गोलाल 2. योग की एक स्थिति अथवा ध्यान 3. पिचकारी 4. सुर्ख
78 1. अधे पीला 2. वस्त्र
75. 1. वस्त्र
76. 1. ग्रीष्म 2. गर्मी 3. यमराज

ताहि काल की अनिल[1] को, काल चक्र सी जानि ।

सरदा[2] लप हरि गाढ़ जो, ताते बच सी मानि ॥ 77 ॥

पावस[1] जावक[2] सी लखौ, इंदु-बधू[3] की माल[4] ।

जैसे हरि अनुराग करि, हरि जन करनी लाल ॥ 78 ॥

जिम आगमन[1] मनोरथा, तिम बरखा[2] बहु जीव ।

ध्यान सरद सी होइ जब, तब अभाव उन ग्रीव ॥ 79 ।

सहद गरद सम गरद भय, बिमल[1] कमल सम होइ ।

कमलापति[2] की भक्ति ते, रिदा[3] कमल जिम जोइ ॥ 80 ॥

सादर सोत[1] की चौन[2] कर, होइ रसा[3] इम सेत[4] ।

जिम हरि सकुता ते लखौ, हुइ जगती सत चेत ॥ 81 ॥

हिम मै हित सी गुर मिले, तौ अह जम भय मंद ।

बिमला निस सोम्यत भय, नह जिम मो दुख फंद ॥ 82 ॥

हिम मै हिम सी हिम नहीं, है दु संत बच माहि ।

दाह नलन को दगध करि, कर रिद को हर याह ॥ 83 ॥

हरि बिमुखनके दलन को, काल सिसर कर काल ।

कोइ भक्ति तुतरन के, बच सी होइ निहाल ॥ 84 ॥

काल चक्र की पौन सी, सिसर काल की पौन ।

पाँ ते सोई बचेगो, जो पैठे हरि भौन ॥ 85 ॥

---

77. 1. आग 2. छटा

78 1. वर्षा 2. महावर 3. इन्द्र की बहू (इन्द्रवधू) 4. माला

79 1. आगमन 2. वर्षा

80 1. मल रहित 2 विष्णु 3. हृदय

81 1. चन्द्रमा 2. चाँदनी 2. धरती 4. श्वेत

82x

अथ ध्यान बरनन ।

भ्रम भ्रम को भ्रम जात है, जामें होवै भेद ।
जिमि सुकती[1] मै रजत[2] भ्रम, तिह हरि धर सुख बैद ॥ 86 ॥

जो बिभु[1] लीला धार तन, कर लीला गन सार ।
मार रघु[2] धर[3] भार हरि[4], ताह धार भ्रम पार ॥ 87 ॥

जो असतुत को सत करे, याते जड़ चिद होइ ।
जो दुख मै ते सुख करै तिह हरि को ही जोइ ॥ 88 ॥

झूठो है रे झूठ जब, साचे ते सोइ । (सच[1])
सोइ साचो साच मन, मन करि मन मह जोइ ॥ 89 ॥

रवि ससि अर[1] अनलादि सो, जाह जोत सुरलोक[2]
जो इन गन मै जोति कर ताह उह[3] मन ओक ॥ 90 ॥

अथ सिख बेनती ।

हे हरि हरि तुहि सो गनो, जो गन हर मुह पाप ।
पुनि निस दिन हरि हरि रटौं, फिर सि पाप मुह चाप ॥ 91 ॥

नाम तुमारो दयाल है, सुनिये है गोपाल ।
तारो अब तारे घने, मह अघवन[1] को काल ॥ 92 ॥

पतितन[1] को पावन करौ, टेर लहो दिन रात ।
मुझ हरि अब तारौ, नहीं बिसर[3] गई वह बात ॥ 93 ॥

मोसउ नाहि अनाथ को, तुम सो नाथ अनाथ ।
मह अस अनाथ को नाथ हरि, जो नहि गह मो हाथ ॥ 94 ॥

ग्राह ग्राह[1] मेरो करो, भो हरि आरतु बंधु ।
काटो काटो टेर तज, याद जगत के बंध[2] ॥ 95 ॥

---

89 1. सत्य
90 1. और 2. सुरपुलोक 3. वह
91 1. दबाना
92 1. अघमारना
93 1. पतितों 2. लगन 3. भूल
95 1. तोबा तोबा 2. बंधन

जगत् जाल के जाल मो, हो पतृरी[1] फस आइ ।
हरि तुम काटो तांहि को, तुम बिन अन को नांहि ॥ 96 ॥

या भव को निध[1] तो लखो, लहर कहर मित्यु[2] जोइ ।
याते तो बहुत जन बहे, याति बचे न कोइ ॥ 97 ॥

याह जगत के तरन को, नह कुर[1] मोको दाइ ।
हरि तूं ही दल तारिओं, पाहन[2] नाव चढ़ाइ ॥ 98 ॥

अथ उत्तम ममुक्षु अरु उत्तम ममुक्षु मै दोश द्रिसट बरननं ।

हों पतृरी भ्रम निलय ते, तरक पंख पर पीन[1] ।
कब या दुख मै तो उडों, कब निज निलय सु लीन ॥ 99 ॥

मम करि भ्रम बन अनल कर, भ्यो तपन बहु बार ।
निज चिद तर मै जाइ कर, कब या दुख ते पार ॥ 100 ॥

तन सु जंत्र[1] को प्रेरका, है कोई जो भाख ।
तांको कब मै लखोंगों, जाइ लखे दुख लाख ॥ 101 ॥

मन ही गम को मूल है, मन ही मन को मूल ।
जो मेरो मन नहि मनृयो, तउ नहि मिम हुइ सूल ॥ 102 ॥

मन भोरो[1] गोरो नहीं, दौरे हौरो[2] और ।
अति ही हौरो पुन लखो, लखे न ठोर कुठोर ॥ 103 ॥

धिकधिक तिह मन को कहो, जो कुपंथ मह धाइ ।
स्वाब स्वाब[1] तिह को कहो, जो सुपंथ तद जाइ ॥ 104 ॥

मोह प्रोहि निप राखसा[1], लखा बिबेक तुर भूप ।
याह भूप को राज तब, जब मन परैगु कूप[2] ॥ 105 ॥

96. 1. पक्षी

97 1. सागर 2. मृत्यु
98 1. पंख 2. पत्थर
99. 1. पहचान करना
101 1. यंत्र
103 1 भंवरा 2. कोलाहल
104. 1. शाबाश शाबाश
105 1. राक्षस 2. कुंआ

जगत मोह मे मोहयो, मोह निहार्‌यो ठीक ।
बिन विवेक कबहुँ गनो, होवे ए अनीत ॥ 106 ॥
जे तोको मो[1] मोह जो, ते तो होवे तोख ।
या ते ताको तोर[2] जो, मोह दुख अवलोक[3] ॥ 107 ॥
मिल बिछरत[1] सुख दुख लहैंती[2] आदिक मोपान ।
मनो मोह भूपाल[3] मे, जगत पुराका कनि ॥ 108 ॥
ढही हलाहल[1] भछ गन, अनहित हित जोह ।
आतमघात[2] को दोख[3] जो, यह किम ताको होह । ॥ 109 ॥
महा मोह को रूप इह, जोबन[1] को निज मान ।
ताते ही अति होइ दुख, ताहि हान मन हान ॥ 110 ॥
जो घिरना[1] लख मोह ते, फिर नारा मो[2] मान ।
ता बिन जोइ जो करे अर तोई तिह हान ॥ 111 ॥
पुत्र आदि मो मोह कर, जो दुख मो मन सुख ।
सुख ताको किम होइगो, यह मानि यह दुख ॥ 112 ॥
विचार विचार विचार्‌यो, बिन विचार सुख नाह ।
याते होवै यह सुनो, ताते करिये ताहि ॥ 113 ॥
है बिधि[1] बिधा[2] सुहि तो गनो, जो हन गन सुहि मोह ।
जो यह हन हो[3] ताहि को, तो गन हो मद छोह ॥ 114 ॥
ममता ते समता नही, कब ममता हुइ दूर ।
यह वह जब लग दूर नइ, तब लग रहू नर सूर । ॥ 115 ॥

---

107 1. मुझ मे 2. तोड़ना 3. देखना
108 1. बिछुड़ना 2. स्त्री 3. राजा
109 1. जहर 2. आत्महत्या 3. दोष
110 1. यौवन
111 1. घृणा 2. मुझसे
114 1. विधाता 2. भाग्य 3. मारना

कब गुर श्रुति[1] को मत लखो, कब भ्रम लखा अनघृत ।
या लख को सुख कब लखौं, लखौं सु भ्रम भव हत । ॥ 116 ॥

भ्रम भरम जुत[1] जौन है, भव मह देह उडाइ ।
एही दानो है बली, गर्व गनी को खाइ । ॥ 117 ॥
महाँ मोह भूपाल को, भ्रम ही बड़ो वजीर ।
जो जो गन ई देखिये, ताँही को हरि धीर ॥ 118 ॥
निजानंद[1] को भ्रम जिह, तिह अति दुइ दुख जानि ।
देखौं केहर[2] कूप पर, सीस तदमसु सुवानि[3] ॥ 119 ॥
भ्रम सु पवन के गोल मो, नर पर्ण पर जोइ ।
सो कैसे थिर होइगो, अरध उरध भ्रम सोइ । ॥ 120 ॥
निज सुख को ही भ्रम कर, जब सुख मन मो धास ।
जिउ हरि भ्रम कर कूंड मध, पुन पुन आवै धास ॥ 121 ॥
जोइ विपरयै[1] बीर है, वह लघु भ्रम को बीर ।
आपत भेधी बीर जिन, को हन ताँको धीर ॥ 122 ॥
मै मै कर जो रायता, ताह नाम हंकार ।
मार मार जग छार कर, कर धनु पुन टंकार ॥ 123 ॥
मोह भूप दल मो, सुनो पिथ्म लीक हंकार[1]
औरन की मै क्रिया गनु, कर सो थि दे अमार ॥ 124 ॥
डोलत डोलत डोल जग, डम डोले सो जानि ।
धनु मार्‌यो हंकार को, को कर उनको हानि ॥ 125 ॥

---

116 1. वेद

117 1. आत्मानंद 2. क्रोध 3. कुत्ता

122 1. विपर्यय

124. 1. अहंकार

बड़ मानिन को मान नह, जाह नाम हंकार ।
जो नह ताको मान है, किम न मान तिह तार ॥ 126 ॥
लखो बीर हंकार को, मारे निरह[1] बीर ।
औरन को तिह पीर कक, वह औरन को पीर ॥ 127 ॥
मनुज निरादर[1] सुठ बली, जाहि बली संसार ।
जोई पर को बली कर, बली सुधार बिचार ॥ 128 ॥
उसी सुल जो अहत मद, जाह न हन हुन धार ।
मनुज मस्त[1] ताको हने[2], ता को हने बिचार । ॥ 129 ॥
मनो सकुचित[1] मनो मद, सकुच सगल संसार ।
लछमन सार बिचार बिन, किमं तार को मार ॥ 130 ॥
ऐसो और न कोइ नह, जो मन भूतह जीत ।
जोई मन को भूत लिय, कर सोई तिह भीत[1] ॥ 131 ॥
सुनो गुनी गन गनी मिल, पुन गन पैसे सूर[1] ।
इन गन को गन तीन पर, काम[2] बजावै तूर[3] ॥ 132 ॥
मम अनाथ किम गनति मो, गनी गनी मन जौन ।
काम गनी गन तीन को, गमे गौन ते गौन ॥ 133 ॥
भौंह-चाप[1] को चाप जब, तो कटाछ[2] हन तीर ।
बिन बिचार सब बधे को, जो बच सोई बीर ॥ 134 ॥
जुलफ जंजिर[1] की फांस जब, नारि डारि नर नारि ।
तामि सबै निरार को, बिना बिचार बिचार ॥ 135 ॥

---

127 1. निरीह
128 1. राक्षस 2. बलि
129 1. दुष्ट 2. मारना
130 1. मैलनाथ
131 1. भयभीत
132 1. बहादुर 2. कामदेव 3. तुरही
134 1. भृकुटी 2. कटाक्ष
135 1. जंजीर

सो सयानी[1] से सुनो, मरद पत्नि जो बाघ ।
स्याबा स्याबा ताहि को, वही मरद है साथ ॥ 136 ॥
नारी डाइन सो लखो जिह नर को कट सार ।
किमहु नाही सो बचे, बच जो ईस पार[1] ॥ 137 ॥
करख मंत्रयुत निसचरी, तीर ति कुल गति जोइ ।
या के बस नहि होइ सो, हरि मंत्री जो होइ ॥ 138 ॥
शुभ करम सो लोभ लख, अर्थ न होवै भाख ।
पुन उभमि मै है लखी, अष्ट बरन को साख ॥ 139 ॥
लोभ छोभ[1] मै जो गड्यो, सो यह साखोसाख ।
जाइ लोभ ते लखख[2] लख, सो फिम तिह रस चाख ॥ 140 ॥
लोभ कलंदर मै सुनो, एक सकति लख पाइ ।
जा पर धारे पाँइ सो, सो मरकट[1] हुइ जाइ ॥ 141 ॥
करे लोभ अति दीन मन, मै जान्यो तहकीक ।
नर अठीक आगे सुनो, कर[1] जोरै[2] नर ठीक ॥ 142 ॥
जब भुख लख जो राखसी[1], बिन त्रिसना[2] नहि आन ।
बाँम[3] अंक पुन लोभ के, को बच ताति जाँन ॥ 143 ॥
रीतो[1] निधा सो पेट जिह, लोभ सकति लख सोइ ।
किमहु पूरन होइ नहि, बिन सतोख[2] वह जोइ ॥ 144 ॥
त्रिसना त्रिसना[1] नागनी, गई जगत को खाइ ।
पंन-गारि[2] संतोख बिन, याति कोइ बचाइ ॥ ॥ 145 ॥

---

136 1. बाज
137 1. कृपा
140 1. क्षोभ 2. देखना
141 1. मरकट
142 1. हाथ 2. जोडना
143 1. राक्षसी 2. तृष्णा 3. बायाँ
144 1. खाली 2. संतोष
145 काली 2. पन्नगारि (गरुड़)

लखो मंत्र संतोख बिन, त्रिसना होवै दूर ।
यां ते डाइन जानिये, ज[ो] सिर[1] खावै सूर ॥ 146 ॥
त्रिसना त्रिसना नागनी, जिह [न]र उर बल पैठि ।
ता[ह]ठउ[र] संतोख बिन, को मंत्री हर ऐठि ॥ 147 ॥
जिह तन ओडर[1] अगन हुइ, सभी डह डहया होइ ।
त्रिसना पुत नर जोन है डही न्याइ ता मोह[2] ॥ 148 ॥
त्रिसना अगनि सिउ[1] दगध जो, तो किम डहडह होइ ।
अतलह ता कर वह सुनो, सउ सुख[2] होवै तोइ ॥ 149 ॥
त्रिसना आतप कर गनो, जो नर दाद्यो[1] जोइ ।
तो ततोख तरु तर सुनो, हुइ थित तउ सुख होइ ॥ ॥ 150 ॥
देख्यो लेख्यो पुनर पुन, बिन संतोख न तोख[1] ।
ताह बिना लख तोख जो, लख तामो लख धोख ॥ 151 ॥
बीर त्रिप्य संतोख जो, झम दे धन तो पूर ।
महां त्रिप्य बाबेक[1] जो, ताको कर तिर मूर ॥ 152 ॥
आसा[1] पासा ही किधौ, किधो सुपरखा नीच ।
जाह जाह को लोभ गहि[2], ताह नाइ इन बीच ॥ 153 ॥
आसा पासा जाहि गर, गर किम तोई नाहि ।
जां के नाही वाह गर, गर किम तोई वाह ॥ 154 ॥
अत ही दुलतर[1] बात ए, बिन आसा नरु[2] होइ ।
भांति भांति के लोक पिख, लभ[ा] ही मैं वह जोइ ॥ 155 ॥

---

146 1. सीस
148 1. ओसर 2. मरना
149 1. समान 2. सुखना
150 1. जलाना
151 1. संतुष्टि
152 1. विवेक
153 1. आशा 2. पकड़ना
155 1 कठिन 2. नर

भांति भांति के लोक को , भांति भांति सुन बात ।
आसा की धुनि ताहि मो, गुन[1] कर के लख[2] जात ॥ 156 ॥
आसा त्रिसना अपन बिन, लोभ लगयो तिह सीत ।
ऐसो चसमा[1] धरे जो, लखा तां को बड[2] दीस[3] ॥ 157 ॥
लोभ सु निसचर[1] मे सुनो, चिंता चिता जगाइ ।
जो नर ताकौ कर[2] धरै, ताकौ तां मो नाइ ॥ 158 ॥
चोरी मोरी[1] नर करो, जो पामो पग नाइ ।
तुरत कुरत हो सो नर, गिरे नरक मो जाइ ॥ 159 ॥
चोरी जोरी[1] ते सुनो, किम न दुख गन देख ।
सो सुख को किम नहि लखे, कर जो इने उपेख[2] ॥ 160 ॥
चोरी जोरी को तजो, भावी[1] को उर जोइ ।
गहे आगि के अनल[2] जो, किम न गदधा बहि होइ ॥ 161 ॥
पर धन पर दारादि[1] को, जो इन गहि[2] कर जोर ।
सो उन को दुख देहगे, नरक घोर मे घोर ॥ 162 ॥
लखन तेह को सुता[1] अन , सुपत गहन तिह नाम ।
अन को धन अन को करे, बस अधरम[2] के धाम ॥ 163 ॥
जो गह ध्यान सुध्यान मे, दाना दाँन सुमति ।
सो दाना मे दाँन गन, गन दाना गन चीत ॥ 164 ॥
महाँ मोह भूपाल को, एक राछसी[1] और ।
निंदा ताकौ नाम है, कर दे गन को बौर[2] ॥ 165 ॥

---

156 1. समझ 2. देखा
157 1. ऐनक 2. बडा 3. दिखना
158 1. निशाचर 2. हाथ
159 1. सेंध
160 1. बलपूर्वक छीनना 2. उपेक्षा
161 1. भविष्य 2. आग
162 1. पराई स्त्री 2. पकड़ना
163 1. बहिन 2. घर
165 1. राक्षसी 2. पागल

मंदा निंदा ही करै, नर अमंद को जोइ ।
नरक पालनी मोह मे, पाँ ते ठाती सोइ ॥ 166 ॥
गन मुख युत[1] गन राछसी[2], निंदा ही है बीर ।
जाके हीये[3] बह बसे, किम अर गनि सुधीर ॥ 167 ॥
है जो अमरी द्रिस्टि सम, सो निंदा को मार ।
होवै सोई ग्यान ते, ग्यान करन कर धार ॥ 168 ॥
अनसुआ सुई मनो जिह, नर के हिय होइ ।
कहु किम नाही मरै सो, सम सुबुक बिन सोइ ॥ 169 ॥
अत खोटी अनसुई लख, लखा खोटे को जोइ ।
याँ को फल दुख नाहि किम, किम अनसुई सोइ ॥ 170 ॥
दंभ बकासुर[1] सो लखो, जग जिन को गिल जाइ ।
त्रिभुवन सरल के जाप बिन, ताते बच को पाइ ॥ 171 ॥
किधौं दंभ को रूप गन, किधौं मरीच सुजानि ।
कालनेमि ही है किधौं, है सो बरयो बखान ॥ 172 ॥
झूठ निसाचर[1] सो सुनो, झूठ निसाचर आदि ।
जप तपादि गन जगत को, खाही भख[2] है याहि ॥ 173 ॥
अहो सुमन के झूठ अति, मूठ आन पुन टूठ ।
सो तउ मिठ सो मिठ्ठ भख, किम नाही सो लूठ ॥ 174 ॥
बिन निरनै[1] पुन पिछे बिन, जो नर भन दै साख ।
ताँको पितर[2] गन नरक मो, रजसुबल रकताहि चाख[3] ॥ 175 ॥

---

167 1. युक्त 2. राक्षसी 3. हृदय
171 1. राक्षस का नाम
173 1. राक्षस 2. भक्ष्य
175 1. निर्णय 2. पूर्वज 3. चखना

अनुप निरायारि[1] को लखो, मोह अलेख निरुपम ।
जउ नह वाको मोहणी, तउ किम ताते सुरुप ॥ 176 ॥
अनुरुप राखो जगत मे, मोह जगत को एक ।
जोई वाको मोहणी, लखेगु[1] सो सुध[2] मेक ॥ 177 ॥
जोइ अनुरुपे सुरुप मन, सोई जग मे आहि ।
जोइ ताहि अनुरुप मन, सोई जग मे नाहि ॥ 178 ॥
रोख[1] लखो महिखासुर[2], करे धरम को रोध[3]
याह बेग के रोध बिनु हेतु रलहि बिन बोध ॥ 179 ॥
छिमा[1] सकति सो है लखो, रोख सकति को मार ।
ता बिन ताको हत्यो[2] यह, किम करतो तिह छार ॥ 180 ॥
है हिंसा जो राखसी, वा सम वाही आहि ।
रहो जीवन को हने[1], जीवन मो बिन चाह ॥ 181 ॥
हिंसा असुरी अति सुनो, हतो जगत को मीत ।
वा ते कोइ न रख सके, बिन घिरना[2] सुन मीत ॥ 182 ॥
अरे बाज तू बाज कर, मत पारिन्दनि[1] को मार ।
लेखा तो गन देत हैं, साहब[2] के दरबार ॥ 183 ॥
पछ्यो[1] पाप को नर सुनो, ठीक रसातल[2] जाइ ।
देखो तुल को पालना, जाइ रसातल धाइ[3] ॥ 184 ॥
करे पाप पुन यों कहे, कब भवनिधि तर जाउं ।
कह जिम को मै निधि तरों, बैठ उपल की नाउं[1] ॥ 185 ॥

---

176 1. राहमी
177 1. दिखना 2. होश
179 1. रोष 2. महिषासुर (राक्षस का नाम) 3. विरोध
180 1. क्षमा 2. मारना
181 1. हनन करना
182 1. मित्र 2. xxxxx घृणा
183 1. पक्षी 2. परमात्मा
184 1. पछताना 2. पाताल 3. दौड़ना
185 1. डूब जाना

पापी नर के सुख द्रुम, देखत ही उड़ जाइ ।
जैसे रेती ताल जल , देखत देख सुखाइ[1] ।। 186 ।।
राग द्वेष[1] विष सुर अति, नृप[2] मोह के जानि ।
जो नह याको हनेगो, होवै न तिह हानि ।। 187 ।।
मरमी करमी सुर अति, राग द्वेष है जोइ ।
बिना ग्यान इन हने को, हने अधक जो होइ ।। 188 ।।
रागहि नारी प्रीति लखु, कलह द्वेष की जानि ।
उन दोनो के मरन कर, इन दोनो की हानि ।। ।। 189 ।।
प्रीति जगत की जोन है, कलह जगत मो योन ।
जैसो ए सुख देत है, लखैं भुजंग के भौन[1] ।। 190 ।।
कुल धन जोबन रूप मद, मद के मद ती पेठ ।
या ते कुबहूँ दुख लहे, याति सुजन न पैठ ।। 191 ।।
मद निसचर[1] पटु[2] जोन है, या सम ठगा नह कोइ ।
जाको अंजन[3] अंजे[4] ए, देखत देख न तोइ ।। 192 ।।
मद राजा निज राज कर, करे उभय नर नारि ।
तन ते पद को छैव करि, नावै नरक मझार ।। 193 ।।
नीक ठीक[1] कर के लखो, मद उभ लोक नसाइ ।
अउ ताको मिलि लोभ पुनि, तो दोनो अति जाइ ।। 194 ।।
जो मारे मद लोभ को, हउ तिह के पग चूम[1] ।
ए ही विष मिल के बलो, तीन लोक कर धूम[2] ।। 195 ।।

---

186 1. सूख जाना
187 1. द्वेष 2. नृप
190 1 घुमना
192 1. राक्षस 2. निपुण 3. काजल 4. लेपना
194 1. ध्यानपूर्वक
195 1. चूमना 2 चर्चा

मद मितपति को हरि हरे[1], मह मद हरि है सोइ ।
तां बिन ताको हरे जो, कर निरने[2] हिय जोइ ॥ 196 ॥

जातुधानं[1] है मान जो, जाने करे अधीन ।
ताते मानी जो भयो, जह तह चाहै मान ॥ 197 ॥

मान अनीति अति गनो, निरपेक्ष को त्रास ।
याते गहे ताह वह, बक दै उन को त्रास ॥ 198 ॥

मान मान दुरजुन लो, किम गल उन को गाल ।
ताको त्रास[1] न होइ किम, जो तिह हने उताल ॥ 199 ॥

गन अमान हन मान को, बिन हन सुख किम होइ ।
ताहि हने बिन सुख चहै, कहु किम सुयानो सोइ ॥ 200 ॥

जोइ हन है मान को, होइ ताहि किम पीर[1] ।
वही धीर मो धीर है, वही बीर मो बीर ॥ 200 ॥

कपट मितावर दपट को, छिन[1] मै लावै रोग ।
अकपट अतुवनी पुरुष बिन, को पावै तिह भोग ॥ 202 ॥

गनो कपट को भ्रात[1] मद्यु, दगा जाह को नाम ।
स्मे[2] मन को वह सुनो, किम गहै को धाम ॥ 203 ॥

सुवामि घाति[1] जो राखना, गन को कर वह ताइ ।
ताहि सुना[2] कित घनता[3], तो हूं तिह मिलि जाइ ॥ 204 ॥

सुवामिघाति कितघन[1] को, गन कंगर बल वंड ।
पाप सु प कर ताहि कै, देवै नर को दंड ॥ 205 ॥

जबै सुलंग पनाच[1] सुनि, बचन सैन को मार ।
तब सुलंग बुधि निपर बिन, कर नर को तो मार ॥ 206 ॥

---

196 1. हरना 2. निर्णय
197 1. राक्षस
199 1. रक्षा
201 1. पीड़ा
202 1. क्षण
203 1. भाई 2. म्हारा
204 1. स्वामी-घात 2. बहन 3. कृतघ्नता
205 1. कृतघ्न
206 1. पिशाच

कारा सदस कुसंग जो, मोहु पिसाच सु जोइ ।
हरि सुसंग सहकार[1] बिन, ताहि निसर्‍यो[2] कोइ ॥ 207 ॥
सुन कुसंग के बचन को, नाग अचंभा[1] होइ ।
हमरि डंक ते बचे बहु, याहि बचे न कोइ ॥ 208 ॥
आलस कालस[1] रूप कर, धरै नरक मो सोइ ।
जो नहि याको हरेगो, वह किम कालस धोइ ॥ 209 ॥
आलस कालस रूप कर, डोबै पूर सु पर
जो नहि याको हरेगो, हर सो किम सुख पूर ॥ 210 ॥
जामै खोटी बुधि अति, ऐसो दैत[1] सु कोइ
वह अमात[2] है मोह को, ताहि खोटो सोइ ॥ 211 ॥
खोटो मंत्री डोब है[1], पर जानो सहतीक ।
याहि मोहो डूब है, भने[2] सुधीयो[3] ठीक ॥ 212 ॥
जग मै उलटी रीति गन, निरधन चाहै दान ।
धनी नाम जपयो चहै, खाली दोनों मान ॥ 213 ॥
जग मै उलटी रीति गन, जो उलटी उलटाय ।
सो दुख मै सुख को लहे, हम ने दयो बताय ॥ 214 ॥
नाम सु कलिजुग है लखो, लखो अकलि मो जोर ।
याहि कलिजुग मै लखो, रंग और[1] के और ॥ 215 ॥
जगत जाल मै जाल सो, कलिजुग फैलयो जान ।
नर खग[1] भाति निकस सो, जाकि भाग[2] सुजान ॥ 216 ॥

---

207 1. सहयोग 2. निकलना
208 1. आश्चर्य
209 1. कालिमा
210 1. पूरे का पूरा
211 1. दैत्य 2. अमात्य [मंत्री]
212 1. डुबो देना 2. कहना 3. बुद्धिमान
215 1. अन्य
216 1. पक्षी 2. भाग्य

प्रभेत सो कलिजुग, दिन दिन दूना होइ ।
जो जो फल को देख ए, मन को मालम होइ । ॥ 217 ॥
लखो भाव इस बात को, जो कलि सार सुथान[1] ।
मनो महासे सार मन, विषै[2] करन जग जान ॥ 218 ॥
बरखा[1] लघु पुन आयु लघु, पुन कलि रोग कु रोग ।
लघु राजा पुन राजु[2] लघु, थुना बसत[3] नह जोग ॥ 219 ॥
हरि हरि हरि हरि नाम जो, वा सब वाही आहि ।
और जुगन के धरम अन, कल मै एही वाहि ॥ 220 ॥
मन जुग ते गुन अधिक लख, कलजुग मो गुन भीर ।
जोड़ कर कर करेगो, भगेगी तोड़ पीर[1] ॥ 221 ॥
कलिजुग मै गुन गन गनो, नह अब जुग मो वाहि ।
अनुप दान सो दान नहि, जप सो तप नहि आहि ॥ 222 ॥
जिम उडगन[1] गन नभ लख, तिम जप मो तप आन ।
अनुप दान मो दान तिम, कलिजुग ही मो जान ॥ 223 ॥
सगल स्रिति[1] को मूल मन, कथ सरही मन मोह ।
जाहि करे बिन सुख न ही, मै देख्यों है जोह ॥ 224 ॥
धारा छारा[1] करता जिम, नाइ[2] अगन[3] मो सोइ ।
तिम तप ते मन करों, जब तब ऐ सिध भ्या[4] होइ ॥ 225 ॥
सम मन को कर गुर मनो, सदगति गति अति सोख ।
जब को धीरो गुरु मिले, तउ दे मन को दोख[1] ॥ 226 ॥

---

218 1. उचित स्थान 2. विषय
219 1. वर्षा 2 राज्य 3. रहना
221 1. पीड़ा
223 1. तारे
224 1. श्रुति
225 1. हिलना 2. नहाना 3. आग 4. बनना
226 दोष

नभ चिद मो नह ऊध गति , नह गति भ्रम मै नीच ।
मम मन नट बट लौ लखो, रह्यो बीच को बीच ॥ 227 ॥
मम मन जल की गति लखो, चिद नभ मो किम छोड़ ।
छिति नलकी के जोर बिन, कबै तहाँ नह जोड़ ॥ 228 ॥
मो चित की छिति ध्रीं[1] लौ, उडी जगत् नभ माहि ।
किम हूँ बिनाँ प्रयत्न गन, छूड़ समेट तौ नाह ॥ 229 ॥
जग करनी झलनी[1] गनो, पेच[2] तांहि नह जांन ।
मन सुअ[3] तांमो फस गयो, छूड़ सुअ जी भ्रम हांन ॥ 230 ॥
मम निज करनी कर गुथ्यो, जिम सु गुथी घर चीण ।
ताते को दयालु कटे, जो करनी कर खीण ॥ 231 ॥
भ्रम करनी भ्रमनी गनो, गहे ताह अति जाहि ।
तो कैसे ताते सुधे , सुध सु करन कर ताह ॥ 232 ॥
जग छित साखा अरक तौ, किमर ताल[1] की होइ ।
जो तिह भ्रमत रसाल को, भ्रमत अरक नहि सोइ ॥ 233 ॥
निज प्रमाद[1] कर धस्यो मै, जगत गरत[2] के मांहि ।
कोई गनो प्रजतन बिन, यां ते निकस्यो जाहि ॥ 234 ॥
ठगबाजी तो जग बन्यो, जो लख चिद्गुत फुलाइ ।
किम नाहीं तो बावरो[1] , तिह तो सुधि बकाई[2] ॥ 235 ॥

---

229 1. बाणि

230 1. चोंथी नलकी (जब तोता नलकी पर बैठता है तो नलकी घूम जाती है और तोता उल्टा होकर पानी पर लटक जाता है और डूबने के भय के कारण नलकी नहीं छोड़ता । बहेलिया आकर तोते को पकड़कर पिंजरे में बंद कर देता है)। 2. घाव 3. तोता

233 1. आम

234 1. आनंद 2. गड्डा

235 1. पागल 2. शेखी

पंच – कलेस[1] के बेस भय, मै बहु सहे कलेस ।
कब मै इनको दहौंगो, लहौंगु कब सुठ देस ॥ 236 ॥
चितवित चित मै तउ लखौं, जउ हत ससकर पाँच ।
तांहि हते बिन कितौ किम, इनै चितीयौ साच ॥ 237 ॥
जग ससांक[1] के भ्रंस ते, कब मन होवै कोक ।
कब सनमुख आति होइ कर, चिद रवि को अवलोक[2] ॥ 238 ॥
भौ मन मन सुह तउ गनौ, जउ सुख कौ सुख मांन ।
जां सुख मै सुख को नहीं, तूं तउ तिह सुख जांन ॥ 239 ॥
बीन बीन कर बीन मै, हुइ चित जो चित लीन ।
यां ते जम[1] को दीन कर, अनते[2] जम कर दीन ॥ 240 ॥
मीठ मीठ कर जो ठटी, लखी बात सो मीठ ।
जो चित को चित सो लगे, किवलनुमा[1] लौ डीठ ॥ 241 ॥
दौर्‌यो दौर्‌यो फिरत है, आउ भौत[1] को दौर ।
जो सुभाव ए समझ धर, तउ तूं नह भव चौर ॥ 242 ॥
तन मानव बेरा लखो, पुनि इह बेरा जोइ ।
अब जउ भवनिधि तरैं, नहि तउ तूं पटु[1] किम होइ ॥ 243 ॥
सार सार बातादि जो, जां बिन होइ असार ।
तन अस को जो सार भन, मन न तांहि किम सार ॥ 244 ॥
तन ही दोखा कर भनो, आन आन नह कोइ ।
जो कोई मन आन को, तो तउ तिह बिन होइ ॥ 245 ॥

---

236 1. योगशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के क्लेश — (क) अविद्या (ख) अस्मिता (अहंकार) (ग) राग (घ) द्वेष (ङ.) अभिनिवेश (मृत्यु के भय से उत्पन्न क्लेश)

238 1. चाँद 2. देखना

240 1. यमराज 2. अन्त में

241 1. कैवल्य

242 1. डर

243 1. चतुर

षट-विकार[1] मन मे लखो, लखा सुन निंदा कूप ।
जो याँ को सुध नाच मन, सो हारयो जिम जूप ॥ 246 ॥
कौतक पिंजर पाहि तन, याँ मे सो जन सार ।
जो बक अस[1] सो सुख चहे, सो किम हंस[2] अपार ॥ ॥ 247 ॥
लख गलानमय[1] गरत[2] तनु, ताँ मे गरत न होइ ।
याँ मे कोई गरत मन, भयो बरत ही सोइ ॥ 248 ॥
कपटी मुनि जो तनु गनो, सुच[1] चिक[2] ते सुठ सील ।
नातिर मन चरचा लखो, लखो मले तिह चील ॥ 249 ॥
तिय[1] सुत मित[2] हित हितु हित, तूं चाहैं बहु लोग ।
ए गन तो कउ चाहगे, जब तुह पर है भोग ॥ 250 ॥
जाह अनुपचे सुपच मन, जिह दुख ते दुख जोइ ।
जब तुह दुख को दुख गहे, तब सुकचैन सु होइ ॥ 251 ॥
क्रीडा म्रिग[1] से नाच नच, जाँ हित नित[2] सुन बीर ।
जब इम नाचे नाच नह, तब हत बोल अधीर ॥ 252 ॥
गन जब बन[1] गन धन[2] गनो, पर जन जन गन भील[3] ।
निज को म्रिग को सब गन, किम सुहि सुख सुख सील ॥ 253 ॥
मेरे मेरे जाहि मन, तेरे तेरे नाहि ।
तेरे तेरे नाहि तब, जब जम लियो जाँहि ॥ 254 ॥
तूं मन सठ[1] ते सठ भयो, हसहे जम तुह नीत[2] ।
जो तो कउ नह चाह हैं, तूं चाहैं तिह चीत ॥ 255 ॥

---

246 1. प्राणी के छः विकार — उत्पत्ति, शरीरवृद्धि, बालपन, प्रौढ़ता, वृद्धता, मृत्यु ।
247 1. हस 2. हंस
248 1 गलानि युक्त 2. गर्त
249 1. त्वचा 2. चिकनी
250 1. स्त्री 2. मित्र
252 1. हिरण 2. प्रतिदिन
253 1. जंगल 2 धन 3. अन्य पुरुष
255 1. मूर्ख 2. नियत

या जग में को हितु नहि, मै आनयो निह तात ।
मोह गनो प्रबीन अति, जो गन सो ठन मात ।। ।।256 ।।
औरनि को मै वृथा गुन, एह अचंभो याह ।
कपटी झूठे बुलबुले, भेजी जग मै आह ।। 257 ।।
याह जगत् मै सार नह, कर देखो बीचार ।
जिउ कदली के बोस मै, कहो कछु है सार ।। 258 ।।
जगत जाल सो है लखो, भ्रम गुन बिन र नाह।।
याह मुकत ते मुकति लह, फसयो जीव जो आहि ।। 259 ।।
सेस आदि सत लोक लो, लोक लोक प्रति लोक ।
इन मन मै मन सार नहि, मनह मलि क्रित कोक ।। 260 ।।

अथ अनित्तता द्रिश्टि

काये मठ सो तन लखो, पुन लख इन लघु नीव ।
जो या मै सद ह्यो यह, कहो कवन सो थीव ।। 261 ।।
जो फूटे जूटे नही, तन कायो काच ।
जो जो याँ को साच मन, भनो भने सो साच ।। 262 ।।
तनहु तुरग मै बस सुनो, कोई हो इमवास ।
ताते नागर सो गुनो, जह जिह ऐसो आस ।। ।। 263 ।।
काचे मन हैं साच तनु, साचे मन हैं काच ।
इनमे साचे कौन है, कर बिचार मन साच ।। 264 ।।
राचह रहो इन देह को, यारी तेज दै बीर ।
एतो तोकउ तजैगी, लगेगु जब जम तीर ।। 265 ।।

---

256 1. कुशल
257 1. दूसरों 2. आश्चर्य
258 1. काले तथा लाल रंग का हिरण 2. बोलना अथवा दुर्वचन कहना ।
260 1. शेष नाग लोक (पाताल लोक) 2. गिनना
3. स्वर्ग की वस्तु खरीदना
261 1. कौन 2. स्थान
264 1. कच्चे 2. बनना
265 1. प्रिय 2. मित्रता 3. त्याग देना

कृत्रिम पुतली त्रिगुन तो, करैं त्रिन गुन आदि ।
जब इन काल समुझ लिय, तब भय सठ बिन मारद ॥ 266 ॥
कुल कुल घट की घटक लख, जाल काल को काल ।
इन हेंगद लख मुदत जो, तो तउ मैन बिसाल ॥ 267 ॥
गन गुन तेरे कोर नह, गनो काल को कोर ।
रावर इन हित दौर कह, ए रावर ते दौर ॥ 268 ॥
निज कुल तुं चारो लखैं, चारो लखहै काल ।
चारो को दावो कहैं, तहाँ चारो ही भाल ॥ 269 ॥
काल सु खेलै खेल को, खेलि खेट अखेट ।
जो वा ते भाग्यो चहे, मारे ताको फेट ॥ 270 ॥
जहाँ प्यारनि को प्यार करि, कर है पी न बिसाल ।
तहाँ प्यारनि को ताकि कर, होवे काल कु साल ॥ 271 ॥
बाजो डंका काल को, संका यां मै नाहि ।
तबल बाजहै बेद जो, बाज सुनावे वाह ॥ ॥ 272 ॥
कान लाग जासुन लो, तेत केत मन बात ।
भनो काल मे बात इम, देव दनुज होखात ॥ 273 ॥
कह्यो मंत्र इम काल ने, हो गन जग को खात ।
हरि बिमुख जोई अहे, सो मुह घोर बख्यात ॥ 274 ॥
धायो धायो तूं फिरैं, नह तो कउ मन लाज ।
आयो आयो काल गन, कह जावैगो भाज ॥ 275 ॥

---

266 1. रोष

268 1. निबारना

270 1. शिकार

271 1. प्रिय जन

272 1. शोर

274 1. प्रसिद्ध

275 1. भागा भागा

जग फूले फूले नहीं, झूले काल हिंडोर[1] ।
जो चित को चित मैं लखै, लखो ताह सो तोर ॥ 276 ॥
देखो काल की बेल मैं, जो जो जग मैं आहि ।
सो सो तामै नाहि है, जो जो चिद मैं चाह ॥ 277 ॥

<u>अथ बैराग बरनन</u>

बीत राग[1] सो भाखिये, जाह राग नहि भीख ।
जिम चंपक[2] को अलि[3] लखै, तिम वह जग को लाख ॥ 278 ॥
रहत राग निज देह को, इम समझै गुन बीर ।
जिम समझै परदेह को, चिन्ताहीन अधीर ॥ 279 ॥
राग हीन है जो नरा[1], निज तन को इम जानि ।
जिम अतिथ्य जन छपा[2] मैं, अन के ग्रह को मान ॥ 280 ॥
जिम पतुरी धन को लखै, तिम हि बीत धन जोइ ।
तां को रागी जो भनै, सोई रागी होइ ॥ 281 ॥
बल दधीच[1] हरिचंद[2] सम, निज तन को जो जानि ।
पुन भ्रट साति के सम लखे, ताहि राम को मानि ॥ 282 ॥
कुल जन को इम मन गुने[1], बीत राग जो आहि ।
जिम मृग-गन[2] गन भील को, लखैं सील[3] तिह चाह ॥ 283 ॥
पुत्र[1] सो जो तनज[2] लख, किम पुत्र है सोइ ।
ताते जोइ अधिक लखु, किम अयुक्त वहि जोइ ॥ 284 ॥
मोही[1] द्रोही है लखो, लखो अमोही नाह ।
अर न तिखे को हते यह, चाह हते कहु काह ॥ 285 ॥

---

276 1. झूला
278 1. सन्यास 2. चंपा का फूल 3. भमरा
280 1. मनुष्य 2. क्षपा अथवा रात्रि
281 1. दधीच ऋषि 2. राजा हरिचन्द्र
283 1. समझना 2. मृग-समूह 3. शीलवान,
284 1. पति 2. पुत्र
285 1. मोह युक्त

कोक सु कोकी निसा[1] मै, जिम निज मै दुइ बीर ।
बीत राग[2] को जगत मै, समझ भाव इम धीर ॥ 286 ॥
बिना ~~इ~~ राग[1] नर जोन है, तां सम कोई होइ ।
बिना रागनर जो न है, तां सम कोई होइ ॥ 287 ॥
मानो मो मन का लों, अदयो जगत के माह ।
लोक लोक प्रति लोक पिख[1], तह पिख व्यापित नाह ॥ 288 ॥
जगत बिखै[1] बिख[2] से लखो, लखो न सुख मै कोइ ।
सुख मै जोई लखो, सोई नाही होइ ॥ 289 ॥
जग डीठो[1] मीठो नही, है इंद्रायन रूप ।
जो इन मीठो मूढ[2] कहे, सोई पर[3] इह कूप ॥ 290 ॥
नदसु पुर के ठाट जिउ, याह जगत को ठाट ।
जो यामे गन ठाट ठट, ताह लखे किम घाट ॥ 291 ॥
जल उरम[1] सो जग लखो, लखो नाउ सो आउ ।
सवाब सवाब भन ताह को, जो न लखे व भाउ ॥ 292 ॥
अनलप[1] धन सो जग लखो, नह जामे सुख स्वात[2] ।
जामे सो पिक इह गहो, वह तो देख दिखात ॥ 293 ॥
काल कुविजन हो लखो, याह जगत को मीत[1] ।
जो यां को भुग[2] सुख चहे, नह कर सो आनीत ॥ 294 ॥
जगनिधि[1] को जो लहर गन, त्रिग [illegible] जल लहर समान
जोई यां को गह्यो चह, सो त्रिग सो सुख जान ॥ 295 ॥

---

286 1. रात्रि 2. सन्यास
287 1. अनुराग
288 1. देखना
289 1. विषय 2. विष
290 1. कडुवा 2. मूर्ख 3. पडना
292 1. लहर
293 1. जल से भरे हुए 2. स्वाति नक्षत्र की बूंद
294 1. 1. मित्र 2. भोगना
295 1. संसारिक सागर

जग सुख कौ जो चढ्यो चह, ताँ कौ कालहु घाट ।
जो नह वाकौ चढेगो, तो कि[1] काल ते घाट[2] ॥ 296 ॥
मै जानो नह जानि तुम, याह जगत कौ रूप ।
जो यामै नर परैगे[1], तोई परगो कूप ॥ 297 ॥
मीत[1] न मीतअमीत गन, गन जग कौ जो प्रीति ।
नह अमीत तदमीत गन, जो जग होवै मीत ॥ 298 ॥
याह जगत के रंग कौ, जो लख फूले आब[1] ।
ताँहि आब सद किम रहे, ए तउ रंग महताब ॥ 299 ॥
हरि धंदोरि[1] के नगारि लौ, याह जगत कौ आब ।
जो याँ मै खचमच[2] रहे, कुह ताँ कौ कछु लाभ ॥ 300 ॥
जग कौ बल बल मै लखौ, नह बल या मै भाख ।
जो नह याँ कौ भ्रम लखै, तो किम सद बल राख ॥ 301 ॥
नह नर नर आकार तो, रोधूयो ततमै[1] जोइ ।
तिमह[2] लखो या जगत को, बिन जाने सच सोइ ॥ 302 ॥
काच पाच तो जग बन्यो, साच पाच तो नाहि ।
साच पाच तो जान जो, जान साच किम ताँहि ॥ 303 ॥
जो जग कौ साचो भने, भने साच किम वाह ।
जोइ वाह असाच[1] भन, भन असाच किम ताहि ॥ 304 ॥
जग रस के रस राच जो, कहूं किम पटु है सोइ ।
जो नह या रस मो रसै, वाह अपटु किम होइ ॥ 305 ॥

---

296 1. कैसे 2. किनारा
297 1. पड़ना
298 1. मित्र
299 1. शोभा
300 1. तम्बू 2. मिलकर
301 1. भ्रम 2. अंधेरा
304 1. असत्य

हरन ताल[1] के जल समा, पेख, झी जग पेख ।
पुन पेखन[2] पेख न समा, देखत हो सुख देख ॥ 305 ॥
जिउ को कछु सुपन मिलि, नाहि मिलि जागृत सोइ ।
जग मिलाप इम जो लखै, तां पर सयानों कोइ । ॥ 306 ॥
सदन[1] जाल मो फस्यो अति, नर पतुरी[2] जो मूठ[3] ।
सो चिद नभ मो सकुच[4] किम, हम कहु मन किम झूठ ॥ 307 ॥
नार दरी दिप सुत लखो, गृह गिरि जोई जोइ ।
तिह तल नरक रचउ दक्यो, तउ गृह सत भ्रम सोइ ॥ 308 ॥

<u>अथ विवेक बरनंन</u> ।[1]

काहूँ साचे ते बन्यो, तउ जग सच सो साच ।
जउ सच को सच कर गहो, तउ यह सच सो काच ॥309 ॥
साचे को साचो लखो, काचे को लख काच ।
साचे को जो साच लख, सो काचे किम राच ॥ 310 ॥
साचो साचो खीर[1] सो, काचो नीर[2] सु खीर ।
जोइ साच को साच गह, सो मराल सो धीर ॥ 311 ॥
मै जान्यो तैं जान ले, ए भ्रम साचो नाह ।
जिह अग्यान ते साच भ्रम, साचो सोई चाह ॥ 312 ॥
चलमो तो मन ना करो, करो ताहि को सुप ।
तिह जिउ कुबक जउ गहो, तो भ्रम हो भ्रम कुप ॥ 313 ॥
मन को मल हर[1] अल करो, भगी बास[2] तउ बास ।
जग आस न ताते नसै, करम लिपा भ्रम दास ॥ 314 ॥

---

306 1. तालाब 2. देखना
307 1. स्वप्न
309 1. सदन 2. पक्षी 3. समूह 4. जाना
312 1. क्षीर 2. जल 3. हंस
315 1. हरा करना 2. गन्ध

जोरो जोरो[1] छिति को, चित कर चित मो बीर
तोरो तोरो वाह को, चित कर जग ते धीर ।। 315 ।।

महज महज[1] मखनूत[2] लौ, जग ते काढो साच
पुन तुह[3] के छग लौ कढो, ताँही मो पुनि राच ।। 316 ।।

अजा[1] सु मैंढो[2] परख जिमि, कूप जगत मो जोइ ।
तिम ही गहेजु चिती को, तिह बिन पट्टु जग कोइ ।। 317 ।।

जिम नुयारे मे हार कर, गहत कनक को धीर ।
तिम ही चिद को जो गहे, वही मो बीर ।। 318 ।।

जग ते नुयारो चित कहैं, नहि चित कर चित जोइ ।
तिह कहनो एसो गनो, जिम धन[1] धुनि[2] बिन भोइ ।। 319 ।।

जग ते भिन्न चिद नह गह्यो, भन इम मम चिद जोइ
ताँ को ही इम तुम लखो, जिम घट[1] ऊरो[2] होइ ।। 320 ।।

आदम[1] मै आदम लखे, जो आदम सा नास ।
जो आदम चिद नह लखे, किम आदम लख तास ।। 321 ।।

जगत रजत कलधत लखो, चित मुकती सत[1] जाँन ।
याह लछ्छ जो उलट लख, सुधी ताँहि किम मान ।। 322 ।।

जो नरू[1] हुइ चिद नाहि लखे, वह किमहूं नरू होइ ।
याते सरमायपति भनो, लखे बरत को कोइ ।। ।। 323 ।।

जग आवै जावै सही, सही न ताते सार ।
चिद तउ ऐसे नाहि सही, सही सु ताते धार ।। 324 ।।

---

316 1. जोडो जोड़ो
317 1. धीरे धीरे 2. मक्खन 3. तुष
318 1. बकरी 2. तिंह
320 1. बादल 2. ध्वनि
321 1. घड़ा 2. जो पूरा भरा न हो
322 1. आदमी
323 1. सीपी
324 1. नर
325 1. नदी 2. गंगा (पवित्र नदी)

जग सत्ता अपगा[1] गनो, आतम सत्ता गंग[2] ।
यां मे जोई नाहगो, कहु किन हूह सो भंग ॥ 325 ॥
जग असार को छोर[1] कर, कर व्रिति[2] निज सो लीन ।
जिम कपोत[3] निज सदन, सो पती बुयावे बीन ॥ 326 ॥
ज असार सो सार गहि[1], जैसे गहे सराफ[2] ।
गुनी मुनी स्रुति[3] हूं कहे, हमहूं भन न अजाफ ॥ 327 ॥
जानुयो जानुयो जान सम, याह जगत को रूप ।
यामि सउ चित सार है, चित सारे सो भूप[1] ॥ 328 ॥
अहो सुभोग न भोग हितु, जो जग साधन साध ।
निजानंद[1] को ग्यान तिह, किम होवै आराध ॥ 329 ॥
बार बार चित सार यउ, जग असार नहि सार ।
जउ होवै कछु सार ए, तउ छिन सत[1] नहि बार ॥ 330 ॥
छिन[1] मे होवै और कछु, हुइ पुन और कु और ।
यां ते गने असार जग, यामि बुधि है कोर ॥ 331 ॥
सारासार सु भिन्न कर, वही सार चित सार ।
कर सायल[1] जिउ बास हित, काहे झुमो उजार ॥ 332 ॥
गहो व्रितित तित खडग[1] सी, जामो अदभुत टेक ।
करे एक को छिब न ही, छिब करे कर वह एक ॥ 333 ॥

<u>अथ सम ।</u>

सारा सार सु चीन[1] कर, निज मन को गह चीन ।
जैसे खोजी (खैाज) गह, गहे चोर को बीन ॥ 334 ॥

---

327 1. छोड 2. वृति 3. कबुतर
328 1. पकडना 2.सुनार 3. वेद
329 1.राजा
330 1.आत्मानंद
331 1. सत्य
332 1. क्षण
333 1. फकीर
334 1. तलवार
335 1. पहचान

कर विवेक[1] जउ मन गहो, तउ हुइ सुख महानि ।
जिउ न्रिप[2] मंत्री क्रूर[3] को, गह कर हुइ सुख आन ॥ 335 ॥
इहो खोर[1] मन न्रित्य मैं, मन मै मान[2] अनीत ।
तिह ते नागन करन को, धार नीत किम चीत ॥ 336 ॥
जउ विवेक मन को गहे, तउ निज छत्र झुलाइ ।
सेना जो गन ताह की, तउ अनुकूल सुहाइ ॥ 337 ॥
सूत्रधार सो मन लखो, पुतरी करन सुमान ।
कहो करैं वह न्रित्त[1] किम, जउ हुइ ताकी हानि ॥ 338 ॥
गहन गहन नित भ्रमत है, गहे न मन को जोइ ।
तउ तिह जो दुख करन दे, तिह ते घट[1] किम सोइ ॥ 339 ॥
या मन . केहरि[1] सो लखो, तन बन[2] सो सुन मीत ।
जो याकौ नीके हने, सो विचरे निरभीत[3] ॥ 340 ॥
खोटो मोटो गनो मन, कहो क्रित[1] किम होइ ।
जो याकौ क्रिस करेगे, पीनो होवे सोइ ॥ 341 ॥
मन खोरो[1] की क्रिरित जो, है बहरी वह पीन[2] ।
कैसे ताति जीव बच, बचे सु परम प्रबीन[3] ॥ 342 ॥
विखै[1] सु संचै[2] पर सुनो, मन ताबा है जोइ ।
तदाकार हुइ ताह को, लखो हेतु या सोइ ॥ 343 ॥
मन ही ते गन सूल[1] गन, मन ही गन को मूल ।
मन ही असे काम कर, नह जा सो वा सूल ॥ 344 ॥

---

336 1.बुद्धि 2.राजा 3.क्रूर
337 1.हानि 2.छोड़
338 1.नृत्य 2.हानि
339 1. कम
341 1 सिंह 2. जंगल 3. निडर
342 1. दुर्बल
343 1. बुराई 2.जानना 3. निपुण
344 1 दिखायो 2. संचय 3. एकाकार
345 1.खोटा

नर मै नर सोई गनो, जोई मन को दाब[1] ।
सो ही जग को चबेगो, हने तांहि जम धाब ॥ 345 ॥
जग बासन[1] को गहो इम, जिम योगी गह पौन[2]
जो सम ऐसी नह करे, किम नह तिह जग गैन ॥ 346 ॥
पिहित सु घट की अगन[1] को, नह जिम फैले धूंह[2] ।
जो जग बासन गहे इम, वांही सुध सम हूइ ॥ 347 ॥
मन कपूर की जगत मो, गह है जोई बास ।
ऐसो समो[1] सु भयो भस्म, भस्म तां को भस्म दास ॥ 348 ॥
वही बीर मै बीर भस्म, वही धीर मै धीर ।
वही समी मै समी भस्म, नह जिह बास न पीर[1] । ॥ 349 ॥
जग बासन लख, लाख कर, मन कर तिह जो रोक ।
किम तांको कोटो कई, जमहूं नह जिह टोक ॥ 350 ॥
जग बासन दासनि[1] हूइ, चित को चिति जब बास ।
तबै सुकम ~~सु~~ क्रम सुख लहे, करम सिंधा भस्म दास ॥ 351 ॥

<u>अथ दम</u> ।

ब्रह्म करन को दम न जो, [illegible] दमक हिये है सोइ ।
ऐसे तां को दम करो, नह रह दम तां मोइ ॥ 352 ॥
म्रिगपति[1] बिलकसु बाज कर, करि मूसा खग सोम ।
जाइ जोमा इन सोम को, तिम हत कर नह जोम ॥ 353 ॥
मन कर कर नह रोक कर, पुन करनी कर जोइ ।
करनी सोई जानिये, और अकरनी होइ ॥ 354 ॥

---

346 1. नियंत्रण
347 1.वासना 2.पवन
348 1. आग 2.धुंआ 3.वासना
349 1. सम की स्थिति
350 1.पीड़ा
352 1. गुलाम
353 1. शेर

करम कूकरी[1] सी मनो, जिह जन को लपटाइ ।
तरक सरस्ट कर हटक जउ, तउ तां ते बच जाइ ।। ।। 355 ।।

मन भावत के विखै[1] लभ, जो नर अति सुख पाइ ।
तां ही मै मन कै मनो, मयूर-नित्त[2] है नृयाइ ।। 356 ।।

जिम पतंग पच रूप सो, नह इम पच है जोइ ।
सुठ नैना सोई लखो, लखो और नहि कोइ ।। 357 ।।

नर अलि जोई बास[1] हित, कमला कमलं चाह ।
जउ वामै वह फसे अति, जम[2] मतंग[3] हत[4] ताहि ।। 358 ।।

अहि[1] म्रिग[2] जिउ जग नाद[3] को, जो जो चाहे मीत ।
सोइ सोइ ही मरेगो, इही नीत सो नीत
।। 360 ।।

तीन लोक सो मीन[1] जिउ, जग रस जोई चाख ।
ताही के मन सुवाद को, जाल काल सो लाख ।। 361 ।।

तरसयो तरसयो फिरै जो, बसु सपरस[1] की चाह ।
सो किम तरसयो नहि रहैं, हरि सपरस किम ताँहि ।। 361 ।।

लख पतंग अलि को लखो, लख म्रिग मीन मतंग[1] ।
इक इक रस कर ढंग इन, किम न काल नर इंग ।। 362 ।।

इक इक रस वारे फसे, किम न फसे नर जोइ ।
जो नाही तिह फसेगो, भ्रम बर ताँही कोइ ।। 363 ।।

दौर दौर जग रस लभे, नाहि लभे अति दौर ।
करे दौर हरि ध्या क नहि, किम नह सति बौर[1] ।। 364 ।।

जिह रस ते सभ रस रसे, तिह रस हित कर दौर ।
तां हित जोई नाँहि कर, किम नाही सो चौर ।। 365 ।।

---

355 1.* कुतिया
356 1. विषय 2. मयूर-नृत्य
358 1. गन्ध 2. यम 3. मतवाला 4. मारना
359 1. सांप 2. मृग 3. ध्वनि
360 1. मछली
361 1. स्पर्श
362 1 हाथी
364 1. पागल

अहो लहो या जगत मो, बरू नाही रस कोइ ।
तउ हू यां मो गम रसे, एही उदभुत कोइ।। ।।366 ।।

अहो लहो या जगत को, ठग को स्थु बजाइ ।
यां ते यां मो ब्यत हैं, किम न अंत दुखु पाइ ।। 367 ।।

जिउ जिउ जग रस चखेगो, तिउ तिउ हरि रस दूर ।
जाइ दूर ते दूर जो, लखो सुकाल मजूर ।। 368 ।।

त्रिग गन अद रस लग लो, गनो करन को धार ।
नह जो इन को ठकेगो, सम त्रिति तांहि उजार ।। 369 ।।

लखो धार मो धार ए, जो न करन को धार।
याह गहे बिन तुम लखो, चले गाइ किम सार ।। 370 ।।

तन न्यारी मो तुम लखो, पंच -करन गन मांन ।
जउ वह भिन भिन गन चलें, तउ किम बस जांन ।। 371 ।।

भिन भिन चल गन करन जो, जो इन की गति रोक ।
लावेगा चिद एक मो, सो किम चिद न विलोक ।। 372 ।।

त्रिति सत तउ ही रहेगी, करन चटक जउ ठाक ।
सोई इन को ठकेगो, जो इन इन की झाक ।। 373 ।।

अथ उपरत ।

मन कर कै उपराम जो, जग मन ते रह चीन ।
यां ते भिन उपरित को, नही स्म को बीन ।। 374 ।।

जिम जाचक अति सुम ते, रह उप रत्त सुन मीत ।
इम ही जग ते जोरहे, वही निपट पटु चीत ।। 375 ।।

---

366 1. बडा
367 1 भ्टकना
368 1. नौकर
370 1. इन्द्रियां
371 1. पंच-इन्द्रियां
372 1. देखना
374 1. यत्न
375 1. भिखारी

चातक[1] कातक मो सुनो, जिम रस ते सु उदास ।
जो जग ते सद इम रहे, करम तिन्ह तिह दास || 376 ||
जैसे चारो घास को, के हरि[1] के मन नाँहि ।
जामै होइ उपरत्त सुन, है जग तैसे ताँहि || 377 ||
जलनिधि को जिमि लाघ्यो कर, महाबीर भ्रम बीर ।
भ्रमनिधि को इम लाँघ कर, महाबीर भ्रम धीर || 378 ||
नाँह चाह सत संग की, मन सुख[1] को जिमि होइ ।
ताँते तैसे जो रहे, वहै उपरत्ती जोइ || ||379 ||
जोग न जग दुख पेखिये, सो पेखो तिह कोइ ।
भ्रम ते नह उपराम जो, सो नर सोई जोइ || 380 ||
या जग ते नर को विदा, किमन होइ उपराम ।
उन की मति अति तीछनँ ताँ ते लख दुख ठाम || 381 ||
जिह नर जग ते दुख लख, तिह दुख लख किम कोइ ।
ताँको सउ सोई लखै, ताँ सम जोई होइ || 382 ||
कामन कामन किधो कर, किधो लगन को लाग ।
किधो दीठ की दीठ लग, है सु राग मो जाग || 383 ||
पंछक[1] के जिम बस पर्यो, होइ म्रिग्ग[2] उदास ।
जो इम सद जग ते रहे, तिह उपरत की आस[3] || 384 ||
इम सच ते बेमुख[1] हुइ, जो ही मो पुछताइ ।
जिम रण ते सूर[2] लखो, सो उपरामी गाइ || 385 ||

---

376 1. पपीहा
377 1. शेर
379 1. संकीर्ण अहंकार युक्त
384 1. शिकारी (चिड़ीबाज) 2. मृग 3. आशा
385 1. विमुख 2 योद्धा

त्रिय में जनती नारि जिमि, मै धन ते मै गाइ ।
इम जग ते जो मद रहै, सवाब सवाब तिह गाइ ।। 386 ।।
जो उपरामी नर सुनो, सो किम वाचो जानि ।
वाचो लखा है सार जब, यह वाचो है मान ।। 387 ।।

अथ ततिक्षया बरननं ।

तिक्षा ततिक्ष्या[1] इम करो, जिम पादप[2] कर जानि ।
सुख दुख अन[3] को यह सहैं, कर सुख अन को मानि ।। 388 ।।
हर हर[1] दुख मै जो करे, जो सुख मै हुइ ढीठ ।
सत सुख ताँ को पीठ दै, पुन जम[2] ताँ को पीठ ।। 389 ।।
जो नह दुदि[1] सहेगो, सो किम गुर को मानि ।
जिह मानि बिन तुम सुनो, नह संसृत[2] किम हानि ।। 390 ।।
मान मान जु गहेगु, लहेगु सोई दुख ।
जोई याको सहेगु, लहेगु सोई सुख ।। 391 ।।
कर जो हा हा दुक्ख मै, जो यह जग सुख चीत ।
तिह चाह्यो मै चाह कर, सो दुख पावै नीत ।। 392 ।।
जोइ ततिक्ष्या[1] कर सुनो, सम मन लाभा लाभ ।
गनो ग्यान अब ही सुनो, तिह उर बस[?] आभ ।। 393 ।।
पंच बरख[1] के बाल केर[2], जिम सम मानामान[3] ।
तिम मन को गह कर सुनो, मनत ततिक्षु जानि ।। 394 ।।
गनो चिहन बाधिक की, ततिक्षु पर ही ठीक ।
महाँ ग्यान भ्रात के, पहुच्यो जाइ न जीक ।। 395 ।।

---

388 1. सहनशीलता 2. वृक्ष 3. दोनो

389 1. हाय हाय 2. यम

390 1. दुख 2. संसार

393 1 तितिक्षा

394 1. वर्ष 2. बालक 3. मान

ततिछ्छु ही तन ते सुनो, लई सिख[1] हुइ दीख[2] ।
पति वाँको सम सुनो, राज सुख अरु भीख || 396 ||
सुधी बीर या जगत मो, लख्यो ततिछ्छु हीय[1] ।
गन मनादि अति बीर जो, बिना मान जिह कोय || 397 ||

अथ सरधा बरनन ।

जो सरधा मो सरधा कर, सो लह सरधा टोर ।
सो सरधा गुर बेद को, सोई चिद मै जोर[1] || 398 ||
भटकै अटकै कहु नहि, बिन सरधा नर जोइ ।
जिम न भटक घट चंद्र सो[1], अरधा उरध मै सोइ || 399 ||
बहु अद्भुत है जगत मो, ए अद्भुत अति टोल ।
उपल ईस जो ईस सो, सरधा[1] ते वह बोल || 400 ||
बिपद काल दोकाल कर, जब जब हुइ सुख फोत[1] ।
तब तब सरधा परखिये, जिउ परखे कलधौत[2] || 401 ||
सरधा मधु[1] रुत सी लखो, नरु तरु को कर केल[2] ।
बिन सरधा नर सिसर[3] तर, कहु किम हुइ सो बेल || 402 ||
हुइ सरधालु सेव[1] कर, करी स्रवन[2] जिम मान ।
गुर सु बेद सम ते अधिक, करिये ताँको जान || 403 ||
किम ऊरो[1] पूरो लखो, सरधायुत नर जोइ ।
किम पूरो ऊरो लखो, जु बिन सरधा नर कोइ || 404 ||
सरधायुत नर को लखो, रविमणि सो बुधि बीर ।
रवि गुर सनमुख होत ही, प्रगट अनल जिम धीर || 405 ||

---

396 1. शिक्षा 2. दीक्षा
397 1. हृदय
398 1. शक्ति
399 1. ज्योति
400 1. श्रद्धा
401 1. मौत 2. सोना (जिसकी मल-मैल-धुल गई हो)
402 1. बसंत 2. वृक्ष 3. शिशिर
403 1. सेवा 2. श्रवण कुमार
404 1. ऊना (कम ज्ञान वाला)

जिम ससिमणि सीत को लख, स्रव दे आपन आप ।
तिम सरधायुत नर गनो, द्रवे आप गुर जाप ॥ 406 ॥
गुर जलधर[1] जिम स्वात दे, जउ तिम चातक[2] होइ ।
चाह बिना सुख त्रिपत नहि, लख बहु सुर सर जोइ ॥ 407 ॥
जिम चकोर ससि[1] को लखे, तिम गुर को लख धीर ।
दुख अनल[2] को ताप तउ, किम छुह तुम को पीर ॥ 408 ॥
सरधायुत नर को लखौ, बुधि पतिबरता[1] नारि ।
जिम वह पति को नर धरे, तिम वह गुर गुर धारि ॥ 409 ॥
नलन[1] नलनी[2] गन गनो, जिम रवि ससि लख फूल ।
तिम गुर लख जो सद फुले, फल सोई सुख मूल ॥ 410 ॥

अथ सवाधान बरननं ।

जग मै जो सवधान गन, सवाधान किम सोइ ।
जो रह गुर स्रुति वाक मै, ता सम किम वह होइ ॥ 411 ॥
बैठत ऊठत चालता, गुर स्रुति वाक सुधार ।
जा धारे ते धार मन, भ्रमधारा ते पार ॥ 412 ॥
हुइ कै अति सुचेत जो, गुर स्रुति वाक बिचार[1] ।
सो कैसे भ्रम परेगो, परेगु जो बिन सार ॥ 413 ॥
सावधान हुइ कै सुनो, गुर स्रुति वाकह[1] धार ।
जा धारे बिन गन गनो, भ्रम सो बहे हजार ॥ 414 ॥
सवाधान बिन जो नरा, किम लह है निज सुख ।
सवाधान बिन जिम न्रिप[1], किम दल दल जग दुख ॥ 415 ॥

---

407 1. बादल 2. पपीहा 3. तालाब
408 1. चन्द्रमा 2. आग
409 1. पतिव्रता
410 1. कमल 2. कमलिनी
413 1. चित में धारण करना
414 1. वाक्य
415 1. नृप

जो नर पहरेदार जिम, गुर स्रुति धाको सोइ ।
सो सुख कब कहु किम लहे, हम तउ एही जोइ ॥ 416 ॥
जाह बचन सो गन गनो, जगत झाक[1] झलकाइ ।
तां सो तउ सुख कोइ नहि, सुख तउ सुध बच माहि ॥ 417 ॥
सो परपंची बचन गन, जो प्रपंच बद[1] जूथ ।
जो वा को धर चलेगो, सो किम सुख मो गूथ ॥ 418 ॥
निज चिद ही को जानना, जांहि बचन ते होइ ।
जोई वाको गहेगो, सावधान भ्रम सोइ ॥ 419 ॥
कपट रहत हुइ जो सुने, कपट रहत की बांन ।
सावधांन परवाह ते, कहो कोइ जग जान ॥ 420 ॥
छीर[1] नीर जिउ मिली गन, गन बानी[2] जग जोइ ।
हुइ मराल[3] गहि तांहि जो, सावधान भ्रम सोइ ॥ 421 ॥

<u>अथ मुकति इछा बरननं ।</u>

तत्तवं[1] की जो एकता, वही मुकत्ति मुकत्ति ।
जिह वांकी द्रिड इछ्छ भ्रम, सोतुर[2] करन जुगत्ति[3] ॥ 422 ॥
सांखि[1] आदि की मुकति ते, कहु किम होइ मुकत्ति ।
जो जो वाको इछ्छ कर, सो सो दुख्ख भुकत्ति[2] ॥ 423 ॥
जो चिद तउ चिद होइगो, जउ चिद को हुइ ग्यान ।
होइ सोइ प्रिय इछ्छ ते, ताते तिंह द्रिड ठान ॥ 424 ॥
सुख मै जोई भ्रम गनै, सद सुख को किम लोर[1]
जाह वाह की लोर है, वही मुकति को टोर[2] ॥ 425 ॥

---

417 1. झांकी
418 1. कहना
420 1. वाणी
421 1. क्षीर 2. वाणी 3. हंस
422 1. तत्व 2. आतुर 3. युक्ति
423 1. सांख्य - दर्शन 2. भोग करना
425 1. आवश्यकता 2 लगन

भ्रमु[1] सु[2] भ्रमतह भ्रम्यो जग, याति रंगा रंग ।
जो पेखत[2] हो याह भूल, प्रिय सुख तिह नह भंग ॥ 426 ॥

निज भूलनि माली रह्यो, याह जगत आराम ।
जो इन फूलनि फूल पिख, लह किम सो बिसराम[1] ॥ 427 ॥

निज अभिमुटान अयान[1] ते, हुइ नाना[2] आकार ।
इ विवरत[3] परणैम भव, जाह हरे सुख सार ॥ 428 ॥

भै अपात रमणीक जो, जो लख तिह रमणीक ।
ताहि इछु किम मुकति की, लख अनीक तउ ठीक ॥ 429 ॥

कुमारादि चिती मै सुनी, जग को चित्यो भाइ ।
जो यह सो खेल्यो चहै, सोई पायो जाइ ॥ 430 ॥

जोइ जगत के सुख खप्यो[1], सो किम होइ मुकत्त[2] ।
जिम पिंजरा मो पछि[3] जत, किम सो लहे सुगत्ति ॥ 431 ॥

याह जगत के रंग को, नाह लख्यो जिह रंग ।
पुन सद रंग उमंग चह, किम तह होइ उमंग ॥ 432 ॥

जग सुख मै सुख जौन है, सद सुख मै सुख जौन ।
लखे भेद जो याह मो, लखे मुकति को तौन ॥ 433 ॥

गीक[1] ठीक करि लख्यो जिह, याह जगत को रूप ।
सदा रूप को लखे, सो ,सो किम पर[2] पुन कूप ॥ 434 ॥

अनहद्‌ गन त्याग कर, कर जो प्रिय को एक ।
सो किम संप्रित नह हरे, किम नह कर पिद टेक[2] ॥ 435 ॥

---

426 1. भ्रम 2. देखना
427 1. विश्राम
428 1 अज्ञान 2. विभिन्न 3. विवर्त
431 1. डूबा हुआ 2. मुक्त 3. पक्षी 4. मद गति
434 1. गलत 2. पड़ना
435 1. लगन

चार करन कर सुक्ष्म अति, सुचित्त भूमि जिह होइ ।
बीज मंत्र को बीज जो, लह फल अमिता कोइ ।। ।। 436 ।।
चार चार अन बंध सो, हुइ तामें अकार ।
चार कर न को संध जो, हुइ नामो अति सार ।। 437 ।।
चार करन युत जोन नर, तिह को क्षिति[1] मणि जोइ ।
गन को जोई मुकट मणि, ताहि मुकट सब सोइ ।। 438 ।।
चार करन युत जोन नर, चिद क्षित मोती होइ ।
मान मान अति तो न तर, पुन किम पर भव सोइ ।। 439 ।।
मधु नादि को नहि लाभ सब, बिन करिया[1] नर कोइ ।
गुर बिन भवनिधि नैय्यों यह, बहु किम सुयानो सोइ ।। 440 ।।
नादहि पुर[1] मो कुटि[2] जिम, भ्रमतो लहे न ठौर[3] ।
तिम करमो के वस्त हुइ, जीव भ्रमै जग बौर[4] ।। 441 ।।
पंच कोत[1] मो भ्रमे जो, जिम भ्रम नादि मो कोट ।
गुर दयालु बिन को कटे, बिन कट किम दुख मीट[2] ।। 442 ।।
तरयो तरयो ठीक वह, जोई गुर को मानि ।
बुड्यो[1] बुड्यो ठीक वह, जो नह गुर को जानि ।। 443 ।।
गुर मोगुर सोई भलो, जो भव ते गह काढ ।
दान ग्यान बिग्यान[1] दे, पाति दुख गन बाढ ।। 444 ।।
चिद चित मोती जोन है, सद गुण सागर जोन ।
सो गुर सोई जानिये, बीर बीर मो तीन ।। 445 ।।

---

438 1. धृति
440 1. क्रिया
441 1. भरी हुई 2. कीड़ा 3. ठिकाना 4. पागल
442 1. कोसी 2. दूर होना (मिटाना)
443 1. डूबना
444 1. विज्ञान

जिह गुर को चरपनि[1] गह, लगे न धुक्का कोइ ।
गुर सो गुर तोई लखो, जोई ऐसो होइ ।। 446 ।।

सिख बेनती ।

दौर दौर मन दौर पिख, नाहि को पेख्यो गोर ।
स्री गुर तुम ही गोर पिख, तुम ही हन[1] मन दौर ।। 447 ।।
मम अनाथ को हाथ गहि, स्री गुर तुम मम नाथ ।
और मिख मन मै पिखे, तुम तो नह उन गाथ[1] ।। 448 ।।
स्री गुर तुम बिन को गहे, या भव मो मो हाथ ।
अन[1] जो भव मो पेखिये, तो मम स्वारथ साथ ।। 449 ।।
गनिका भीलनी आदि गन, जिम तारे रघुनाथ ।
इम गुर मुझ को तारिये, गह कै भव मो हाथ ।। 450 ।।
जग तउ दुखिया मन गनो, मन ते दुखिया मोह ।
तो दुख को दुख हरो तुम, तुम ते तुम ही जोह ।। 451 ।।
नाथ नाथ के आन दर, तुम रे दर[1] पर आइ ।
फिरना कर फिरना करो, पुन वह दर न दिखाइ ।। 452 ।।
दुखिये को दुख तो करे, जो दुखिया नहि आप ।
सो गुर ऐसै तुम लखे, तुम ही चित मो थाप[1] ।। 453 ।।
मोह कुलनि कुल मम, निज तुम इम मम होउ ।
तोरो[1] तोरो वाह को, तुम ही तुम ते जोड ।। 454 ।।
पंचकोस[1] मो इम बसों, जिम पड़ी[2] बत कोस ।
ग्यान कोस मै तउ बसो, जो उन ते बढ पोस ।। 455 ।।

---

446 1. पाँव पकड़ना अर्थात शरण में जाना
447 1. मारना
448 1. गाथा
449 1. अन्य
452 1. दरवाजा (द्वार)
453 1. स्थापित करना
454 1. तोड़ना
455 1. काशी 2. पड़ी

गन बरनाश्रम[1] धरम के, मो पग[2] मो जंजीर ।
इने काट के कढो मम, श्री गुर तुम ही बीर ॥ 456 ॥
सुत मित हित मै नाच नच, जिम मरकट[1] नचनाच ।
ए दुख तुम ही हरोगे, तुम ही सच मो सच ॥ 457 ॥
जिके अनल बन अनल सो, मै करि को कर दाह ।
मो गुर त्राता[1] करो तुम, तुम ही घन[2] ते चाह ॥ 458 ॥
पंच कलेस[1] कलेस कर, किम रह मो मन धीर ।
सुधागी सुधागी मीन तुम, तुम बिन हन[2] को पीर[3] ॥ 459 ॥

<u>गुर बचन ।</u>

जग को जोई दुख लखु, निज सुख सोई लाख ।
जोई वाको नह लखे, सो किम निज रस चाख ॥ 460 ॥
मै जान्यो तहकीक कर, तूं मम मो मनधीर ।
तूं ही मनानिधि लघ्यो पद, जिम साध्यो अति बीर ॥ 461 ॥
जग को सीठो जान करि, मख चित गम गच होहिं ।
या ते रावर कथ्यो पद मै अदभुत ए तोहि ॥ 462 ॥
मुख ते करवा[1] जग कहैं, मन मो मीठो मानि ।
ता को सुख किम होइगो, मन ते तुम ही जानि ॥ 463 ॥
स्याबाश[1] स्याबाश तोहि को, मै जान्यो जग रूप ।
अब जानो निज रूप को, जाह रूप सुख भूप ॥ 464 ॥

<u>अथ स्रवन बरनंन ।</u>

आन स्रवन[1] को हान करि, कर चित को उपदेस ।
इही स्रवन अट पिंड[2] सुत, नही आन को लेस ॥ 465 ॥

---

456 1. वर्णाश्रम 2. पांव
457 1. मरघट
458 1. रक्षा 2. बादल
459 1. पंच-क्लेश – अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश 2. मारना 3. पीड़ा
463 1. कड़वा
464 1. शाबाश
465 1. श्रवण 2. अष्ट-सिद्धि

चित ही चित चित[1] जानिये, आदि अंत जग माँहि ।
या मो दिखो द्रिसृटति इक, जिउँ घट मो म्रिद[2] आहि ॥ 466 ॥
यह मत जिह बिन द्रिसृय नाहि, काल काल मो कोइ ।
जैसे रजत सु है नही, बिना सुकति भ्रम जोइ ॥ 467 ॥
जाँ साचे ते साच सो, ए भ्रम भासे मीत ।
ताँ साचे को साच मन, झूठ असाच यह चीत ॥ 468 ॥
जाह सता ते सुरत भ्रम, सह सत भ्रम जब जोइ ।
ताँ सत को सत जो लखे, लहे सुपावन सोइ ॥ 469 ॥
चिद सु जला[1] ते बिन सुनो, जग कमल किम होइ ।
ताँ बिन चोई जोइनो, सह जोइनही जोइ ॥ 470 ॥
चिद ते जोई भिन्न कर, द्रिश को साच दिखाइ ।
साची कहनी साच तउ, नाँ तर झूठ सु गाइ ॥ 471 ॥
ऐसे चिद को जो सुने, लह सोई होलास ।
जिम सुरसाईन रंक सुन, होवे सुख को तास ॥ 472 ॥
ऐसे चिद को जो सुने, सुख ताँको भ्रम लोइ[1] ।
जैसे सुत[2] बिन को नरा, सुत को भ्रम सुन होइ ॥ 473 ॥
सद सद चिद जो हम सुने, तो किम धर पुन गात[1] ।
जैसे मुकता मुदत हुइ, सुन के पी[2] की बात ॥ 474 ॥
जोई चिद को प्रेम सुनि, किम नह लह सो छेम ।
क्षुधा[1] त्रिखातर[2] जोन नर, अन जल को सुन प्रेम ॥ 475 ॥

---

466 1. प्रतन्न 2. मिट्टी
470 1. जलाशय
473 1. प्रकाश 2. पुत्र
474 1. शरीर 2. प्रिय
475 1. भूख 2. तृष्णा से युक्त

जैसे चिद को जो सुने, सोई होइ निहाल ।
जैसे अहि[1] मृग[2] सबद को, सुन कर होय कुसाल ॥ 476 ॥
चिद को इम अभ्यास कर, हर[1] के जग की आस[2] ।
कामी के मन कामना, जैसे अति ही वास ॥ 477 ॥
गन जोती[1] जिह जोत ते, जगमगाति जग सोइ ।
सो जोती चिद की गनो, गनो नाहि अन[2] कोइ ॥ 478 ॥
जांह सता क रवि रसमि सों, हुइ कर करे अलोक[1] ।
पुनां तास ते अधिक हुइ, सुर[2] सु लोक कर ओक ॥ 479 ॥
चिद बिन जो जग रूप है, इम जानुयो तहकीक[1] ।
जो जो ऐसे जानि है, सो सो होवे ठीक ॥ 480 ॥
जल होवे ज्यों तपुत तां, रस होवे नेबाह[1] ।
काम कामना छोर[2] कर साति चिद की चाह ॥ 481 ॥
अनल उपल जल जाल सों, बसैं जीव जो जाल ।
उन को लखो निबाह जउ, तउ चिद ही को माल ॥ 482 ॥
जो नां ही मन तरक कर, जगत धाक ही धाइ ।
सद धायो सोई फिरे, यां ते सद दुख पाइ ॥ 483 ॥
जग पटता मैं परे[1] जो, ए पटता किम चीन ।
पटु की पटुता इ लखो, जो निज को गह बीन ॥ 484 ॥
जग मैं हुइ निज सुख चहे, ताकी गति इम जोइ ।
पत्री[1] फासुयो को ससै, जिउ चाहे नभ कोइ ॥ 485 ॥

---

476 1. सांप 2. मृग
477 1. त्याग 2. आशा
478 1. ज्योति 2. अन्य
479 1. प्रकाश 2. मृत्यु
480 1. प्रमाण सहित ज्ञात करना
481 1. निर्वाह 2. छोड़ना
484 1. पढ़ना
485 1. पक्षी

अहो चिदु गति हंस की, नर तन[1] हू को पाइ ।
निजानंद[2] को नह लखै, लख्यो ताहि वृथा आइ ॥ 486 ॥
निजानंद को रूप लख, निज को कर कै दूर ।
जो नह ताँ को लखेगो, तो भ्रम मो भ्रम धूर[1] ॥ 487 ॥
चिद ही मन को तिरस्कार, चिद तउ तिस ही जानि ।
नह जाँ को वह तिरस्कृत भ्रम तिरस्कृत ताँहि वृथा मानि ॥ 488 ॥
निजानंद जिह नह लख्यो, जउ तिह नह कह ठाइ ।
याँ में अस्स्ट संदेह हैं, ताते आइ सुपाइ ॥ 489 ॥
नर मो नर सोई लखो, निज सालह जो जोइ ।
जाहि दमक सुर लोक मैं, सु प्रकास पुनि सोइ ॥ 490 ॥
सब ते पर[1] चिद ही लखो, चिद ते पर किम कोइ ।
जो नह ताको पर भने, नाह लख्यो तिह सोइ ॥ 491 ॥
अणु महत्त मनह महतु जो, पुन सुर ही भ्रम जोइ ।
ऐसे चिद को जो लखै, नह लखा तिह किम सोइ ॥ 492 ॥
असति भाँति प्रिय रूप चिद, नाम रूप भ्रम कोइ ।
असति भाँति प्रिय रूप भ्रम, ताही ते भ्रम सोइ ॥ 493 ॥
भ्रम[1] अग्यान ते हम भयो, जिम रजु[2] मो अहि[3] आहि ।
जाँ अग्यानि ते है भयो, तिह समुझो मन माहि ॥ 494 ॥
काल काल जग कोइ नाहि, जा अग्यान बिन मीत[1] ।
सो तउ चिद ही जान मन, बसे चीत जो मीत ॥ 495 ॥

---

486 1. शरीर 2. आत्म आनंद

487 1. धूल

491 1. ऊपर

494 1. संसार 2. रज्जु 3. साँप

495 1. मित्र

गन अंतर बिन जो न गन, लख अघकूटा नह तीन ।
ताहि को अज्ञान ही, करत जगत दुख भीन ॥ 496 ॥

शुद्ध अज्ञान अनादि कट[1], कट सो चितअत[2] जानि ।
तहँ चित को चित जो लखो, तो यह पायो हानि ॥ 497 ॥

शुद्ध अज्ञान भ्रम जो न है, ताहि रूप भ्रम धार ।
है नाहीं है नाह गन, इत[1] आदिक सब नाह ॥ 498 ॥

सो पुनि ता को कहत सब, जो अज्ञान को रूप ।
अघट घटनि के करन को, लख पटु तो अनूप[2] ॥ 499 ॥

भ्रम[1] को भ्रम को ईश ते, यह अज्ञान बिन ईश ।
जऊ धार है भयो, तऊ न ता बिन दीश ॥ 500 ॥

ईश सकति ते तत्त[1] भ्रम, भ्रम सोई पच्चीस ।
ताते भ्रम को भ्रम[2] भयो, बिन सकति किम दीस ॥ 501 ॥

याह जगत को हेतु है, उरन नाभि सो ईश ।
याह हेतु सो हेतु जो, विपुल[1] बुधिकर दीस ॥ 502 ॥

जीव है ईश प्रतिबिंब[1] जिह, सो चिद रवि सो जानि ।
सोई इक तब होत है, जब उपाधि की हानि[3] ॥ 503 ॥

चिद विभु[1] नभ सो बिंब न हो, बिंब उपाधि कर आहि ।
बिन उपाधि शुध एक जो, वही लखो लख ताहि ॥ 504 ॥

जीव ईश मैं भेद[1] नाहि, भेद पक्ष मैं जोइ ।
तात्विक तउ इक चिदहिं लख, बरै सु किम यह होइ ॥ 505 ॥

---

497 1. इच्छा 2. दृष्टि
498 1. इति
499 1. अघट न घटने वाली 2. अनोखा
500 1. संसार
501 1. तत्त्व 2. संसार
502 1. बहुत
503 1. छाया 2. सूर्य 3. हानि
504 1. सर्वव्यापक
505 1. अन्तर

बिन अग्यान किम जीव भव, बिन अग्यान किम ईस ।
जाहि बिना ए नाहि भव, तिह बिन किम भव दीस ॥ 506 ॥

जीव ईस को भिन्न गन, नह चिद इक जो मानि ।
वाह समझ ते लखो किम, होवै भव[1] को हानि ॥ 507 ॥

चिद अग्यान ते भव भयो, भयो पुन अधुनाय ।
मुर[1] ही नह तिह ग्यानि ते, ग्यान गुरू ते पाय ॥ 508 ॥

अनूप अनूप सो मानिनो, इह अधुयास को रूप
जाते ही ए होइगो, पर[1] सोई दुख कूप ॥ 509 ॥

ती[1] सुत[2] वित[3] मो ए लखो, किम मो सम को होइ ।
बार बार इन को पिखौं, याते दुख ही मोह ॥ 510 ॥

तन मन पुन गन करन को, गन कृत तनु निज मानि ।
यों सो लख्यो द्रिसटांत[1] इक, अज कुमार सिर आनि ॥ 511 ॥

गन करनै कर तनु जो, ऐसे जिम निज सो मानि ।
तस कर सुत[1] के दुख मनै, जिम पित निज सो हानि ॥ 512 ॥

ठकुर को अध्यास कर, नह किम तो दर काइ ।
कहु किम तो ठरकाइगो, जो इनको दर खाइ ॥ ॥ 513 ॥

करन धरम जिह मरन लख, मरनी बरनी सोइ ।
वाह पीर ते तीर जिह, वही पीर सुत जोइ ॥ 514 ॥

मेरो मेरो करै जो, किम नह तो दुख सेय ।
मेरो मेरो तजै जो, किम नह तिह सुख देय ॥ 515 ॥

---

507 1. संसार
508 1 मृत्यु
509 1. पडना
510 1. स्त्री 2. पुत्र 3. धन
511 1. दृष्टांत
512 1.पुत्र 2. पिता

तन मन धुन गन करन को, कर कोई अध्यास[1] ।
सुरमो नरमो होइ को, सुइ तिह जिम सुखरास ॥ 516 ॥
परहरि हरि को पेख कर, तर धर कर्यो वास ।
छाइ गहे ते हरि गिर्यो, कर सुख इम अध्यास[1] ॥ 517 ॥
है मेरे हाथी भलो, मैं नाथी पेड ।
इम अध्यास ते दुख लहै, नाथी[1] भाथी[2] भेद ॥ 518 ॥
मेरे सुत मित[1] को भलो , इम दुख मै मन दुक्खा ।
कर अध्यास दुनि इम भनै, मेरो तन मन दुक्ख[2] ॥ 519 ॥
दुख मो सुख अभिरत मिलत, अनुभव को सुख मानि ।
अनातम मो अध्यास कर , इम आतम कर जान ॥ 520 ॥
तन मन धुन बहु करन गन, धुन ती[1] सुत मित जानि ।
इन सुख दुख दुख दुख भनै, लखै न तिह सुख आनि ॥ 521 ॥
सुत मितादि गन को भनो, चित[1] हित हित है जोइ ।
जो ताही को हित भनै, मन जिम सुखानी तोइ ॥ 522 ॥
सुत मित चित को पेख कर, इह जो मन होलास[1] ।
तो जिम सद होलास नहि, नह इक तड मह तास ॥ 523 ॥
अध्यक लोक सुलोक सुख, जो इन मै सुख जोइ ।
पड चह सद सुख नह लहै, ताह मथा मन होइ ॥ 524 ॥
जग सुख मै सुख जो न है, जिम चिद सुख मै सुख जीन ।
तांहि पेख जो गहैगो, लहैगु सुख जिम तीन ॥ 525 ॥

---

516 1. मिथ्या-ज्ञान
517 1. भ्रांत धारणा अथवा मिथ्या-ज्ञान
518 1. नाथा करने वाला 2. पकड़ारी
519 1. मित्र 2. x दुखना
521 1. स्त्री
522 2. चित्त
523 1. प्रसन्नता

मन रस मे रस जाइ को, सोई रस को मीन[1] ।
ताहि रस मे रसे जो, मन ही रस मह लीन ॥ 526 ॥
फिर फिर जग दुख को चहै, जहाँ वहाँ है तार ।
गहो करम के कर[1] गहो, नर पकरो तोमार ॥ 527 ॥
प्रिय ताकी प्रिय को गनो, मेरो मन है लीन ।
जग्यो रम्यो पक्यो जग, ताहि दुख को मीन[1] ॥ 528 ॥
आदि अंत [illegible] मध्य[1] वेद के, जो चिद वढ्यो[2] वेद ।
ताहि वेद को वेद बिन, जो ताहि को भेद ॥ 529 ॥
कोरी[1] कुहक सी लखो, जाँ चिद बिन नह होइ ।
सोई दुखिया होइ अति, व ही अदभुत[1] जोइ ॥ 530 ॥
गुनी सुनी मन यो भनै, रवि मे तम नह होइ ।
व अदभुत एक [illegible] ठौर लख, व ही अदभुत जोइ ॥ 531 ॥
माइ[1] सकति मो सकति ए , वर चिद को जो[2] ईस ।
जाँ तब ताको लखे जो, को दुख तामो दीस ॥ 532 ॥
सब उदगम[1] है जाहि ते, जाति प्रिय सुख सेय[2] ।
सोई तत्त्वमसीत लख, जाहि लखे सुख देय ॥ 534 ॥
सुन्दर सौ सु जगत प्रिय, जानी जी को जीर ।
जो ता मो सुख सोध गह, गहेसु तो प्रिय पीर ॥ 535 ॥

---

526 1. पत्थर
527 1. हाथ
528 1. पत्थर
529 1. मध्य में 2. बढ़ना
530 1. कोढ़ी
531 1. अंधकार
532 1. माया 2. जीव
534 1. जन्म 2. लय

जब लग चिद विभु[1] नों सुनो, मन मह कुछ अब दूर ।
.. तब लग गुरु अभ्यास कर, गुना होइ तो दूर ॥ 536 ॥
निज बोध[1] कण सोध चित, जो जो कर उपदेश ।
जब ही तिह उपदेश दृढ़, तब तिह कर आदेश ॥ 537 ॥
तन मन धुन गन करन को, भ्रम तजिये अध्यास[1] ।
ए जड़ कारज मन मयो, मम चिद है परकास ॥ 538 ॥
मैं मन करन प्रकाश करि ,मैं चिद सु है प्रकाश ।
ऐसे लख को लखै जो, तो तू ही सुख रास ॥ 539 ॥
तू ही कूटस्थ[1] त्रिगुन को, लख अध्यास कर चीत[2] ।
त्रिष्ट हूँ तो ते भिन्न नहि, सो शिष्ट[3] सुनि मीत ॥ 540 ॥
शिष्ट शिष्ट है शिष्ट मन, याँ ते शिष्ट[1] न जानि ।
तू ही दृष्टि[2] को शिष्ट कर,याते शिष्ट निज मान ॥ 541 ॥
चिद सुख कुछ कछु चाहि को, तो किम जग अब जानि ।
जड़ को लाभो लोभो, तउ तिह सुख न हानि ॥ 542 ॥
गुनी मुनी गनपो भयो,भयो वेद धुन पार ।
निजानंद के मनन बिन, हनन करै जम[1] धार ॥ 543 ॥
निजानंद के ध्यान बिन, मन करनी भ्रम जानि ।
जोबन[1] हीण त्रिय नार मो, लीला हाव[2] करवानि[3] ॥ 544 ॥
निजानंद के ध्यान बिन, गन बातह भ्रम जोइ ।
द्रव्य[1] हीण व्यापार[2] को , करै बात जिम कोइ ॥ 545 ॥

---

536 1. सर्वव्यापक
537 1. आत्म-ज्ञान
538 1. मिथ्या ज्ञान अथवा कल्पना
540 1. कूटस्थ 2. समझना (सोचना) 3. श्रेष्ठ
541 1. श्रेष्ठ 2. दृष्टि
543 1 यमराज
544 1. यौवन 2. हावभाव 3. प्रदर्शित करना
545 1. द्रव्य (धन) 2. व्यापार

अब बरनौ निज लखे बिन, जैसे जानौ धीर ।
अहृत[1] सहृत[2] मन भुत गनौ, दिल बिन जैसे कीर ॥ 546 ॥
तन मठ तौ को[1] मठ नही ,आतम देव सु देव ।
पूजन चारन तौ चाव नह, ताह सेव तौ सेव[2] ॥ 547
बिल कर जानो बिल बिना, बिध इम जानुषो मांन ।
जैसे निज को पदयो[1] गन, बिन बुधि कोई यांन ॥ 548 ॥
चित्र बसन तो चिति चितो, सब बुधित चिह मार ।
निज ते जो तिह भिन्न गन, कहिये ताँको काहि ॥ 549 ॥
जीव जगत को बाध कर, रहे सेख[1] जो सुष्ठ ।
जो तिह निज ते भिन्न गन , गन किय ताँको सुष्ठ ॥ 550 ॥
गन बाधा के हरन हित, गन [illegible] बाधा कर धीर ।
बाधा हो नह बाध हरि, बिन प्रतीत सधीर ॥ 551 ॥
बाधा तो गन होत गन, जीव सजीपत आदि ।
बाधा तो तह होत गन, बिन प्रतीत कर यादि ॥ 552 ॥
पट[1] में चित गन चित्र[2] गनु, चिह मे तउ जग लाख ।
साखी साख सु जानि इम, इतिये जो गन लाख ॥ 553 ॥
चिहु मुख कूटस्थ जो, सोई आतम आह ।
गन हो होए मुक्त गन, हनूयो भेद इम चाह ॥ 554 ॥
वहो ब्रह्म[1] वह सख गन, वहो कूटस्थ सु जांन ।
बुध मो मिल कूटस्थ भेद, घट के नभ तो मांन ॥ 555 ॥

---

546 1. अहृत 2. सहृत
547 1. कोई 2. सेवा भावना
548 1. पढ़ा लिखा
x549
550 1. अन्त
553 1. पर्दा 2. चित्र
555 1. ब्रह्म

जीव ईस जिम सुद्ध ब्रह्म, तिम मै करौं बखान[1] ।
बुद्धि भास जल भास पर, नमैं भास चिउ मानि ॥ 556 ॥
चिद सुध नभ सुध सौं लखो, माखन मिलि ब्रह्म ईस ।
सही यही है जीत ब्रह्म, जब सुध ब्रिथ[1] मिलि दीस ॥ 557 ॥
ईस जीव कूटस्थ को, सुना सुद्ध को मान ।
बिना बिचारे भेद बहु, तातै ना बहु जानि ॥ ॥ 558 ॥
जैसो यथा[1] तैसो भलो, तिम तैसो भ्रम तोह ।
जउ तूं तैसा निज लखे, तउ सुख बिनु नहु कोइ ॥ 559 ॥
आदि अंत मध्य[1] जगत के, जिह चिद बिन नहु कोइ ।
कबहूं जाहि झ ादि है, सो तूं ही निज जोइ ॥ 560 ॥
जो चिद के परमादि कर, सुख ही सुख जो होइ ।
जाहि लखे निदुःख[1] सुह, सो तउ तूं ही जोइ ॥ 561 ॥
तन सो निज को ग्यान बिन, भ्रम निज को जब होइ ।
वही याको होगो, वही दुख हर जोइ ॥ 562 ॥
नित्यानंद परमादि है, हम तुम्हरा जी चीन[1] ।
जैसे दशधा गुरु ब्रह्म, नाही निज को बीन ॥ 563 ॥
बारहु[1] करके ग्यान सुह, बिना बाक नह होइ ।
याते हम तुम सो भने, सही बाक[1] ही चोइ ॥ 564 ॥
बच अबंध चिद प्रोक्ष कर, कर अपरोक्ष[1] अति बाक ।
याभि संका[2] होइ जिम, सुह तउ करदै ठाक ॥ 565 ॥

---

556 1. व्याख्या करना
557 1. व्यर्थ
559 1. यथा
560 1. मध्य
561 1. दुःख रहित
563 1. जानना
564 1. शब्द
565 1. अपरोक्ष 2. शंका

तत पदारथ पद लक्ष जो, जब लखै लख होय ।
तब अध्यास को पराभव[1], तब प्रमाद जिम धीम ॥ 566 ॥
काल काल इक लक्षणह[1], भ्रम भ्रम ते इम कोइ ।
एह अनादी नो इमे, लख नाखी जो होइ ॥ 567 ॥
तत पद तूर्व पद लक्ष को, जिन इक लख इह भेय ।
पाह नार को अंक जो, इह ताको नो येय ॥ 568 ॥
जीव तु ईस अभेद यो, जोई मानै पाप ।
आतम घात[1] जु पाप जो, जिम नह ताको पाप ॥ 569 ॥
निहुर जिकर दुर [illegible]र, जब करिये छिन दूर ।
मुरकाल[1] मुरलोक मो, तब जिद जिन को भूर ॥ 570 ॥
देस काल तब है तुनो, तोऊ यं जिम एक ।
तत्व[1] के इम दाय तज, लख को निज मो टेक ॥ 571 ॥
तत्व को लख एक जो, तो लखा तु हो एक ।
छीर[1] छीर जिम एक है, नीर[2] नीर जिम मेक ॥ 572 ॥
तत पद तूर्व पद लक्ष को, जो निज ते भिन्न मानि ।
ताको मन नो बुधा भनो, ताहि सुधी जिम मानि ॥ 573 ॥
चिदानंद को जानि जो, ताको कहिये कह ।
जो ताको नहि जानि है, ताको कहिये काहि ॥ 574 ॥
जो चिद लघु मे लघु गनो, दिर्घ[1] मैं दिर्घ है जोइ ।
ताको जो उर मनन कर, ताहि हनन जिम होइ ॥ 575 ॥

---

566 1.हार 2.स्थान
567 1. मारना
569 1. आत्महत्या
570 1. मृत्यु
571 1. तत्व
572 1. क्षीर 2. पानी
575 1. दीर्घ

अथ मनर्न ।

चित को चित हम चित रखो, जिम वित[1] को रख[2] सूमि ।
सूमि ताँही सो हम रहैं, जिम तिह चितत सूमि[3] ॥ 577 ॥

मन अति दासी होइ कर, देह मोह न दानि ।
अम्पाति निज को हनन[1] कर, कर गति जिन सो मानि ॥ 578 ॥

सूम[1] तु मनह कमठी[2] बधुन सो, जिम चित राखे मीत ।
जउ चित चित सो हम रहैं, तउ तूं मेरो मीत ॥ 579 ॥

श्री गुर दयालु की मनुयो, जउ मन तूं तिह मानि ।
तउ तूं मन तारो भयो, तउ तुहि सुख खानि ॥ 580 ॥

निज चितहु ते प्रकास कर, मानहु कर सम हानि ।
जउ यह मन दृढ़ होइगो, तउ मै जिम सुख खान ॥ 581 ॥

ध्यान ध्यान सो ध्यान जिम, ग्यान ग्यान सो ग्यान ।
मानि मान सो मानि जिम, गानि गानि सो गानि ॥ 582 ॥

चिद जन सो आनंद कर, कै चिद सो जन ठानि ।
कर[1] कोई तोई गहौं, सुख आयो कर हानि ॥ 583 ॥

सब मणि चिद सतता अनंद कर, अहि[1] जन सो सुन मीत ।
जउ कोई तिह मिन गहै, तउ वह जिम मम मीत ॥ 584 ॥

सुख सो चित चितचितो, जगत चितो चित अैत ।
तां इंद्र ताति चितो, तां चिन सुख बहु मैत ॥ 585 ॥

---

577 1. धन 2. कंजूस 3. सूमना

578 1. मारना

579 1. कृपि 2. कछुआ

583 1. हाथ

584 1. साँप

तन तत्व चैतन्य जो, यह होनी पुन जोड ।
स्वड़ ते भिन्न किम होइ तो, ताहि मगन पड होइ ।।
ठीक नीक गुर ने कह्यो, ठीक नीक मन जान ।
जो तू यह तिह समेगो, तो तू ही बुध जान ॥ 587 ॥
आन आन को छोर[1] कर, मोर मोर निज तोर[2] ।
होर होर को जोर[3] कर, हरि निज मो प्रिति जोर[4] ॥ 588 ॥

<u>अथ निदध्यासन[1] ।</u>

अन मो प्रिति अजोर हुइ, हुइ चित मो तिह जोर ।
तिम[2] निदध्यासन स्व ए, ऐसे सुनीयो कोर[3] ॥ 589 ॥
चाहि जोत ते जाग जग, चाहि जोत जग जाग ।
ताहि जोत की जोत सो, प्रित की अब लगलाग ॥ 590 ॥
मोठ मोठ कर जानुयो निज चित यह को आन ।
आन[1] आन को जो मिले, नाह जतन[2] तिह ठानि ॥ 591 ॥
या मन मन को सब जो, चिह जाने चित तार ।
तर्इ चित मो चित अथ्यो, अब आन ध्यानि को टार[1] ॥ 592 ॥
ईश जीव जो होइ कर, सुख दुख लहे अमूल ।
यह प्रिड़ ताँको जो लखै, लखो ताह को मूल ॥ 593 ॥
जो जो जग मो पेखिये, सो तो चिद ही जोइ ।
तर्इ चिन जोई पेखिये, सोई नाही होइ ॥ 594 ॥
चाह लगन ते हम सुनो, कच[1] चित जग ए छूट ।
या चिद ही की लगन ते, आन व लगन सब टूट ॥ 595 ॥

---

588 1. छोड़ 2. आवश्यकता 3. ताकत 4. जोड़ना
निदध्यासन बार बार चित्त वृति को ध्यान में लगाने की क्रिया
589 1. अन्य 2. वास्तव में 3. पंक्ति
591 1. मान 2. प्रयत्न
592 1 टालना
594 1. कच्चा

सकल बोध मै बोध चिद, पुनि अबोध[1] महि बोध ।
तहँ निज को चिद सोध[2] नह, पुनि अबोध ताह सोध को सोध ॥596॥
अविद्यादिक की हानि कर, चाहि बासनो बानि ।
सो तउ मो ते भिन्न नहि, भेद भेद[1] पउ मानि ॥ 597 ॥
सरब त्रिगुन को बाध ते, रहे शेष सत जोइ ।
सो तउ मो ते भिन्न नहि, मो ते भिन्न किम होइ ॥ 598 ॥
अनये जो विरहित कर, जाग्रतादि मो जोइ ।
सो चिद मो ते भिन्न किम, भिन्नत पिखूयो न कोइ ॥ 599 ॥
सो चिद मो ते भिन्न किम, तब मन चिद सब लीन ।
जैसे कारन[1] दूर कर, लखिये तुम अति लीन ॥ 600 ॥
माइ[1] अविद्या भेद करि, ईश जीव भ्रम जोइ ।
पेखा पेख तिह हारयो, निज बिन पिखूयो न कोइ ॥ 601 ॥
चाह सकति ते भव भयो, ताति भव[1] पुन धार ।
पुमर पंच पच्चीस भ्रम, ताहीं को सुबह[2] धार ॥ 602 ॥
चाहि सकति ते करन मन, हुइ चित बानि ।
निज ते जो तिह भिन्न मन, तुम ताको किम ठान ॥ 603 ॥
मुर[1] सत्त्व कर जो मिलूयो, जाग्रतादि मो जोइ ।
सो तउ मो ते भिन्न नहि, गुरन बतायो तोइ ॥ 604 ॥
सत्य[1] ज्ञान अनंत जो, पुन चिद आनंद जोइ ।
सो तउ मो ते भिन्न नहि, कहो भिन्न किम होइ ॥ 605 ॥

---

596 1. अज्ञान 2. शोध
597 1. भेद
600 1. कालिमा
601 1. माया
602 1. संसार 2. स्वर्ग
604 1. मृत्यु
605 1. सत्य

युत कारज[1] अग्यान जो, युत संबंध पुन जानि ।
जाँ मे लखो अद्य[2] तूल, इ तो चिद मय ही ठानि ॥ 606 ॥
स्रवन मनन के जोग जो, पुन निदध्यासन जोग ।
तो चिद त्रिड़ मय अब लख्यो, पर्‍यो त्रिन को भोग ॥ 607 ॥
काल काल का मन नहीं, चिद अग्यान बिन जानि ।
तो तउ मे है भिन्न नहि, श्री गुर कर्‍यो बखान ॥ 608 ॥
अगिन[1] बिना जिम दीप तिम, पुन दिप जिती जानि ।
त्रित जब गिर मो अयी इम, कयी त्रिपित तब आनि ॥ 609 ॥

<u>अथ सक्ष्यात बरनन ।</u>

कर अमलक सम ग्यान जिह, नित्यानंद को होइ ।
बहु तोई आग्रोख अति, कछ सक्ष्यात[2] है जोइ ॥ 610 ॥
नित्यानंद के ग्यान बिन, जिम सक्ष्यात कुछ और ।
ताको होय होइगो, भने मुनी षट धीर ॥ 611 ॥
जिम जल जाति बुलक पे, पुन पक्ष[1] है को तोल ।
तां को जल ही जल दिसे, चिद सक्ष्यात इम टोल ॥ 612 ॥
जो यह रवि सनमुख भए, तो रवि ही रवि जोइ ।
इम सक्ष्यात कुछ जात को, तब इति तब है सोइ ॥ 613 ॥
जिह क्रम ते चिद जो भयो, कुछ तोई जब नास[1]
तब तो चिद ही चिद रह्यो, रह्यो न भिन्न को वास ॥ 614 ॥
सब उपाधि जब नस लख्यो, दस दिस नभ तब होइ ।
इम ही चिद को जो लखे, तो तउ चिद ही जोइ ॥ 615 ॥

---

606 1 कार्य 2. आद्य
607 1. श्रवण
609 1. आग
610 1. बहुमूल्य 2. साक्षात (जीव का ब्रह्म से साक्षात्कार)
612 1. पशु
613 1. सूर्य
614 1. नाश

ईस जीव सो भ्रांति जिह, सो भ्रम चिद को जोइ ।
भई नास यह ग्राह की, ताको यह विधि सोइ ॥ 616 ॥
ठौक नीक तत[1] बोध जिह, तिह चित ही चितवीत ।
यह तो वाको ठौक भ्रम, ताको प्रेय[2] ही नीत ॥ 617 ॥
निज सरूपात चित को परा, भ्रम अद्वैत निज जोइ ।
ताको कलमल होइ अति, होइ तउ यह तिह होइ ॥ 618 ॥
बंध मोक्ष तिह मो कह्यो, पुन यह तीसर जोइ ।
दुह वाको सरूपात चिद, सो तउ चिद ही जोइ ॥ 619 ॥
गन विकल्प को हानि गन, जब सरूपात निज जोइ ।
जउ को धामि तरक कर, यह ताको दुह सोइ ॥ 620 ॥
अत थिर[1] स्थिति भ्रम जाहि की, किम अथिर[2] दुह जाइ ।
है तो चिद चिद होइ जो, थित चिदहू तब नास ॥ 621 ॥
थित चिद उपलक्षण भयो, दुह तोई जब दूर ।
तबै अद्वैत प्रकाश अति, तब चिद ही चिद पूर ॥ 622 ॥
चिद थिति कर उपलक्षण तब, जो तामी चिद जोइ ।
सो तउ चिद मै दुह गयो, भ्रम चिद कर सब जोइ ॥ 623 ॥
ध्यानी तो ध्यानी लखो, चिद ही चिद को जोइ ।
यह जो ताको जोइहै, सो तउ नाही सोइ ॥ 624 ॥
बीन बीन कै बीन्यो, ध्यानी सो भ्रम सोइ ।
जो तर सो जो होइगो, सो तउ वाही होइ ॥ 625 ॥

---

617 1. तत्व 2. प्रिय
621 1. स्थिर 2. अस्थिर

महतो महता पाइ लग, महतो महता पाइ ।
महतो महता को भने, मह तो महता पाइ ॥ 626 ॥

विषयानंद[1] को तृष्ण सो, नह अनंद तो भास
ब्रह्मानंद सो त्रिपत नह, किम तां भी यह बात ॥ 627 ॥

विषयानंद को लहन सो, किम करि तो उद्वेग[1] ।
निजानंद को लाह सो, तो रोके तिह वेग[2] ॥ 628 ॥

निजानंद को सुख पाइ कर, होइ लहन अलगाइ ।
अन चित तिह कछु भास[1] कुछ लउ नह ताह बताइ ॥ 629 ॥

चिद रस जो जन पाइयो, मन रस ताको पाइ ।
तिह रस तिह को आइयो, किम लागि अन गाइ ॥ ॥630 ॥

चिद रस जिह नह जानयो, तिह रस जान न कोइ ।
जान जान के जान मन, अन्न वही है जो इ ॥ 631 ॥

जब ईमह को नव सुने, हासत लग उर आनि ।
तां को उर की पानि तो, कुछ जो तांहि समान ॥ 632 ॥

दुपानी तो दुपानी नहीं, कहि वित[1] की जो बात ।
ग्यानी तो ग्यानी नहीं, सम तिउ[2] जिह नह तांति[3] ॥ ॥633 ॥

तत्ववेत्ता[1] जिम होत है, तत्ववेत्ता तिम जानि ।
जिम अनंद अति ताहि को, तिम अनंद तिह मानि ॥ 634 ॥

जग अनंद अति जाह सो, ता नृप[1] सम नहि कोइ ।
सद अनंद अति जाह सो, तां सम किम को होइ ॥ 635 ॥

---

627 1. विषयों में आनन्दित

628 1. उद्वेग 2. गति

629 1. आभास

633 1. धन 2 समस्या 3. शांति

634 1. तत्ववेत्ता (तत्व-ज्ञान का ज्ञाता)

635 1. नृप

जो ध्याता ध्यानादि त्रय, पुन उपाधि जब होइ ।
ताँ बिन तउ सुख एक रस, भयो तत्त्व वह जोइ ॥ 636 ॥
तत्त्व को निश्चयो[1] मैं भनो, याते सुखमय होइ ।
जो होनी सो होइगो, नह तिह संसा[2] कोइ ॥ 637 ॥
ऐसा चिंतत जिम बिहयो अग, इम तत्त्व को चिद मोइ ।
जिम नाही सो मुकति सुख, भयो मुकति ही जोइ ॥ 638 ॥
सम अनंद है जाह सो, ब्रह्म अनंद सु जोइ ।
तब हूँ सोई जानिये, जिम तामो सुख होइ । ॥ 639 ॥
अहयक लोक प्रलोक सुख[1], तिह पिख नह पल तत्त्व ।
उन को किम को[1] ठग सके, उही गन को ठग्ग ॥ 640 ॥
परंपरा जो वासना, कर सोई अध्यास[1] ।
ध्यान भये वह नह रही, ताते तत्त्व सुखरास ॥ 641 ॥
तत्त्व चउ कोई अग्ग जिउ, इच्छा कर ता आहि ।
लखो करत अकर्त सो, को कह को चाह ॥ 642 ॥
तोय ईंत के लखत को, नह चाहे अग चाह ।
ताँह याव मो पयो सो, कहु किम तृषानो चाह ॥ 643 ॥
निजानंद के ध्यान बिन, कहो मुकति किम होइ ।
जिम किमहूँ जागत बिनाँ, सुपन दुख[1] कट कोइ ॥ 644 ॥
उतपतादि[1] जामि नही, जामि बंधन मोख[2] ।
ताँ लख को लख लाख कर, तत्त्व भयो अति तोख[3] ॥ 645 ॥

---

637 1. निश्चय 2. संशा
640 1. लौकिक तथा पार लौकिक सुख 2. कौन
641 1. मिथ्या-ज्ञान
644 1. दुख
645 1. उत्पत्ति आदि 2. मोक्ष 3. संतोष

सग्य अग्य के करम सो, भयो भेद जिम होइ ।

होइ भेद इम तुम सुनो, पठतु[1] अपठ[2] जिम जोइ ॥ 646 ॥

निज करमन अनुसार जो, सग के करमन जोइ ।

संका बंका ताहि सो, कछु जिम करनी होइ ॥ 647 ॥

सुख के सुख मे सुख नह, दुख के दुख मे दुख ।

गन सब भिन्न नाना लखो, लखो बोध सम सुख ॥ 648 ॥

सुंदरह मनह सग्ग मे, सुंद करत हैं जोइ ।

पाइ हेतु पुन पाइ को, नह दीनो तिह मोइ ॥ 649 ॥

मन भावत बि[illegible] हार कर, जउ सग मन के माँहि ।

सउ तिह पसु[1] को भेद जो, कहो समझ कर ताँहि ॥ 650 ॥

जाँ को चिद को ग्यान नहि, मन भावत नह सोइ ।

यामे होवे सो सुनो, सो सउ चिदवर जोइ ॥ 651 ॥

सुवइ[1] इच्छा बिन वार सो, सुख जग परचा कोइ ।

सग सो है निरदुख्ख अति, सो जिम सामो होइ ॥ 652 ॥

भवतबता कर के सुनो, त्रिय भिख्छक[2] सग होइ ।

लाभ हानि जिम ताहि सो, सुपन[2] जानि तिह सोइ ॥ 653 ॥

भवतबता है राम बिधि, इच्छ अनिच्छ प्रइच्छ ।

सग मे हूँ न पाइये, लखो बड़ी न तिच्छ ॥ 654 ॥

भवत बता[1] कर के सुनो, सम कछु सग सो जोग ।

उध जउ यामो संक को, सउ तिह पावो भोग ॥ 655 ॥

---

646 1. पढा लिखा 2. अनपढ़

650 1. पशु

652 1. स्वयं

653 1. भिक्षा 2. स्वप्न

654 1. तृष्णा

655 1. भवितव्यता अथवा होनहार

भ्रमत बताहूं को सुनो, सग पर नाही चोर ।
तिह फल जानि मिथ्य, यह रही लखो निसारे[1] ॥ 656 ॥

<u>अथ सिख अनुभव बरननं ।</u>

अब मेरो मन मानयो, रह्यो सु जानो जाम ।
जो सो मै सो होइयो, यउ कह्यो गुर मानि ॥657॥
जग मै नाह्यो नाच मनमन , सुख के हित लाग ।
अब मै लह्यो अचल सुख, जब अचल[1] सब जाग ॥ 658 ॥
जिह भ्रम कर मम दुख लह्यो, भ्रम सोई अधूर ।
याही ते मम मूर भ्रम, मम ही ते सम मूर ॥ 659 ॥
बरनाश्रम[1] के धरम जो, सोइ परम जंजीर ।
मो पद मो अब सो नही, गुर कर्यो मुहि[2] धीर ॥ 660 ॥
पंचकोस[1] के कोस बस, मम ही भ्रम युत दोस[2] ।
मम ही को अब सुध्र मन, मन तोरे[3] जब कोस ॥ 661 ॥
जाग्रतादि[1] मो जो बसे, सुख के जीव सु ईस ।
सो तउ मो ते भिन्न नहि, भिन उपाधि कर दीस ॥ 662 ॥
त्रिस जड पुन जड करन को, मम ही करो प्रकास ।
मम को नाहि प्रकास को, सुयह[1] प्रकास मम वास[2] ॥ 663 ॥
भ्रम कर भ्रम सो होइयो, सो गुर श्रुति कर नास[1] ।
मम तउ सुयह[2] परकास सद[3], करम सिंध भ्रम दास ॥ 664 ॥
मम ही मन के दूर पिख, मम ही मन नजीक[1] ।
जो नह समझे भाव ए, नह तिह समझब ठीक ॥ 665 ॥

---

656 1. सार
658 1. अचल
660 1. वर्णाश्रम 2. मुझे
661 1. काशी 2 दोष 3. तोड़ना
662 1. वह अवस्था जिसमें सब बातों का परिज्ञान होता है ।
663 1. स्वयं 2. निवास
664 1. नाश 2. स्वयं प्रकाशित 3. सदा
665 1. समीप

जग बंध को जो नाथ कर तो नाथो मम नाथ ।
इह कहनो जिह नाथ मन, तो होवै किम ... नाथ ॥ 666 ॥
मम ही जग गन[1] को हनौं, हन किम मम को कोइ ।
मम को तोई लोगो, मम ते अधिक जु होइ ॥ 667 ॥
मोह आदि बैताल गन, अरु तीन गन जानि ।
ताहि हते मै नाथ नच, अब भ्रम मैं तुम आनि ॥ 668 ॥
गन सेना जो आसुरी, हनी[1] गनी अब तोइ ।
बहु कैसे वह जंगेगी, हन्यो मूल उन कोइ ॥ 669 ॥
मम जग तेरी गती जो गति होई तो मान ।
तै हुं गत अब होइगो, मै जान्यो ए जानि ॥ 670 ॥
भो प्रमादि[1] अब मत जगो, भई मीठ[2] तव हानि ।
करी मुझ तै क्रिया बहु, मैं भटक्यो बहु जानि ॥ 671 ॥
भ्रम अपार रमणीक गन, मम जान्यो अब छीक ।
जो मम तो नह भ्रम[1] करे, किम हुइ ताहि अनीक ॥ 672 ॥
देख्यो देख्यो नाह को, जिप प्रजतन[1] किम और ।
या बिन कोई और गन, गनिये तोई बौर[2] ॥ 673 ॥
ज्यास परस[1] तिउ काटयो, या जग तर को मूल ।
पुन किम हह हह होइगो, किम हुइ पुन मुह सूल[1] ॥ 674 ॥
जगनिधि[1] मो मम पिक[2] सुनो, कूक्यो बारंबार ।
प्रिय स्वाति तो अ नाहि पिक, गुर घन[3] देख निहार ॥ 675 ॥

---

667 1. लोग
669 1. हनन करना
671 1. प्रमाद 2. कठिनता से (अथवा ज्यों को त्यों)
672 1. भ्रम
673 1. प्रयत्न 2. पागल
674 1. स्पर्श 2. कांटा
675 1. संसार रूपी सागर 2. कोयल 3. बादल

अदमुत ह ही विपुल गन, सुख अब लग दुख पाइ ।
हरी पाप गुर मात पितन , हते तब दुख दाइ ।। ।। 676 ।।
गुर गनि को जो बंदना[1] , सुख को ही सुख सोइ ।
ताँ ते सुख को बंदना, सुख ते भिन्न किम कोइ ।। 677 ।।
मन उपाध[1] तिह नष्ट[2] हुइ , तहँ मिलट नह जोइ ।
पुन जोतिह को भाव कहि, तो मो बिन किम कोइ ।। 678 ।।
होइ पाप तउ लोक हत, जउ दंभ[1] युत भानि ।
मम तो नावो नाव मन, आदि अंतमम जानि ।। 679 ।।
बरु[1] कोई विधि को पिवै, बरु को[2] मेरु[3] उपार ।
इन ते करडो[4] जानिये, मन कर मन को टार ।। 680 ।।
सुभ सु असुभ मन वासना, मन ही त्याग[1] न जोग ।
बरु[2] धामी कर भेत को, दैवे री सुख भोग ।। 681 ।।
मनो राज को राज जो· चिद मै ते व्रिति[1] टार ।
कैसे टारे ताँहि को, मनो नार ते नार ।। 682 ।।
मनो राज को दुख जो, जउ कछु तन मो होइ ।
ताँ को नीके हनैनो, जबै जोग को जोइ ।। 683 ।।
चित्त व्रितना[1] रोध जो, इही योग है योग ।
जिउ जिउ याँ को करैगे, तिउ तिउ पर चित भोग ।। 684 ।।
राजयोग हठयोग कर, मन को रोधो[1] धीर ।
जाँ रोधे बिन सुख नही, भने मुनी षड धीर ।। 685 ।।

---

677 1. उपासना की एक विधि
678 1. उपाधि 2. नष्ट
679 1. दंभ
680 1. भले ही 2. कोइ 3. मेरु पर्वत 4. कठिन
681 1. त्याग 2. भले ही
682 1. वृति
684 1. वृतियाँ
685 1. रोकना

हठ योग अठ अंग युत, जो यामी है भेद ।
बुध प्रवीन तिह गहे जो, हमेनो सोई खेद[1] ॥ 686 ॥
मन वासनि[1] के योग को, योग ही हर[2] है जानि ।
योगहि जीवन मुक्त कर, योगहि कर सुख बहु खानि ॥ 687 ॥
मन वासनि को नास[1] जब, मनोराज तब नास ।
परम प्रकास प्रकास तब, सम प्रकास जह वास ॥ 688 ॥
भ्रम धारा ते पार हुइ, योगी[1] कर के जोर ।
सो ही सिख को पार कर, हर[2] भोगन के भोग ॥ 689 ॥
जीवनमुक्ति[1] प्रसिद्ध को लघु क्रम, मित[2] मित जानौं चीत ।
सोइ रह्यो यह जगत ते, चित मै जागत नीत ॥ 690 ॥
सम आनंदमय होइ कर, जग आनंद ते सोइ ।
लघु बालक जिम सोइ रहि, क्षुधा पान कर जोइ ॥ 691 ॥
परम अरथ सम ही लहे, लहे और नहि कोइ ।
या पर संका[1] जो करे, सखो संकमय होइ ॥ 692 ॥
सप्त भूमका कर सुनो, उत्रोत्तर[1] सुख जोइ ।
अति ही सुख यह वाह मो, सुखमय सोई होइ ॥ 693 ॥
चिद मै चिद जो होवनो, इही मुकति सुख जोइ ।
जिम जिम कर है याह लह, जानो मेधी[1] सोइ ॥ 694 ॥
चिद मै चिद जो होवनो, इही काल कर काल ।
आन मुकति ते मुकति नह, परे[1] काल के जाल ॥ 695 ॥

---

686 1. खेद
687 1. वासना 2. दूर करना
688 1. नाश
689 1. योगी 2. हरना
690 1. जीवन मुक्ति 2. मित्र
692 1. शंका
693 1. उत्तरोत्तर
694 1. बुद्धिमान
695 1. पड़ना

तम चिद चिद[2] मै है गयो, तत तत मै है जाइ ।
पुन तिह बिहु[1] को तिस गहै, दोसा कु दोसी पाइ || 696 ||
तम ही होवै मुकति गन, जहँ कहँ तज है देह ।
यां मै कोई हेतु है, तम ही उर तिह गेह[1] || 697 ||
जब ही त्यागै देह को, यह कह तब तुन मीत ।
शुद्ध चिद मै तब ही तुनो, भने बेद ए गीत || 698 ||
जां लग साधन[1] गन कहे, जां लग जग को त्याग ।
जहँ कहँ तनु को त्याग तम, शुद्ध होई बडभाग[2] || 699 ||
हरि गुरतुत गन को भगो, जनक जननि को मान ।
इन गन की अनुकंप[1] बिन, को कर भ्रम की हानि || 700 ||
हरि अद्रिस्ट सतमय भयो, अद्रितसर कर वास ।
गैन नमों गुह आतमा, समॅत सुभ कम मास || 701 ||
इति श्री मत भाग सिंघ वरम तिखत वरम सिटिम दर्या
सुमन सिंघ आतमयेम विरचते सतमया सुमें भवेत ।

---

696 1. तत्व ज्ञानी 2. शक्ति

697 1. घर

699 1. साधु 2. भाग्यवान्

700 1. कृपा

:-:-

परिशिष्ट - ख

संबंधित चित्र

"हरि अटूट सतसैया" का आरम्भिक पृष्ठ

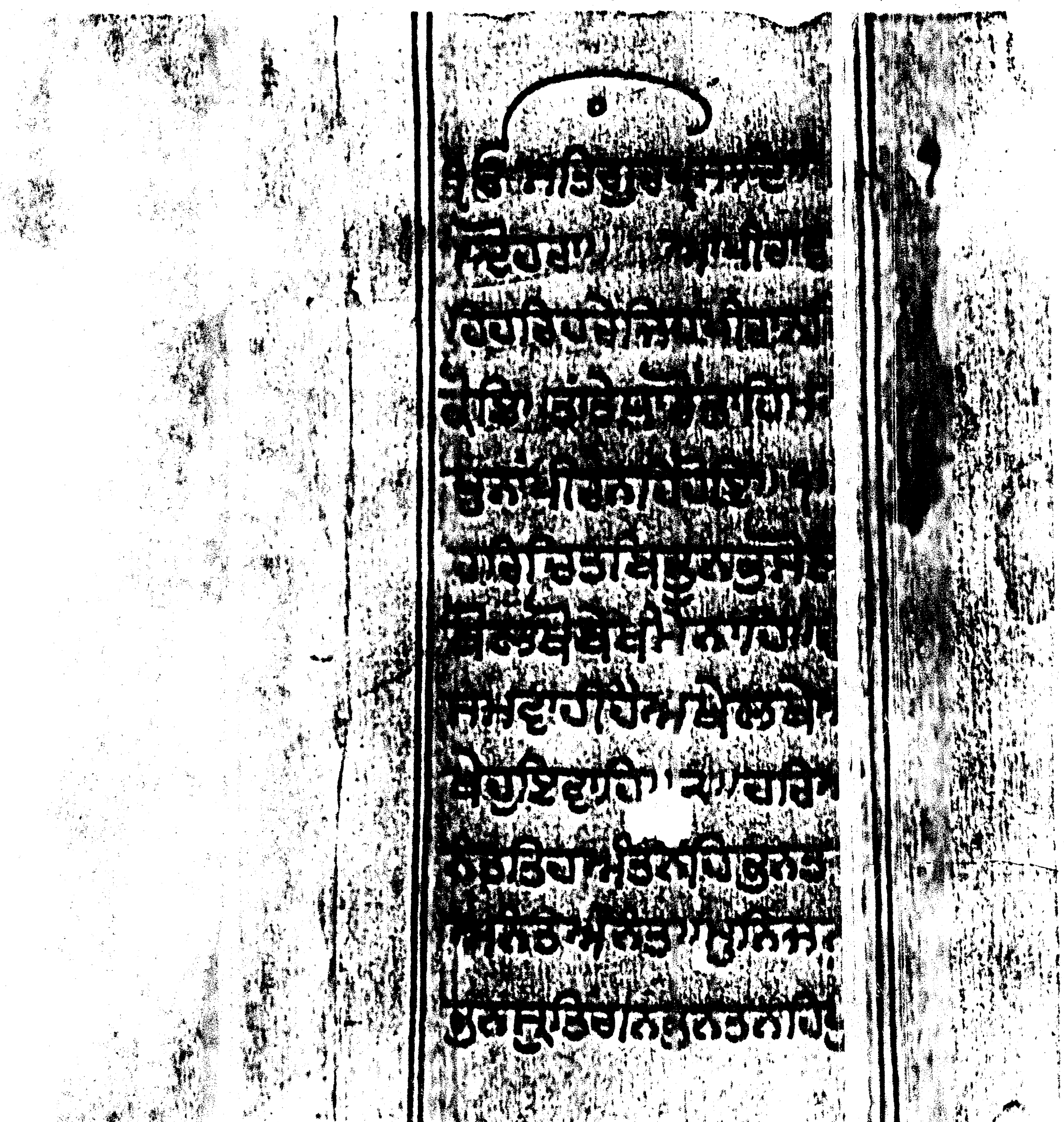

"हरि अदृष्ट सतसैया" का अन्तिम पृष्ठ

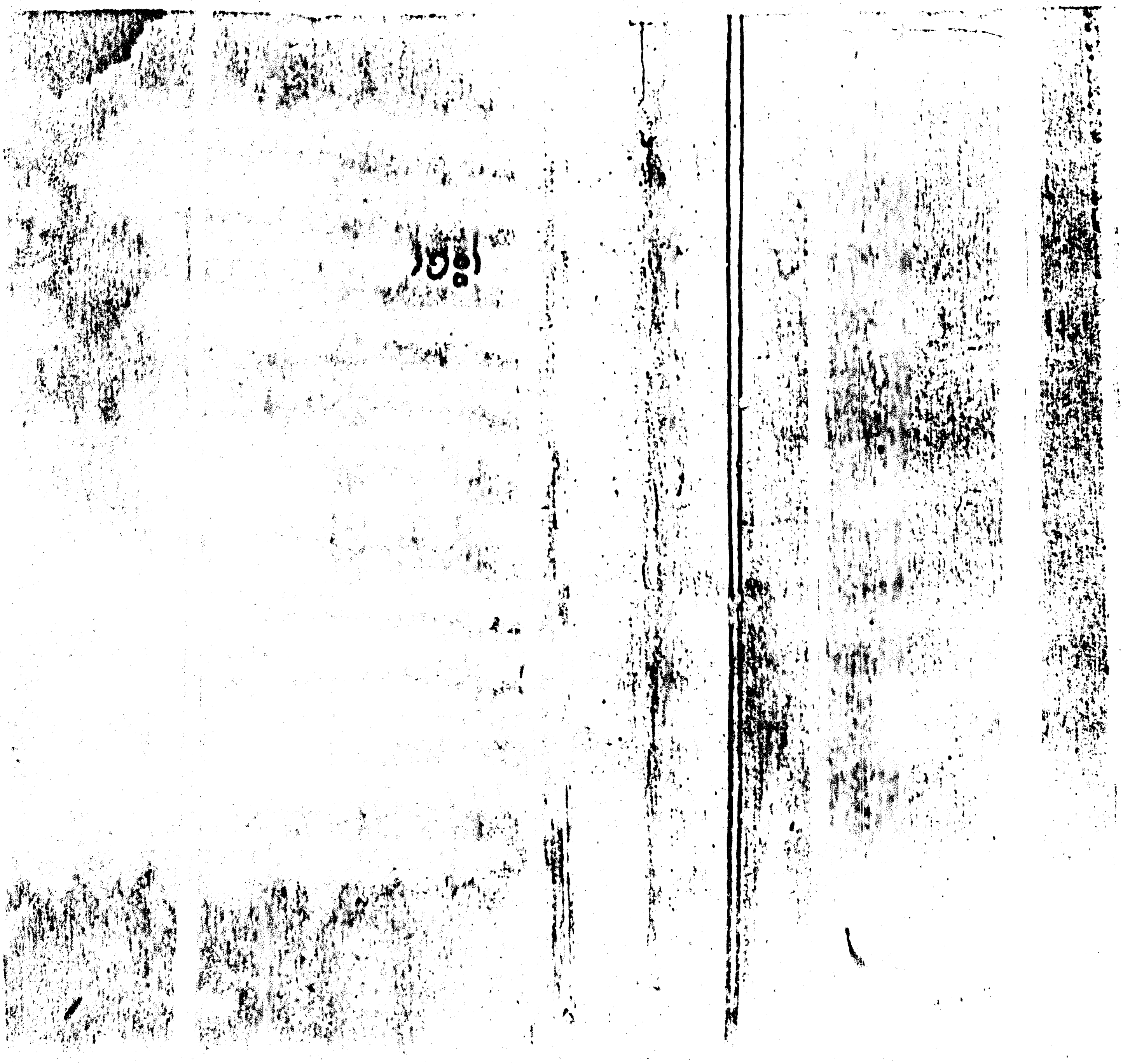

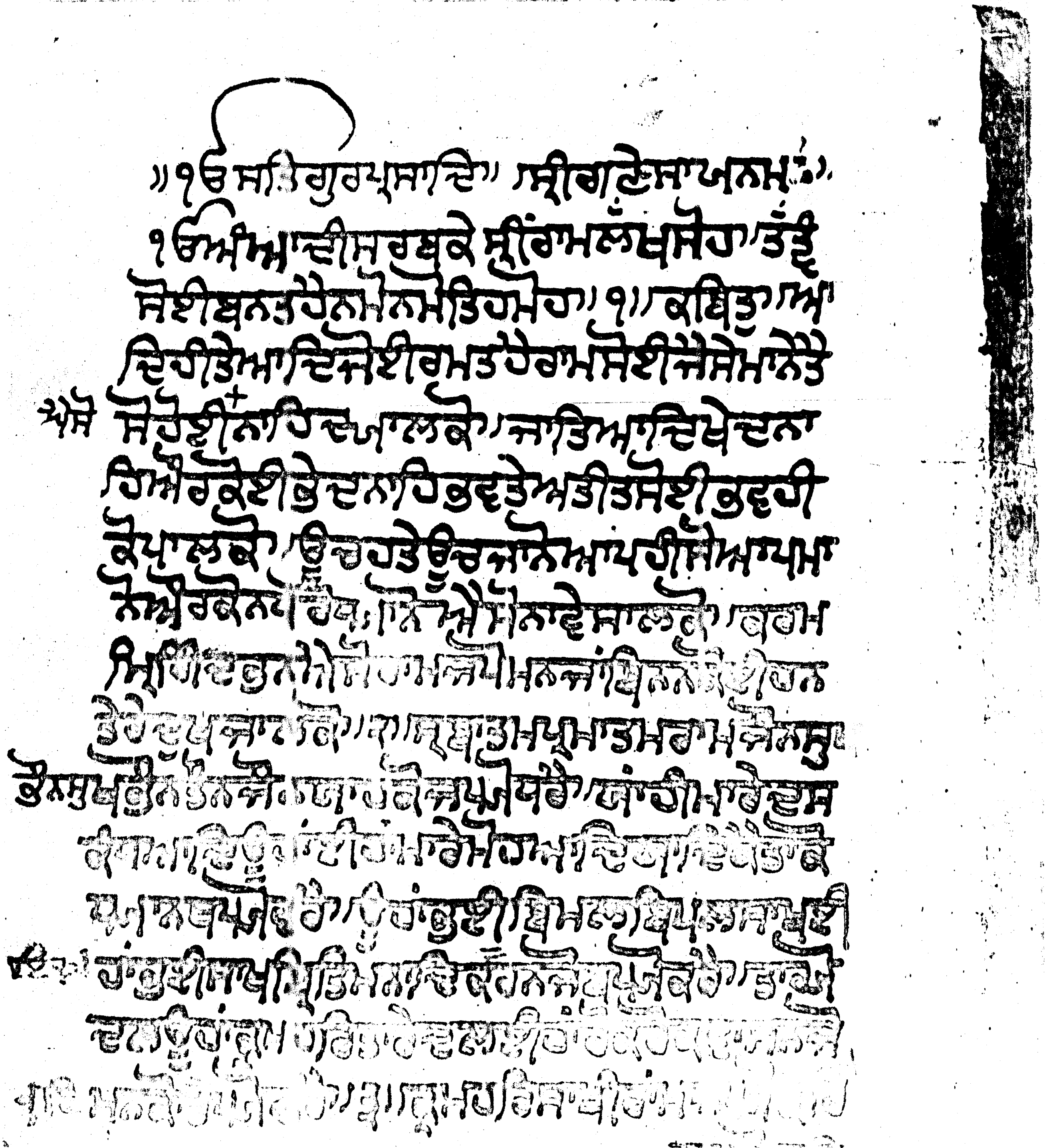
॥੧ੴ ਸਤਿਗੁਰਪ੍ਰਸਾਦਿ॥ ਸ੍ਰੀਗਣੇਸਾਯਨਮਃ॥

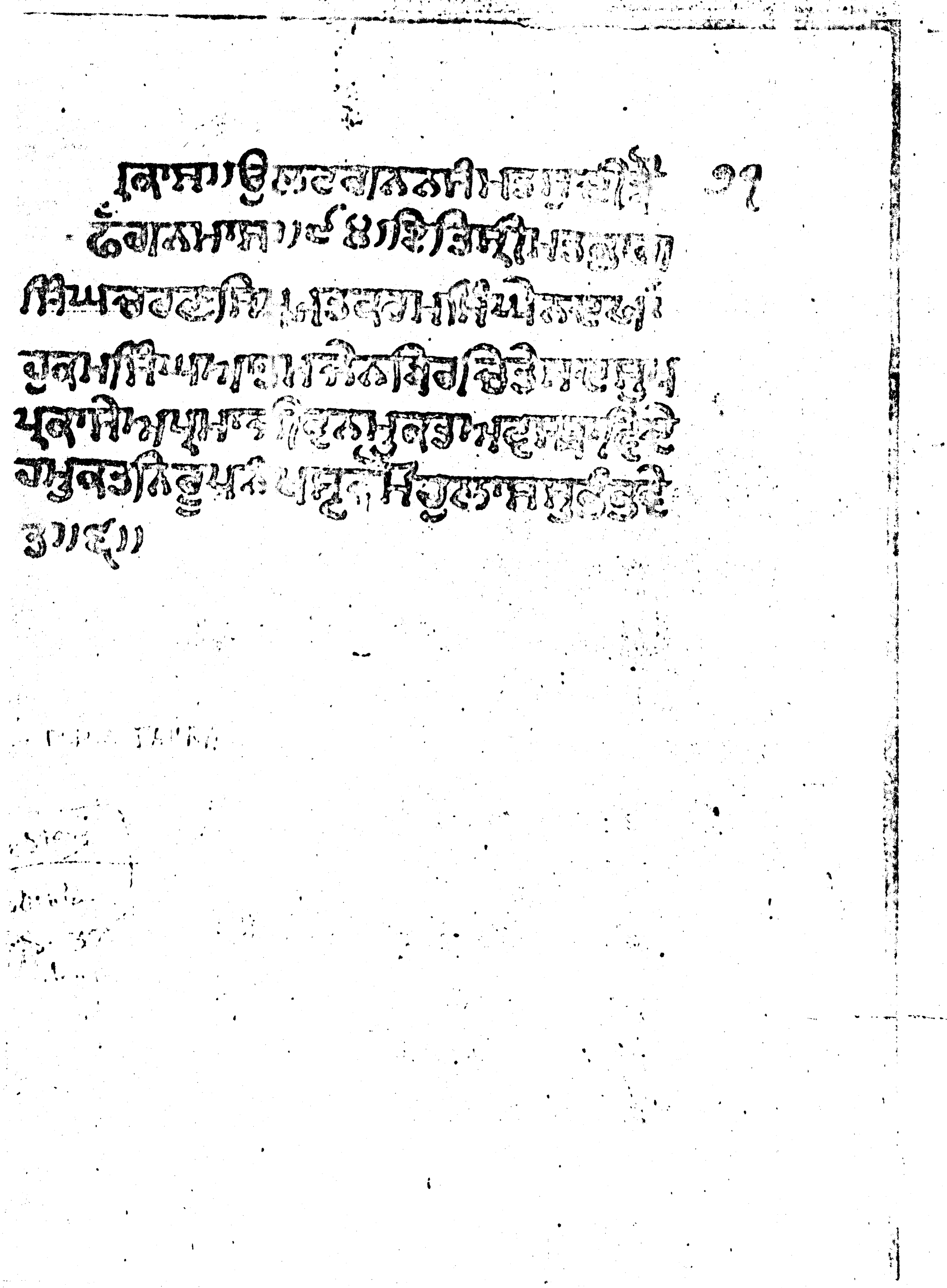

"सद सुख प्रकाश" [ख] पांडुलिपि का आरम्भिक पृष्ठ

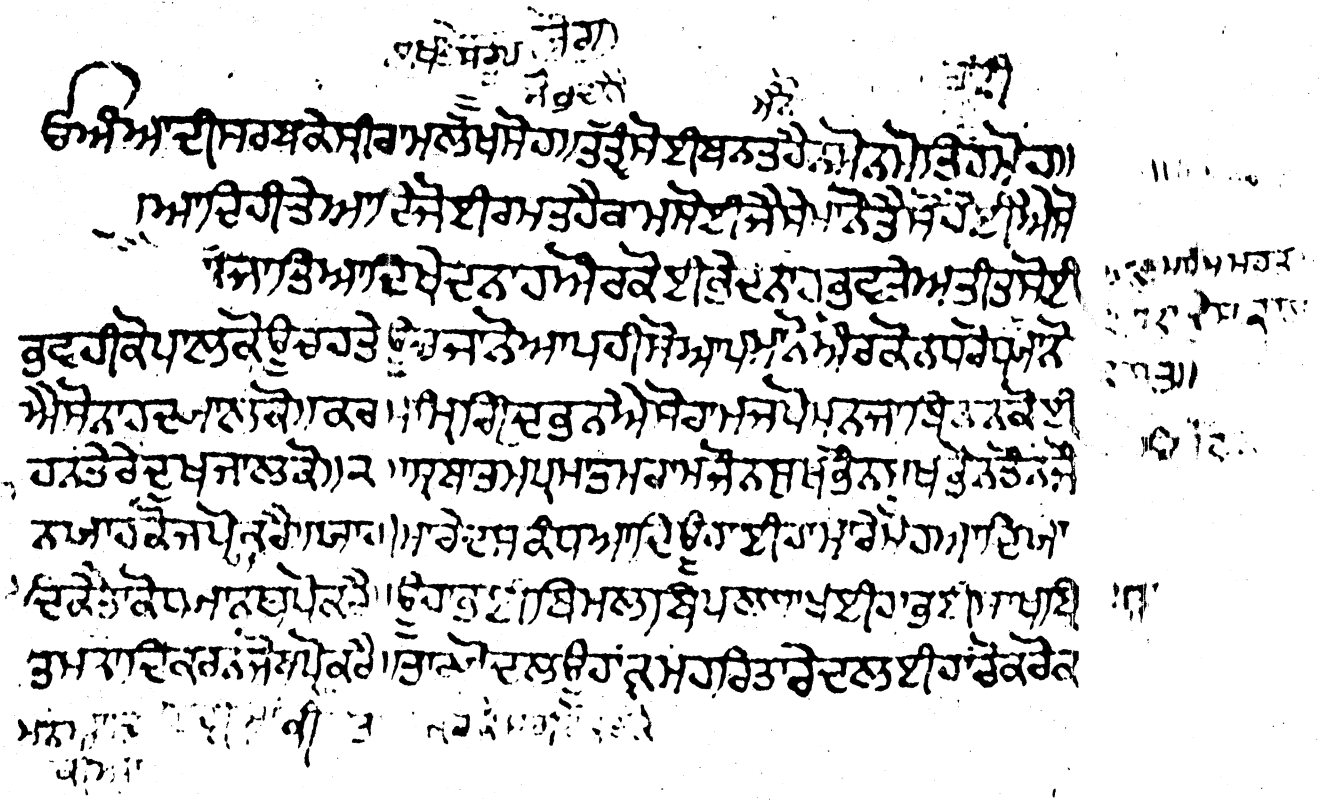

"सत सुख प्रकाश (ख) पांडुलिपि का अन्तिम पृष्ठ

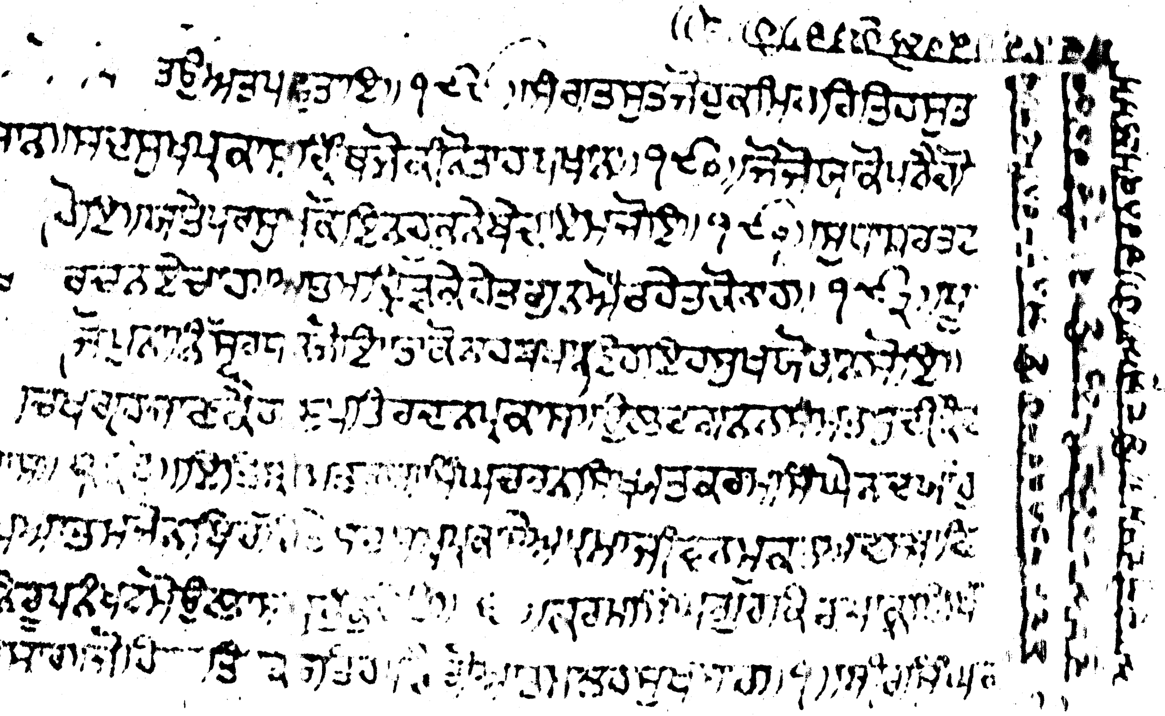

"श्री गुरु नां० चन्द्रोदै" का आरम्भिक पृष्ठ

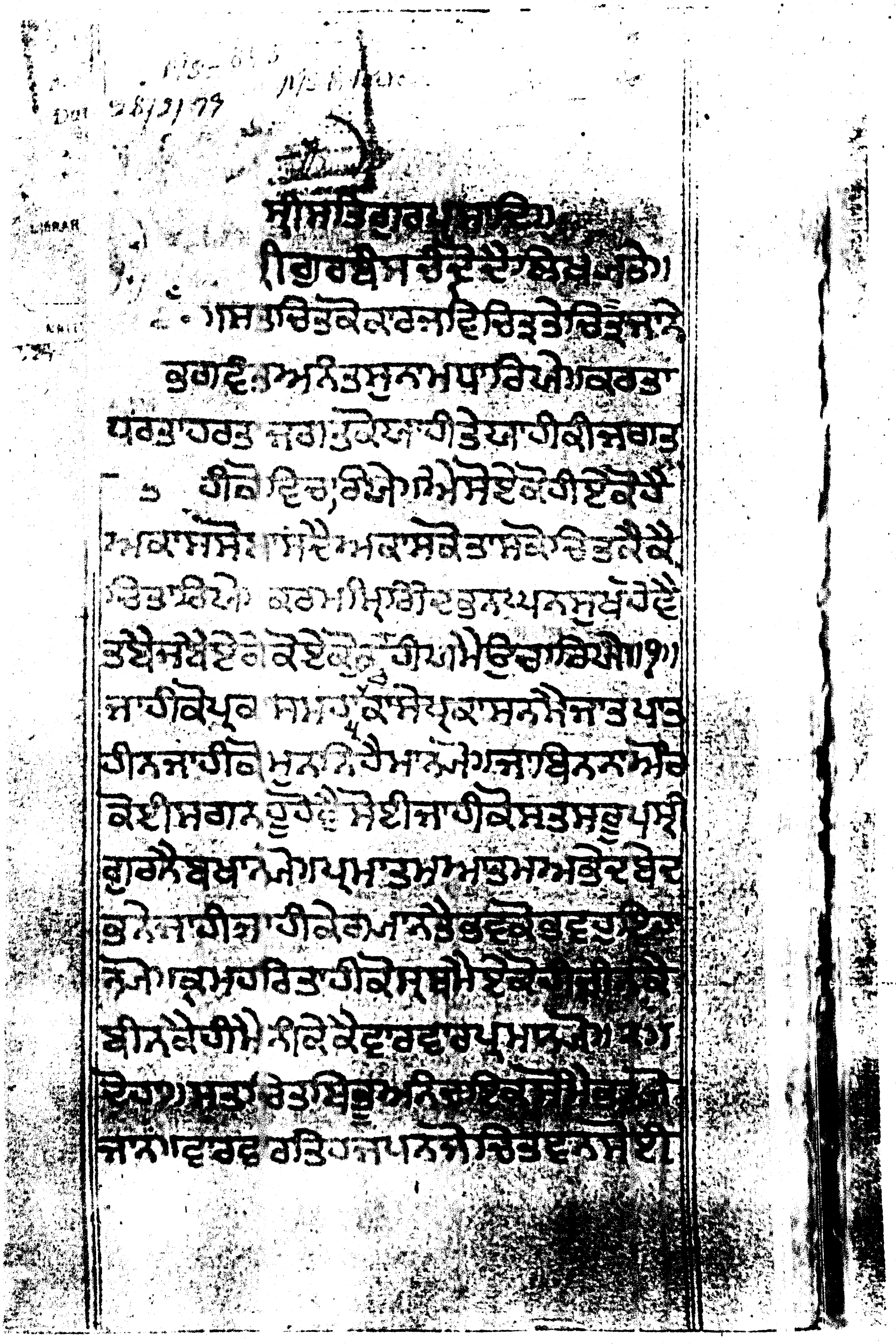

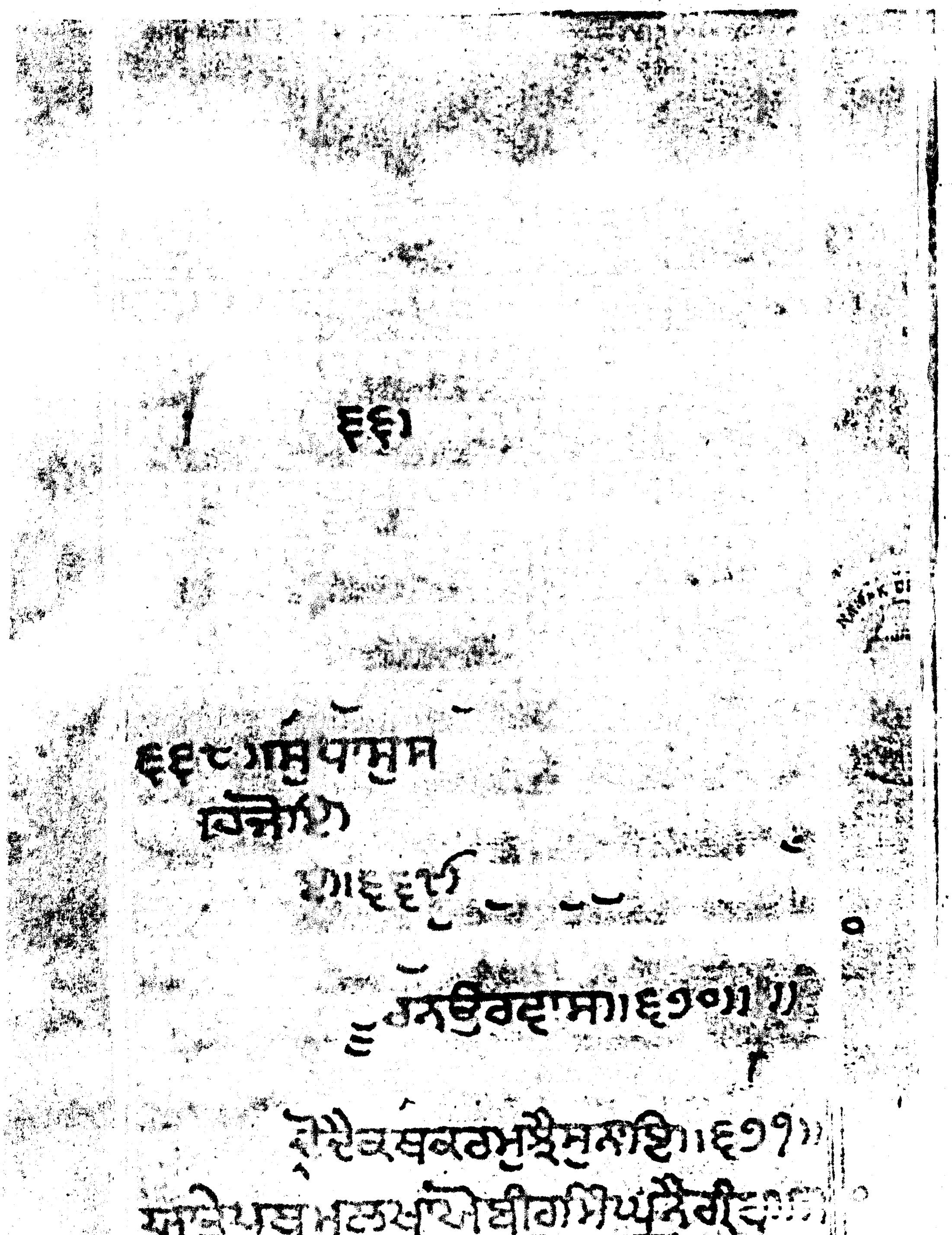

किला मिर्खा, शाहाबाद (हरियाणा)

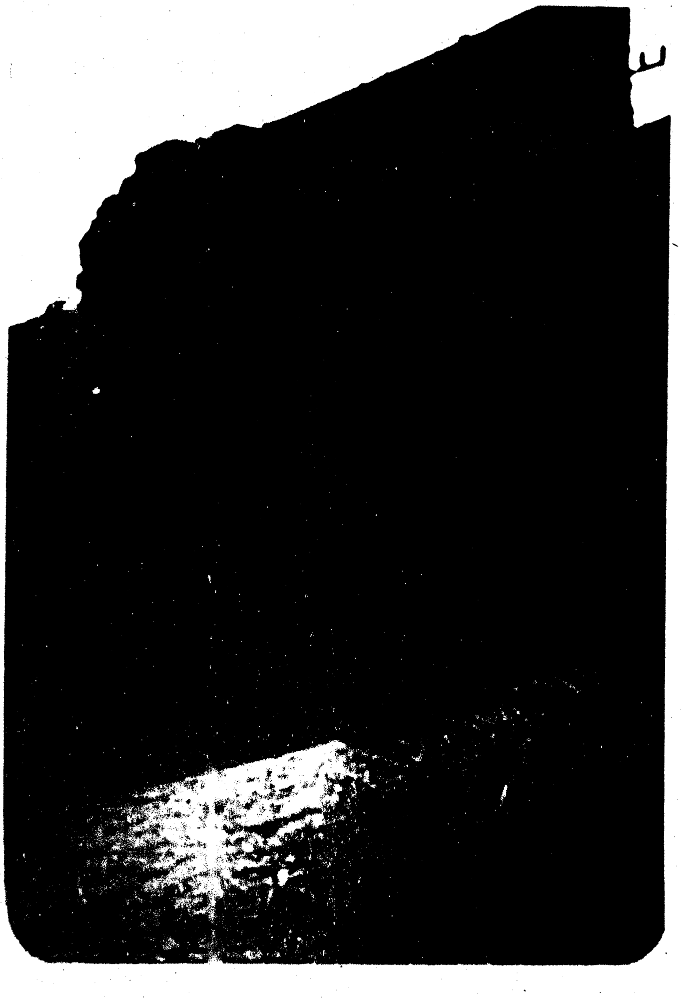

किला मा[illegible]री, शाहाबाद (हरियाणा)

"निशानां वाली मिसल" का प्राचीन पताका
गुरुद्वारा किला सिखां, शाहाबाद

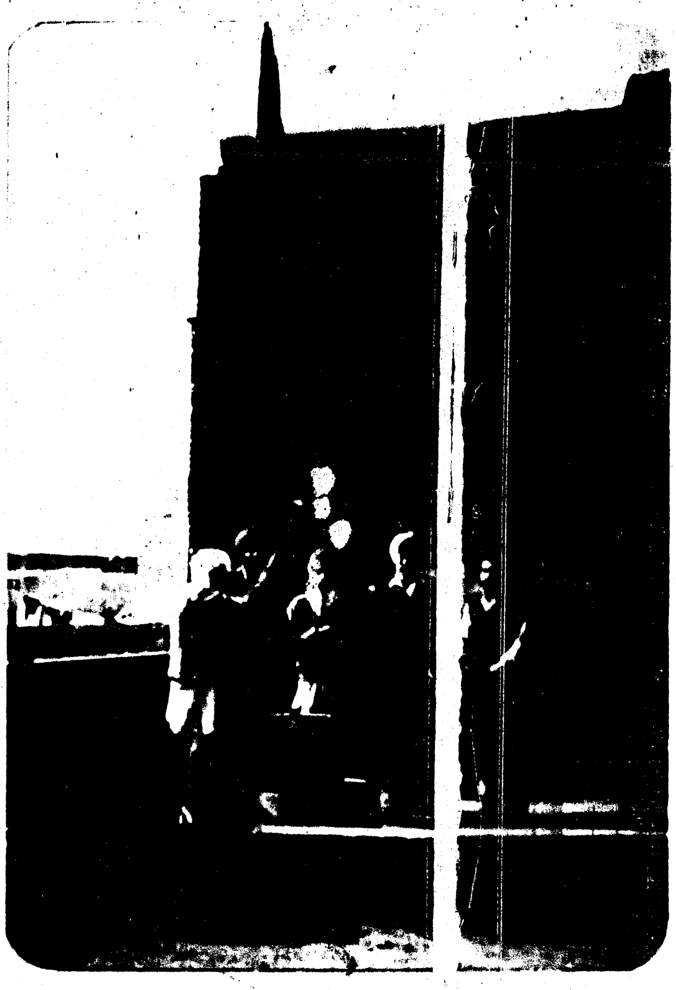

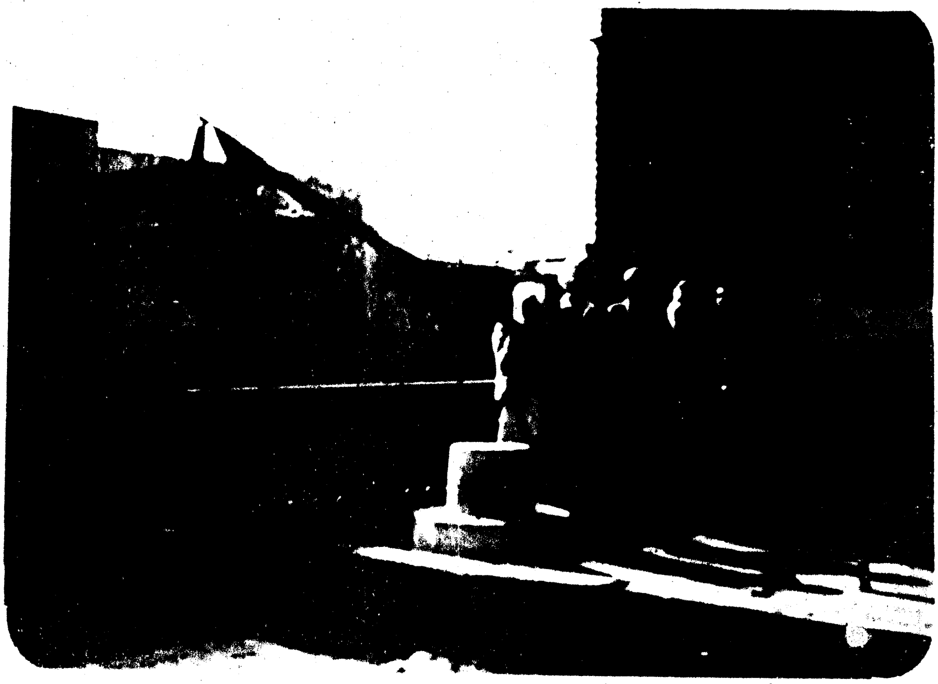

कवि कर्म सिंह निर्मला की वंशज
श्रीमती जसवंत कौर, शाहाबाद (हरियाणा)

परिशिष्ट - ग

सहायक पुस्तक - सूची

परिशिष्ट - ग

सहायक ग्रन्थ - सूची

(1) सहायक ग्रन्थ - सूची (संस्कृत तथा हिन्दी)

1 स्वामी अर्जुन सिंह मुनि व्याकरणाचार्य

संक्षिप्त इतिहास श्री निर्मल पंचायती अखाड़ा
कनखल, निर्मल पंचायती अखाड़ा, 1974 ई0

2 उमेश मिश्र

भारतीय दर्शन
लखनऊ, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, 1970 ई0

3 कृष्ण कुमार

नीतिशास्त्र (भाग 1)
प्रयाग, गर्ग ब्रदर्स, 1953 ई0

4 के0 दामोदरन

भारतीय चिन्तन परम्परा
नई दिल्ली, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, पु० सं०

5 डा0 गोविंद नाथ राजगुरु

गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य
दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1969 ई0

6 डा0 चन्द्रकान्त बाली

पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य का इतिहास
दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1962 ई0

7 पंडित चुनीलाल "सूदन" शास्त्री

हिन्दू नित्य कृत्य
सहारनपुर, सूदन प्रकाशन, पु० सं०

8 पंडित जगदीश शास्त्री (सम्पादक)

उपनिषत्संग्रह

दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 1980 ई०

9 डा० जयराम मिश्र

श्री गुरु ग्रंथ दर्शन

इलाहाबाद, साहित्य भवन, 1960 ई०

10 जयन्त कृष्ण दवे (सम्पादक)

मनुस्मृति

मुम्बई, भारतीय विद्या भवन, 1972 ई०

11 जवाहर लाल चतुर्वेदी (सम्पादक)

व्रत्य-निर्णय

वाराणसी, कल्याणदास एन्ड ब्रदर्स, 1956 ई०

12 जार्ज एडवर्ड मूर

नीतिशास्त्र मीमांसा (अनुवादक अशोक कुमार वर्मा)

पटना, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1973 ई०

13 जे० एस० मेकेंजी

नीति प्रवेशिका (अनुवादक गोवर्द्धन भट्ट)

दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1964 ई०

14 आचार्य दण्डी

काव्यादर्श

दिल्ली, ओरियंटल बुक डिपो, 1958 ई०

15 दिवाकर पाठक

भारतीय नीतिशास्त्र

पटना, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1974 ई

16 डा० देवराज

संस्कृति का दार्शनिक विवेचन

वाराणसी, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, 1957 ई

17 ठाकुर देशराज
सिख इतिहास
संगरिया, ग्रामोत्थान विद्यापीठ, 1954 ई0

18 डा0 धीरेन्द्र वर्मा (सम्पादक)
हिन्दी साहित्य कोश
बनारस, ज्ञानमण्डल, 1958 ई0

19 नवल जी
नालन्दा विशाल शब्दसागर
देहली, न्यू इम्पीरियल बुक डिपो, 1950 ई0

20 पंडित नारायण शास्त्री (सम्पादक)
याज्ञवल्क्यस्मृतिः
बनारस, चौखम्भा संस्कृत सीरिज आफिस,1930 ई0

21 डा0 पारस नाथ द्विवेदी
भारतीय - दर्शन
आगरा, श्रीराम एण्ड कम्पनी, 1973 ई0

22 डा0 प्रताप सिंह
18वीं और 19वीं शताब्दी में अमृतसर नगर के
हिन्दी कवि (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)
अमृतसर, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, 1979 ई0

23 पाल डायसन
वेदान्त दर्शन (अनुवादक संगम लाल पाण्डेय)
लखनऊ, उत्तरप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,1971 ई0

24 बदरी नाथ कपूर
लोकभारती मुहावरा कोश
इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, 1975 ई0

25 बलदेव उपाध्याय
श्री शंकराचार्य
इलाहाबाद, हिन्दुस्तान अकादमी, 1950 ई0

26 डा० भीखन लाल आत्रेय

भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास

लखनऊ, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, 1964 ई०

27 डा० मधु शर्मा

पद्माकर की काव्य-भाषा

नई दिल्ली, अभिनव प्रकाशन, 1977 ई०

28 आचार्य मम्मट

काव्यप्रकाश

काशी , ज्ञानमण्डल लिमिटेड, 1960 ई०

29 डा० मनोहर लाल गौड

घनानंद और स्वच्छंद काव्य-धारा

काशी, नागरी प्रचारिणी सभा, 1958 ई०

30 आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

रसज्ञ रंजन

आगरा, साहित्यरत्न भण्डार, 1957 ई०

31 डा० महाप्रभु लाल गोस्वामी (सम्पादक)

ब्रह्मसूत्र शांकर -भाष्य

मुजफ्फरपुर, विद्या मन्दिर प्रेस, 1976 ई०

32 डा० महेन्द्र कुमार

मतिराम : कवि और आचार्य

नई दिल्ली, भारती साहित्य मन्दिर, 1960 ई०

33 मुरली मनोहर प्रसाद सिंह

अलंकार मीमांसा

दिल्ली, हिन्दी पुस्तक कार्यालय, पृ० सं०.

34 डा० मुंशीराम

भक्ति का विकास

वाराणसी, चौखम्भा विद्याभवन, 1958 ई०

35 रघुनन्दन शास्त्री

हिन्दी छंद प्रकाश

दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज़, प्र० सं०.

36 रमाशंकर भट्टाचार्य (सम्पादक)

सांख्यसूत्रम्

दिल्ली, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1977 ई०

37 डा० रमाकान्त आंगिरस

शांकर वेदान्त : एक अनुशीलन

दिल्ली, नटराज पब्लिशिंग हाउस, 1982 ई०

38 डा० राज बुद्धिराजा

देव के काव्य में अभिव्यक्ति-विधान

दिल्ली, बुक हाउस, 1970 ई०

39 डा० राधाकृष्णन् (सम्पादक)

भगवद्गीता

दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज़, 1962 ई०

40 डा० राधाकृष्णन् (सम्पादक)

भारतीय-दर्शन

दिल्ली, राजपाल एण्ड सन्ज़, 1966 ई०

41 डा० रामचन्द्र वर्मा

मानक हिन्दी कोश

प्रयाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1962 ई०

42 डा० रामचन्द्र शुक्ल

प्रतिनिधि निबंध (सम्पादक सुधाकर पाण्डेय)

नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1979 ई०

43 रामजी उपाध्याय

संस्कृत सूक्ति रत्नाकर

इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, 1967 ई०

44 डा० राममूर्ति शर्मा

अद्वैत वेदान्त

दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1972 ई०

45 डा० राममूर्ति शर्मा

वेदान्तसार

दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1978 ई०

46 डा० रामनारायण पाण्डेय

भक्ति-काव्य में रहस्यवाद

दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1966 ई०

47 डा० रामसागर त्रिपाठी

बृहत साहित्यिक निबंध

दिल्ली, अशोक प्रकाशन, 1984 ई०

48 राहुल सांकृत्यायन

दर्शन दिग्दर्शन

इलाहाबाद, किताब महल, 1983 ई०

49 वामन शिवलाल आप्टे

संस्कृत हिन्दी कोश

दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 1984 ई०

50 महर्षि वेद व्यास

श्रीमद्भागवत महापुराण (सम्पादक घनश्याम दास)

गोरखपुर, गीता प्रेस, 1951 ई०

51 डा० वेद प्रकाश वर्मा

नीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्त

बम्बई, अलाईड पब्लिशर्स, 1977 ई०

52 आचार्य विश्वनाथ

साहित्य दर्पण

दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 1956 ई०

53 शंकराचार्य
विवेक चूडामणि (अनुवादक मुनिलाल)
गोरखपुर, गीता प्रेस, 1983 ई0

54 डा0 शकुंतला तिवारी
महाभारत में धर्म
भरतपुर, भारतीय पुस्तक मन्दिर, 1970 ई0

55 डा0 शशि सहगल
नयी कविता में मूल्य बोध
दिल्ली, अभिनव प्रकाशन, 1976 ई0

56 डा0 सतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय
भारतीय दर्शन (अनुवादक हरि मोहन झा)
पटना, पुस्तक भण्डार, प्र० सं०

57 श्री सदानंद
वेदान्तसार (व्याख्याकार आचार्य बदरीनाथ शुक्ल)
दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 1979 ई0

58 डा0 एस0 एन0 दासगुप्ता
भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग-2 (अनुवादक व्यास)
जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1973 ई0

59 डा0 सुरेन्द्र माथुर
उन्नीसवीं शती की ब्रज-भाषा
देहली, युगान्तर प्रकाशन, 1978 ई0

60 डा0 सुरेन्द्र सिंह विरदी
आदि ग्रन्थ के परम्परागत तत्वों का अध्ययन
पटियाला, भाषा विभाग पंजाब, 1978 ई0

61 डा0 हरजीत कौर सदाना
तारा सिंह नरोत्तम : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
(अप्रकाशित शोध प्रबंध)
चण्डीगढ़, पंजाब विश्वविद्यालय, 1971 ई0

62 डा० हरदयाल

आधुनिक हिन्दी कविता में अभिव्यंजना शिल्प
दिल्ली, सरस्वती प्रेस, 1978 ई०

63 डा० हृदय नारायण मिश्र

नीतिशास्त्र की भूमिका

चण्डीगढ़, हरियाणा साहित्य अकादमी, 1983 ई०

64 डा० हरवंश लाल शर्मा

भारतीय दर्शन परम्परा और आदि ग्रन्थ

दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1972 ई०

65 डा० हरिभजन सिंह

गुरमुखी लिपि में हिन्दी काव्य

नई दिल्ली, एस० चांद एण्ड कम्पनी, 1976 ई०

66 हरियाणा साहित्य संस्थान

ऋग्वेद संहिता

रोहतक, हरियाणा साहित्य संस्थान, 1984 ई०

(2) सहायक ग्रन्थ सूची (पंजाबी)

1 सतबीर सिंह

साडा इतिहास (भाग-2)

जालन्धर, न्यू बुक कम्पनी, 1970 ई०

2 डा० सुरिन्दर सिंह

निर्मल संतां दी पंजाबी साहित्त नूं देन

(अप्रकाशित शोध-प्रबंध)

चण्डीगढ़, पंजाब विश्वविद्यालय, 1975 ई०

3 सोहन सिंह सीतल

सिक्ख मिसलां ते सरदार घराणे

लुधियाना, लाहौर बुक शॉप, 1979 ई०

4 महंत हरी सिंह

निर्मल भेख दा संखेप इतिहास अते सम्प्रदायिक बंशावली

अमृतसर, प्रकाशक महंत हरी सिंह, 1960 ई0

5 कान्ह सिंह नाभा

श्री गुरु रत्नाकर महान कोश

पटियाला, पंजाब भाषा विभाग, 1975 ई0

6 महंत गणेशा सिंह

निर्मल भूषण अर्थात् इतिहास निर्मल भेख

अमृतसर, ज्ञानी मदन मोहन सिंह, 1937 ई0

7 ज्ञानी ज्ञान सिंह

निर्मल पंथ प्रदीपका (सम्पादक इन्द्र सिंह चक्रवर्ती)

कनखल, निर्मल पंचायती अखाड़ा, 1962 ई0

8 ज्ञानी ज्ञान सिंह

तवारीख गुरु खालसा

पटियाला, पंजाब भाषा विभाग, 1970 ई0

9 ज्ञानी ज्ञान सिंह

श्री गुरु पंथ प्रकाश (सम्पादक ज्ञानी कृपाल सिंह)

अमृतसर, मनमोहन सिंह बराड़, 1974 ई0

10 जसबीर सिंह आहलूवालिया

सिख फलसफे दी भूमिका

अमृतसर, रणबीर रचना प्रकाशन, 1976 ई0

11 पंडित तारा सिंह नरोत्तम

गुरु भाव दीपिका (सम्पादक दीवान बूटा सिंह)

लाहौर, आफताब प्रेस, 1881 ई0

12 पंडित तारा सिंह नरोत्तम

गुर मत निर्णय सागर

रावलपिंडी, राय बहादुर बूटा सिंह, 1877 ई0

13 महंत दयाल सिंह

निर्मल पंथ प्रकाश (भाग-1, भाग-2)

अमृतसर, डेरा बाबा भिखारा सिंह, 1952 ई0,

(भाग-1), 1953 ई0 (भाग-2)

14 महंत दयाल सिंह

निर्मल पंथ प्रकाश (भाग-3, भाग-4)

नई दिल्ली, जीवन निवास, महावीर नगर,

1953 ई0 (भाग-3), 1965 ई0 (भाग-4)

15 महंत दयाल सिंह

बाबे नानक जी दा निर्मल पंथ

लाहौर, करता सागर प्रेस, 1935 ई0

16 धर्म अर्थ बोर्ड पेप्सू

शब्दार्थ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब

पटियाला, धर्म अर्थ बोर्ड पेप्सू, 1953 ई0

17 नाहर सिंह

नामधारी इतिहास

मंगल ग्राम, नाहर सिंह प्रकाशक, 1955 ई0

18 नाहर सिंह

पंजाब

पटियाला, पंजाब भाषा विभाग, 1968 ई0

19 प्यारा सिंह पदम

श्री गुरु गोबिंद सिंह जी दे दरबारी रतन

पटियाला, कलम मन्दिर, 1976 ई0

20 प्रीतम सिंह (सम्पादक)

निर्मल सम्प्रदाय

अमृतसर, गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय, 1981 ई0

21 भाषा विभाग (पंजाब)

पंजाब कास्टस् (1883)

पटियाला, पंजाब भाषा विभाग, 1970 ई0

22 संत विशन सिंह कोट

अमृत बचन ते संत दर्शन

हरिद्वार, प्रकाशक विशन सिंह कोट, 1973 ई0

23 ज्ञानी मेहर सिंह

नौ रतन

लुधियाना, लाहौर बुक शॉप, 1970 ई0

24 शमशेर सिंह अशोक

पंजाब दीयाँ लहराँ

न्यामतपुरी, नारायण सिंह बल्लभ, 1954 ई0

25 शमशेर सिंह अशोक (सम्पादक)

पंजाबी हथलिखताँ दी सूची (भाग- 1)

पटियाला, पंजाब भाषा विभाग, 1961 ई0

26 शमशेर सिंह अशोक (सम्पादक)

पंजाबी हथलिखताँ दी सूची (भाग- 2)

पटियाला, पंजाब भाषा विभाग, 1963 ई0

(3) <u>सहायक हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची</u>

1 कर्म सिंह निर्मला

हरि अदृष्ट सतैया

यह हस्तलिखित ग्रंथ गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर के पुस्तकालय (एम0एस0एस0 - 599) में उपलब्ध है।

2 कर्म सिंह निर्मला

गुरु धर्म चन्द्रिका

यह हस्तलिखित ग्रंथ डा0 देवेन्द्र सिंह विद्यार्थी के निजी पुस्तकालय में उपलब्ध था।

3 कर्म सिंह निर्मला

सद गुरु प्रकाश

यह हस्तलिखित ग्रन्थ पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ के पुस्तकालय (एम0एस0एस0-498) तथा पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के पुस्तकालय (एम0एस0 एस0-10) में उपलब्ध है।

4 कर्म सिंह निर्मला

श्री गुरु बंश चन्द्रोदै

यह हस्तलिखित ग्रन्थ गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर के पुस्तकालय {एम०एस०एस०- 845 } में उपलब्ध है ।

5 पंडित गुलाब सिंह निर्मला

अध्यात्म रामायण

यह हस्तलिखित ग्रन्थ गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर के पुस्तकालय {एम०एस०एस०-101 } में उपलब्ध है ।

6 पंडित गुलाब सिंह निर्मला

प्रबोध चन्द्र नाटक

यह हस्तलिखित ग्रन्थ गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर के पुस्तकालय {एम०एस०एस०- 114 } में उपलब्ध है ।

7 पंडित गुलाब सिंह निर्मला

मोक्ष पंथ प्रकाश

यह हस्तलिखित ग्रन्थ गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर के पुस्तकालय {एम०एस०एस०-48 } में उपलब्ध है ।

8 पंडित गुलाब सिंह निर्मला

भाव रसामृत

यह हस्तलिखित ग्रन्थ सिख रेफरेंस पुस्तकालय {क्रमांक - 226 ।। 4450 ।। }, अमृतसर में उपलब्ध है ।

9 निहाल सिंह कवीन्द्र

कवीन्द्र प्रकाश

यह हस्तलिखित ग्रन्थ सिख रेफरेंस पुस्तकालय {क्रमांक - 1805 }, अमृतसर में उपलब्ध है ।

10 निहाल सिंह निर्मला

श्री जगत गुरु पंथ प्रबोध नाटक

यह हस्तलिखित ग्रन्थ गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर के पुस्तकालय {एम०एस०एस०-604} में उपलब्ध है ।

{ 4 } सहायक पत्रिकाएँ

1 आलोचना : अक्तूबर-दिसम्बर, 1967 ई०

2 लहर : सितम्बर, 1960 ई०

(5) सहायक ग्रन्थ-सूची (अंग्रेज़ी)

1.	Avtar Singh	Ethics of the Sikhs. Patiala, Panjabi University, 1970.
2.	Edward Lake	Report on the ---------- settlement of the Pargans formerly comprised in the Thanser Distt. Lahore, Panjab Printing Co. 1865.
3.	Gopal Singh	A History of the Sikh People(1469-1978). New Delhi, World Sikh Uni.Press,1978.
4.	G.S.Chhabra	Advanced History of the Panjab(Vol.II) Ludhiana, Parkash Brothers, 1962.
5.	H.A.Rose	Encyclopedia of Religion and Ethics. Edenberg, T.and T.Clark, 1961.
6.	H.L.Griffin	The Rajas of the Panjab. New Delhi, Manu Publications, 1977.
7.	Hari Ram Gupta	History of the Sikhs. Lahore, Minerva Book Shop, 1944.
8.	Khushwant Singh	A History of the Sikhs. Delhi, Oxford University Press, 1977.
9.	Language Deptt.	A Glossary of Tribes and casts of the Panjab and N.W.F.P.(1883). Patiala, Panjab Language Deptt.1970.
10.	N.K.Sinha	Ranjit Singh. Calcutta, A.Mukerjee, 1960.
11.	N.K.Sinha	Rise of the Sikh Power. Calcutta, A.Mukerjee, 1973.

12. Nidai Hartmann Ethics (Vol.II).
London, George Allen & Unwin, 1951.

13. S. Chatterjee An Introduction to Indian Philosophy.
Calcutta, Calcutta University, 1984.

14. S. Gandhi History of the Sikh Gurus.
Delhi, Gurdas Kapoor & Sons, 1978.

15. SM. Latif History of the Panjab.
New Delhi, Eurasia Publishing, 1964.

16. George Bernard Hatha Yoga.
London, Rider and Company, 1958.

.-.-.-.-.-.-

PUNJAB UNIVERSITY